बड़ साहस सौँ धनु पुनि आनि। लक्ष्मण काँ शर मारय तानि॥ ७१॥
रवि-सन्निभ शर लाख हजार। वानर भालु गोल मे मार॥ ७२॥

॥ सोरठा ॥

जय रघुनाथ उचार, ध्यान राम-पद-कमल मे॥ ७३॥
मेघनाद काँ मार, कहि कहि लक्ष्मण ऐन्द्रशर॥ ७४॥
धर्म्मात्मा रघुवीर, सत्यसन्ध दशरथ-तनय॥ ७५॥
रण मे एकहि तीर, तौँ घननादक हो मरण॥ ७६॥

॥ चौपाइ ॥

इन्द्रक शत्रु लड़ल भरि पोष। लगलनि लक्ष्मण-शर से चोष॥ ७७॥
रोकि न शकला से उतपात। धर सौँ शिर भय गेलनि कात॥ ७८॥
रवि-मण्डल-रुचि कुण्डल कान। समर शयित से दैव प्रधान॥ ७९॥
कत कह जिवतहिँ अछि घननाद। कत कह मरि गेल विविध विवाद॥ ८०॥
अमर सकल नभ कर गुण-गान। जय रघुनाथ देव भगवान॥ ८१॥
स्तुति कर बहुत वृष्टि कर फूल। देखल सृष्टि इष्ट अनुकूल॥ ८२॥
दुन्दुभि-शब्द भेल आकाश। इन्द्रादिक मन छुटि गेल त्रास॥ ८३॥
जिवितहिँ दशमुख शम उतपात। जनि सायक टूटल विषदाँत॥ ८४॥
स्थिरा धरा निर्म्मल भेल गगन। जय-जय शब्द करथ जन मगन॥ ८५॥

खींचकर लक्ष्मण पर तीर चलाने लगा। ७१ वह बन्दरों और भालुओं के दल पर सूरज के समान हज़ारों व लाखों तीरों की बौछार करने लगा। ७२ राम के चरण-कमल में ध्यान लगाये और 'राम की जय' का नारा लगाते लक्ष्मण ने मेघनाद को ऐन्द्र-शर लगाया। ७३-७४ सत्यव्रती राजा दशरथ के पुत्र धर्मात्मा रघुवीर के एक ही बाण से मेघनाद मर सकता था। ७५-७६ इन्द्र के शत्रु मेघनाद ने खूब लड़ाई की। अन्त में लक्ष्मण का तेज बाण उसे लग गया। ७७ वह इस बाण रूपी आपदा को रोक न सका। उसका सिर धड़ से अलग हो गया। ७८ उसके कानों में कुडल सूर्य-मंडल की तरह चमक रहे थे। वह युद्ध-भूमि में सो गया। विधाता सब कुछ कर सकता है। ७९ कोई कहता, मेघनाद जिन्दा ही है और कोई कहता कि मर गया। इस पर तरह-तरह का विवाद होने लगा। ८० आकाश में देवता लोग गुणगान करने लगे— भगवान रामचन्द्र की जय। ८१ स्तुति करते और फूल बरसाते देवताओं ने देखा कि दुनिया में इच्छानुरूप चैन हो गया है। ८२ आकाश में हर्ष के नगाड़े बजने लगे। इन्द्र आदि देवताओं के मन में त्रास का अन्त हुआ। ८३ रावण के जीते ही सारा उपद्रव शान्त हो गया, मानो साँप के ज़हरीले दाँत तोड़ दिये गये। ८४ पृथ्वी स्थिर हो गयी, आकाश स्वच्छ हो गया, लोग आनन्द में मग्न जय-जयकार करने लगे। ८५ जब कुछ देर में

लक्ष्मण वीर अखन श्रम-रहित। बालि-तनय मारुत-सुत सहित॥ ८६॥
शंखक धुनि धनुषक टङ्कार। लक्ष्मण कयल विजय व्यवहार॥ ८७॥
सुनि सुनि हर्षक नाद विशाल। मूर्छित उठल हटल श्रम-जाल॥ ८८॥
अतिशय हर्षित कपि-दल सर्व्व। मारल मेघनाद बड़ गर्व्व॥ ८९॥
जय-जय लक्ष्मण जय रणधीर। कालहु जित सित अपनेँक तीर॥ ९०॥
हनुमदादि सेनाधिप-सहित। तथा विभीषण दूषण-रहित॥ ९१॥
रामचन्द्र काँ कयल प्रणाम। कुशल सकल जीतल संग्राम॥ ९२॥
अपनेँ चरणक मुख्य प्रसाद। रण मे शयित अहित घननाद॥ ९३॥
लड़ल निरन्तर भरि भरि राति। अतिमायाबल राक्षस जाति॥ ९४॥
मारल खल काँ लक्ष्मण वीर। हृदय लगाओल कहि रघुवीर॥ ९५॥
मेघनाद छल बड़ा लड़ाक। तनिकाँ मारल अहाँ तड़ाक॥ ९६॥
जिनकहि धरि छल अछि संग्राम। हिनि जितलय जीतल सभ ठाम॥ ९७॥
शर-जर्ज्जर सभ सेना-गात्र। जिति अयलहु अहाँ विगत त्रिरात्र॥ ९८॥
पुत्र-शोक सौँ दशमुख दीन। की कर पौरुष जन विनु मीन॥ ९९॥

लक्ष्मण और हनुमान-सहित वीर लक्ष्मण की थकावट दूर हुई, तब विजय की रीति के अनुसार लक्ष्मण ने एक बार शंख बजाया और धनुष का टंकार किया। ८६-८७ विजयोल्लास की यह आवाज़ सुन-सुनकर वे भी उठ खड़े हुए जो बेहोश पड़े थे और सबों की थकान जाती रही। ८८ सारे कपि-दलों में हर्ष छा गया। मेघनाद को मारा यह बड़े गौरव की बात थी। ८९ 'जय हो, युद्ध में अडिग वीर लक्ष्मण की जय हो। आपका तीखा तीर काल को भी जीत सकता है।' ९० इस तरह बड़ाई करते हुए हनुमान आदि दलपतियों-सहित निष्कलुष विभीषण ने राम को प्रणाम किया और उन्हें खुशखबरी सुनाई— "हम सभी कुशलपूर्वक लड़ाई में विजयी हुए। ९१-९२ मुख्यतः आप ही के चरण की प्रसाद से हमारा दुश्मन मेघनाद युद्ध में मारा गया। ९३ वह रात-रात भर लगातार लड़ता रहा। राक्षस लोगों को माया की भारी शक्ति रहती है। ९४ उस दुष्ट को लक्ष्मण ने मारा।" यह सुनकर राम ने लक्ष्मण को हृदय से लगा लिया और बोले— ९५ "मेघनाद बहुत ही लड़ाकू था। उसको तुमने चटपट मार डाला। ९६ मानों लड़ाई इसी तक थी। इसको जीत लिया तो सब जीत लिया। ९७ सभी योद्धाओं के शरीर तीरों से क्षत-विक्षत हो गये हैं। तुम तीन ही रातों में जीत आये। ९८ रावण तो पुत्र के शोक से विह्वल हो गया है। बिना जल की मछली के समान वह अब क्या करामात कर सकेगा।" ९९ उधर रावण को विश्वास हो गया कि बेटा

रावण मन मानल सुत-मरण। अतिशय आकुल अन्तष्करण ॥ १००
झट झट अट्ट-शिखर चढ़ि ताक। चढ़ल विकल चित चिन्ता-चाक ॥ १०१

॥ घनाक्षरी छन्द ॥

जय-जय-कार धुनि अमर उचार कर,
शुनि पड़ कान हनुमान-हर्ष-हाक रे ॥ १०२ ॥
ध्वज फहराय बहराय कँ शिखर चढ़ि,
यन्त्र मे लगाय वृष्टि दूरही सौं ताक रे ॥ १०३ ॥
आज मेघनादक समाद न शुनल शुभ,
जैह सूर्पनखाक काटल कान नाक रे ॥ १०४ ॥
सैह राम-भाय हाय कैलक अन्याय जनु,
अनुमान होइछ देलक शिर डाक रे ॥ १०५ ॥

॥ जयकरी छन्द ॥

पक्ष-हीन जनु पड़ल पहाड़। रावण महा-विषट पतझाड़ ॥ १०६ ॥
दुष्ट विभीषण खूनल मूल। सोदर भाय हाय प्रतिकूल ॥ १०७ ॥
विधि भेल वाम इष्ट भेल ठक्क। कालपुरुष नहि ककरो शक्क ॥ १०८ ॥
जोर नोर बह बीशहु आँखि। खग भेल लोथ कतरलय पाँखि ॥ १०९ ॥
कि कहब मन्दोदरी-विषाद। जिबयित मरण शरण घननाद ॥ ११० ॥

मेघनाद मारा गया। उसका हृदय अत्यन्त व्याकुल हो उठा। १०० वह झटपट ऊँची अटारी पर चढ़कर देखने लगा। उसका दिमाग़ चिन्ता से चकराने लगा। १०१ देवता लोग जय-जयकार का नारा लगा रहे हैं। जीत के हर्षोल्लास में लगाई गई हनुमान की किलकारी सुनाई पड़ रही है। १०२ विजय-ध्वजाएँ फहरा रही हैं। रावण पहाड़ की चोटी पर चढ़कर दूर-दर्शी यन्त्र में आँख लगाकर दूर ही से देख रहा है और सोच रहा है— १०३ "आज मेघनाद का शुभ समाचार नहीं मिल रहा है। जिसने शूर्पणखा के कान नाक काटे उसी राम के भाई लक्ष्मण ने शायद अनर्थ कर दिया। लगता है कि उसने मेरा सर्वनाश किया।" १०४-१०५ रावण उस पहाड़-सा पड़ा हुआ है जिसकी पाँखें काट दी गई हों। मानो विशाल वृक्ष में पतझड़ हो गया हो। १०६ दुष्ट विभीषण ने उसकी जड़ खोद दी। अपना सगा भाई दुश्मन हो गया। १०७ विधाता वाम हो गये। जो हित थे वे वंचक हो गये। काल किसी के भी वश में नहीं होता। १०८ रावण की बीसों आँखों से आँसू ढल रहे थे। उसका हाल पंख कटे पक्षी का-सा हो गया। १०९ मन्दादरी को जो विषाद हुआ वह क्या कहा जाय। उसको ज़िन्दगी मौत-सी लगती थी, क्योंकि मेघनाद ही उसका प्राणाधार था। ११० आज देवता लोगों का

मेल देवगण आज । ऋषि मुनि जन मन बनि गेल काज ॥ १११ ॥
धिक हमरहु शत्रु कलङ्क । पड़ल गजेन्द्र विषम थल पङ्क ॥ ११२ ॥
से पुन दैत्य संहार । जिबयित रावण कपि-सञ्चार ॥ ११३ ॥
धिक मेघनाद बल तोर । उठि की कुम्भकर्ण भेल जोर ॥ ११४ ॥

॥ मत्तगजेन्द्र छन्द ॥

बास सदा मणिमन्दिर मे
तहँ खाट मनोहर सन्मणि-पाबा ॥ ११५ ॥
गेलि विलास-कला सकला
उत धान धरी मुह होइछ लाबा ॥ ११६ ॥
कोटि विलाप करै वनिता
कहि भेलहुँ आज उपाय अभावा ॥ ११७ ॥
की लिखि देल ललाटक पट्ट मे
बूझि न से बुढ़बा बिधि बाबा ॥ ११८ ॥

॥ चकोर छन्द ॥

लै कहु खड्ग दशानन दौड़ल रामप्रिया हम मारब आज ॥ ११९ ॥
मन्त्रि सुपार्श्व बुझाब बिपत्ति मे हे प्रभु ई नहि भूपति-काज ॥ १२० ॥
बीर अहाँ रणधीर महाशय तुल्य अहाँक कहाँ महराज ॥ १२१ ॥
कि शुनि देखि कहू ककरा नहि स्त्रीबध उत्सव हो मन लाज ॥ १२२ ॥

दूर हुआ। ऋषियों व मुनियों की कामना पूरी हुई। १११ रावण सोचता है— धिक्कार है मुझको कि मुझे भी कलंक लगानेवाला शत्रु मिल गया। वाली गजराज गहरे कीचड़ में फँस गया। ११२ और वह शत्रु भी एक वाकली तापस है। इतना ही नहीं, वह तो राक्षसों का संहार करते जा रहा है। फिर भी रावण ज़िन्दा है, और वानरदल सक्रिय है। ११३ हे मेघनाद! तुम्हारी ताक़त को भी धिक्कार है। हे कुम्भकर्ण, तुम्हें जगाकर ही क्या हुआ? ११४ मन्दोदरी विलाप करती है— "मैं सदा रत्नमय भवन में रहती थी और क़ीमती पावों वाले सुन्दर पलंग लगे रहते थे। ११५ मेरी वह सारी विलासिता खत्म हो गई। इतनी सन्तप्त हूँ कि मुँह में धान रखूं तो वह फूटकर लावा हो जाय।" ११६ रावण की स्त्री मन्दोदरी अपार विलाप कर रही है— "आज मैं सारे साधनों से हीन हो गई। ११७ बूढ़े बाबा विधाता ने ललाट में न जाने क्या लिख दिया है।" ११८ रावण क्रुद्ध तलवार लेकर यह कहते दौड़ा कि आज सीता को मार डालूँगा। ११९ सुपार्श्व नाम के उसके मन्त्री ने उसे समझाया— 'हे प्रभु! विपत्ति के समय राजा को ऐसा काम नहीं करना चाहिए। १२० आप वीर हैं, रणधीर हैं, महा विचार वाले हैं, अतः ऐसा करना आपको शोभा नहीं देता। १२१ यह

॥ सोरठा ॥

सभ जन मिलि तत जाय, मारब लक्ष्मण राम कां ॥ १२३ ॥
अहँ पौलस्त्य कहाय, स्त्रीबध अनुचित सर्व्वथा ॥ १२४ ॥
लज्जित भवन प्रवेश, कयल दशानन बिकल-मन ॥ १२५ ॥
पुछल सकल दनुजेश, प्रात सभा मे आबि पुन ॥ १२६ ॥

॥ चौपाइ ॥

मानव बानर दानव मार। आनब बल हम कोन अपार ॥ १२७ ॥
शलभ नाम मन्त्री बल अनल। ज्वलत समर रघुबर शर-अनल ॥ १२८ ॥
जत राक्षस आबथि संग्राम। सभ कां लोटपोट कर राम ॥ १२९ ॥
अपनहु बहुत दशानन लड़ल। रघुबर-शर-जर्जर भय पड़ल ॥ १३० ॥
हृदय-मध्य वेधित एक बाण। लङ्का अयला मूर्छित प्राण ॥ १३१ ॥

॥ दोहा ॥

लङ्का सती सुलोचना, पति घननाद समाप्त ॥ १३२ ॥
लक्ष्मण-शर-प्रेरित सुभुज, तनि आङ्गन सम्प्राप्त ॥ १३३ ॥

बात सुनकर और सोच-समझकर बताइए कि स्त्री-वध करके उछाह मनाना किसके लिए लज्जा की बात न होगी ? १२२ हम सभी लोग मिलकर वहाँ जाएँगे और लक्ष्मण तथा राम को मारेंगे। १२३ आप पुलस्ति के नाती कहाते हैं, अतः आपके लिए स्त्री-वध करना एकदम अनुचित है।" १२४ यह सुनकर रावण लज्जित हो गया और लहू का घूँट पीकर अपने भवन में चला गया। १२५ फिर सुबह होने पर रावण ने दरबार लगाया और सबों से पूछा— १२६ "मनुष्य और बन्दर राक्षसों को मारता जा रहा है। अब मैं इतनी सेना कहाँ से लाऊँगा ? हे मन्त्रियो, युद्ध में राम के तीर रूपी आग में मेरी सेना पतंग की तरह जलती जा रही है।" १२७-१२८ लड़ाई के मैदान में जो भी राक्षस आते सबों को राम मौत के घाट उतार देते। १२९ खुद रावण ने भी बहुत लड़ाई की और अन्त में राम के तीरों से क्षत-विक्षत हो धराशायी हो गया। १३० उसकी छाती में एक तीर बिंध गया और वह बेहोश हो लंका ले आया गया। १३१

सुलोचना का विलाप और सती होना

लंका में मारे गये मेघनाद की पत्नी सुलोचना रनिवास में थी। लक्ष्मण के तीर के सहारे फिकाई हुई मेघनाद की एक बाँह उसके आँगन में आ गिरी। १३२-१३३ उस पर एक दासी की नज़र पड़ी। उसने अपनी मालिकिन

॥ चौवाइ ॥

बासी एक बेखल से नयन । स्वामिनि सौं कहलनि से अयन ॥ १३४ ॥
आङ्गन मध्य गगन सौं बाँहि । खसल बाणयुत भेलहुँ बताहि ॥ १३५ ॥
स्वामिनि चलु चलु देखू आज । आपत की मर्य्यादा लाज ॥ १३६ ॥
पन्नगेश - तनया तत गेलि । भुज काँ देखि विकल-मन भेलि ॥ १३७ ॥
फरकै छल अछि दक्षिण अङ्ग । परिणत फल की लगइछ रङ्ग ॥ १३८ ॥
कह करुणा अरुणायतनयन । भुज-जित-विश्व समर-महि शयन ॥ १३९ ॥
लवणोदधि हो अमृत समान । कनकाचल त्यागथि स्वस्थान ॥ १४० ॥
सुरगुरु मूक मूक वाचाल । झपटि सिंह काँ मार शृगाल ॥ १४१ ॥
अद्भुत नहि विस्तर संसार । वानर नर सुरवर-जित मार ॥ १४२ ॥
पतिभुज तन्त्रा करु परित्याग । हयब सती हम पूरण भाग ॥ १४३ ॥
जौं हम सत्य सती मन साँच । लिखि प्रमाण कहु सभ जन बाँच ॥ १४४ ॥

॥ सोरठा ॥

भुज बेल हाथ पसारि, देखल सती सुलोचना ॥ १४५ ॥
सुमती चित्त विचारि, खड़ी धरायोल हाथ मे ॥ १४६ ॥

सुलोचना को सूचित किया— १३४ "हे स्वामिनी, आँगन में तीर-लगी एक बाँह आसमान से गिरी है। मैं तो उसे देख पागल हो गई हूँ। १३५ हे स्वामिनी, आज चलकर देखिए। संकट के समय लज्जा क्या और मर्यादा क्या।" १३६ सुलोचना वहाँ गई और बाँह देखते ही व्याकुल हो गई। वह बोली— १३७ "मेरा दाहिना अंग फड़क रहा था। लगता है, यह उसी का बुरा फल है। १३८ हे लाल और बड़ी-बड़ी आँखोंवाले मेरे प्यारे, दया कीजिए। हाय, जो अपने बाहुबल से सारी दुनिया को जीतनेवाले थे, वे ही आज लड़ाई के मैदान में सोये हुए हैं। १३९ खारा समुद्र अमृत के समान हो सकता है। सुमेरु अपनी जगह छोड़ सकता है। १४० देवताओं के गुरु बृहस्पति गूंगे हो सकते और गूंगा वक्ता बन सकता है। सियार झपटकर सिंह को मार सकता है। १४१ संसार में अचरजों का अन्त नहीं है। यह भी आश्चर्य है कि बन्दरों और मनुष्यों ने इन्द्र को जीतनेवाले मेघनाद को मार दिया। १४२ हे मेरे पति की बाँह, आप आलस छोड़िये। मैं सौभाग्यवश अब सती होऊँगी। १४३ यदि मैं सचमुच में सती हूँ और मेरा हृदय पवित्र है, तो हे बाँह, आप लिखकर प्रमाणित कीजिए ताकि सब पढ़ ले।" १४४ इतना सुनकर सती सुलोचना ने देखा कि बाँह ने हाथ फैला दिया है। १४५ फिर बुद्धिमती सुलोचना ने सोच-विचारकर उस हाथ में खरिया डाल दिया। १४६ उस हाथ ने रत्नों से बने फर्श पर खरिया से लिख दिया—

॥ चौपाइ ॥

मणिमय आँगन लिखलनि हाथ। परमेश्वर जानू रघुनाथ ॥ १४७ ॥
धरा - भार - धर पन्नग जैह। जानक थिक लक्ष्मण कां सैह ॥ १४८ ॥
तनिकहि हाथ हमर भेल मरण। सुखमय अभय स्वर्ग भेल शरण ॥ १४९ ॥
निद्राहार बिहार बिराग। मनस्पथहु नहि दूषण लाग ॥ १५० ॥
सति शुभमति चिन्ता नहि करिय। सङ्ग हमर सुरपुर सञ्चरिय ॥ १५१ ॥
राम समक्ष माथ अछि धयल। लय आनू लिखि सूचित कयल ॥ १५२ ॥
निरुपद्रव रघुनाथ - समीप। श्वशुर विभीषण छथि कुल दीप ॥ १५३ ॥
की सुख राज्यभोग अवसान। उत्तम गति देलनि भगवान ॥ १५४ ॥
सुरपति-जित-गृहिणी निज गेह। तन धन जन मन सौँ तजि नेह ॥ १५५ ॥
सकल अनित्य विश्व मन मानि। चललि दशानन-तट गुरु जानि ॥ १५६ ॥
मणिमय यान पतिक भुज धयल। अपनहुँ चढ़लि शोक नहि कयल ॥ १५७ ॥
अमरेश्वर - जित - अबला सङ्ग। चलल पदाति महीपति-रङ्ग ॥ १५८ ॥
दासी सकल बिकल भय कान। आज अभाग्य देल भगवान ॥ १५९ ॥
बैतालिक आगाँ एक जाय। बिकल दशानन कहल बुझाय ॥ १६० ॥

"राम को परमेश्वर समझिये। १४७ धरती के भार को उतारनेवाले जो शेषनाग हैं लक्ष्मण को उन्हीं का अवतार समझिये। १४८ मेरी मृत्यु उन्हीं के हाथ से हुई है। मरने पर मुझे सभी सुखों से युक्त और भय से मुक्त स्वर्ग मिला है। १४९ सोना, खाना-पीना और घूमना-फिरना सबसे तुम्हें विराग रहा (एकमात्र मुझमें अनुराग रहा)। तुम्हें मन के रास्ते भी कोई पाप छूने न पाया। १५० हे भले विचारवाली सती, तुम चिन्ता मत करो। मेरे साथ स्वर्ग में विहार करो। १५१ मेरा सिर राम के आगे रखा हुआ है", हाथ ने लिखकर जनाया— "उसे ले जाओ। १५२ तुम्हें राम के पास कोई असुविधा न होगी। कुल को उजागर करनेवाले तुम्हारे ससुर विभीषण वहाँ हैं ही। १५३ राजसुख भोगने के बाद मुझे यह स्वर्गसुख मिला है। भगवान ने मुझे उत्तम गति दी है।" १५४ इतना जानकर इन्द्रजित् मेघनाद की पत्नी सुलोचना ने तन, धन और जन सबों से नाता तोड़ दिया; १५५ संसार की हर वस्तु को नाशवान् समझ लिया, और ससुर समझकर रावण के पास गई। १५६ पति की बाँह को रत्नों से रचित रथ पर रखा और शोक को दबाकर खुद भी उस रथ पर चढ़ गई। १५७ इन्द्रजित् की पत्नी के साथ पैदल सेना उसी तरह चली जिस तरह राजा के साथ चलती है। १५८ सभी दासियाँ फूट-फूटकर रोती हैं— हाय, आज भगवान ने हमें भाग्यहीन बना दिया। १५९ एक हरकारा आगे गया और शोकाकुल रावण को सूचना दी— १६० "आपकी सती पुत्रवधू सुलोचना आई हुई हैं। वे आपसे

॥ सोरठा ॥

सती पुलोहु अहाँक, आइलि छथि कहतीह किछु ॥ १६१ ॥
हुनि शिर पड़ि गेल डाक, मेघनाद-शिर समर अछि ॥ १६२ ॥
देखल आँखि उघारि, लय आनू तट पालकी ॥ १६३ ॥
बिश लोचन बह वारि, कहल विकल दशकण्ठ तहँ ॥ १६४ ॥
पति भुज देल उघारि, सती धरणि मूर्छित खसलि ॥ १६५ ॥
पुन उठि समय विचारि, श्वशुर-चरण लपटाय कह ॥ १६६ ॥

॥ गीत ॥

॥ वियोगि-मालव छन्द ॥

से पहु हमर गेला रे, रे परलोक।
हमरहि हृदय असह शोक ॥ १६७ ॥
जरब न पहु सङ्ग रे, रे यावत।
विरह - दहन - दुख तावत ॥ १६८ ॥
सकल-भुवन-राज रे, रे सभ सुख।
जखन देखब इन्द्रजित-मुख ॥ १६९ ॥
आब हमर मन रे, रे निरभय।
सुमति युगुति सति जीव दय ॥ १७० ॥

॥ त्रिभङ्गी छन्द ॥

पतिसङ्ग हम जायब अनल सभायब
घुरि नहि आयब पुनि धरणी ॥ १७१ ॥

कुछ निवेदन करना चाहती हैं। १६१ उनका सर्वनाश हो गया। मेघनाद का सिर लड़ाई के मैदान में गिरा हुआ है।" १६२ रावण ने आँखें खोलकर उनकी ओर देखा और कहा— "पालकी को मेरे पास ले आइये।" १६३ शोकवश उसकी बीसों आँखों से आँसू बह रहे थे। १६४ सती सुलोचना ने अपने पति की बाँह खोलकर रख दी और खुद बेहोश हो गिर पड़ी। १६५ फिर होश में आई और अवसर देख संभलकर ससुर के चरणों में लिटपकर कहने लगी— १६६ "मेरे प्यारे पति परलोक सिधार गये। मेरे हृदय मे असह्य शोक दे गये। १६७ जब तक मैं पति के साथ जलूँगी नही, तब तक उनके विरह का सन्ताप दूर न होगा। १६८ जब मैं इन्द्र को जीतनेवाले मेघनाद का मुँह देखूँगी तब मुझे वे सारे सुख मिल जाएँगे जो तीनों भुवनों का राज्य मिलने पर होते हैं। १६९ अब मेरे मन में कोई डर न रहेगा क्योंकि समझ-बूझ के साथ सती होने के लिए मैं अपने प्राण दे दूँगी। १७० मैं पति के साथ जाऊँगी, चिता में प्रवेश करूँगी, फिर लौटकर धरती पर नहीं आऊँगी। १७१

शुनु गुरु दशकन्धर दनुज - पुरन्दर
सुन्दर पातिव्रत - सरणी ॥ १७२ ॥
पति-शिर दिय आनी अपनँ ज्ञानी
शोक न मानी विधि-करणी ॥ १७३ ॥
अयलहुँ यहि आशा हत-जगदाशा
गत-पशुपाशा सुत-घरणी ॥ १७४ ॥

॥ सोरठा ॥

शुनि सुतवधू-विलाप, राक्षण बहुत भरोस दय ॥ १७५ ॥
कहल हृदय-सन्ताप, सुमति विलम्ब दिनेक करु ॥ १७६ ॥

॥ चौपाइ ॥

उपगत विपति हयत की कानि । मारब शत्रु भेल मन आनि ॥ १७७ ॥
रामादिक शिर प्रथमहि काटि । देवि देब दिक्पति बलि बाँटि ॥ १७८ ॥
पति-शिर शमर सहज अहँ लेब । अरि-शिर बाम चरण अहँ देब ॥ १७९ ॥
शुनि दशकन्धर-वचन कठोर । क्षण चुप रहलि नयन भर नोर ॥ १८० ॥
पुन कहलनि गुरु आगाँ ठाढ़ि । सभ सौँ आशा काँ अछि बाढ़ि ॥ १८१ ॥
जौँ कदाच अरि काँ लेब जीति । करब राज्य अरि-रहित सुनीति ॥ १८२ ॥
अपनँ काँ भेटत जन सर्ब्ब । एखनहु धरि मन मे अछि गर्ब्ब ॥ १८३ ॥
श्वशुर समाज मुख्य नृप-द्वार । रहल न आज लाज व्यवहार ॥ १८४ ॥

हे मेरे गुरुजन राक्षसराज रावण ! सुनिए, पातिव्रत का रास्ता बड़ा अच्छा होता है । १७२ आप मेरे पति का सिर ला दीजिए । आप ज्ञानवान् हैं; इसे विधि का विधान समझकर शोक नहीं कीजिएगा । १७३ संसार की आशा को छोड़ और जीवन के बन्धन को तोड़ मैं आपकी पुत्रवधू इसी आशा से आपके पास आई हूँ ।" १७४ पतोहू का विलाप सुनकर रावण ने उसे बहुत ढाढ़स दिया और सन्तप्त हृदय से कहा— "हे बुद्धिमती ! एक दिन ठहर जाओ । १७५-१७६ जब विपत्ति आ ही गयी तो अब रोकर क्या होगा । मन में आन जगी । शत्रु को मारकर रहूँगा । १७७ पहले ही राम आदि दुश्मनों के सिर काटकर, हे देवी, दिक्पतियों (इन्द्र आदि देवताओं) को बलि चढ़ाऊँगा । १७८ तब तुम अनायास ही अपने पति का सिर ले लोगी और दुश्मनों के सिर पर अपना बायाँ पाँव रखोगी ।" १७९ रावण की यह कठोर वाणी सुनकर सुलोचना क्षण भर चुप रह गई और उसकी आँखों से आँसू बहते रहे । १८० फिर गुरुजन रावण के आगे खड़ी हो कहने लगी— "आशा सबसे प्रबल होती है । १८१ यदि कदाचित् आप शत्रु को जीत लेंगे तो निष्कंटक हो न्यायपूर्वक राज्य करेंगे । १८२ आपको सभी लोग मिल जाएँगे । अभी तक आपके मन में अभिमान रह ही गया है । १८३ ससुर के सामने प्रधान दरबार में

धावत गगन भानु रह चन्द। तावत सुयश रहत स्वच्छन्द ॥ १८५ ॥
छल छथि दशमुख काँ एक पूत। जीतल अमर समर पुरहूत ॥ १८६ ॥
हमरहु नहि मन मे किछु शोक। हर्षित अमर रहथु निज लोक ॥ १८७ ॥
पहु विनु जीवन सुख की राज। बरु भल रौरव नरक समाज ॥ १८८ ॥
चलब आब गुरु-अनुमति पाय। विधिक रेख के शकत मिटाय ॥ १८९ ॥
शुनलनि वचन पुतोहुक कान। कि करथु दशमुख विधि बलवान ॥ १९० ॥
आशु शाशु-घर कनयिल जाय। कहल सकल तनि पद लपटाय ॥ १९१ ॥
कहलनि श्वशुरक वचन विचार। दैव ज्ञान हर अस्त्र न मार ॥ १९२ ॥
हम कटु कहल न बड़ गुरु जानि। कालाधीन गुणल नहि हानि ॥ १९३ ॥
मन्दोदरी कहल वृत्तान्त। नारद जे कहलनि एकान्त ॥ १९४ ॥
समर-विमुख दशमुख नहि हयत। सकुल सदल कालक घर जयत ॥ १९५ ॥
सभ सौँ हुनका अछि अरि-भाव। दशकन्धर नहि बचता आब ॥ १९६ ॥
लङ्का लूटत वानर आबि। मुनि वृत्तान्त गेला कहि भावि ॥ १९७ ॥
एतय विभीषण नृपति कहाय। करता भोग वस्तु-समुदाय ॥ १९८ ॥

आज मुझे लाज करने का अवसर न रहा। १८४ जब तक आसमान में सूरज और चाँद रहेंगे तब तक अनुपम यश छाया रहेगा कि १८५ रावण के एक बेटा था जिसने लड़ाई में देवराज इन्द्र को भी पराजित किया। १८६ मेरे मन में भी कुछ शोक नहीं है। देवता लोग अपने लोक स्वर्ग में हर्ष के साथ रहें। १८७ पति के बिना जीवन में राजसुख किस काम का है। इससे तो पति के साथ नरक में रहना ही अच्छा है। १८८ अब मैं गुरुजन से आज्ञा लेकर चलूँगी। विधाता का लिखा कौन मिटा सकता है?" १८९ रावण ने बहू की बात सुनी। वह कर क्या सकता था? भाग्य बलवान् होता है। १९० झटपट रोती हुई सास के घर गई। उसके पाँव में लिपटकर सारा हाल सुनाया। १९१ ससुर ने जो विचार दिया वह भी सुनाया। विधाता अस्त्र से मारता नहीं, वह तो सीधे ज्ञान हर लेता है। १९२ सुलोचना ने कहा— "मैंने गुरुजन समझकर उन्हें कटु वचन नहीं कहा। काल का दोष समझकर मैंने अपनी हानि की परवाह नहीं की।" १९३ फिर मन्दोदरी ने वह सारा किस्सा सुनाया जो नारद ने एकान्त में उसे सुनाया था। १९४ मन्दोदरी ने कहा— "रावण युद्ध करना नहीं छोड़ेंगे। अपने कुल के और अपने दल के सभी लोगों के साथ वे काल के गाल में समायेंगे। १९५ उनको हर एक से दुश्मनी है। अब रावण बचनेवाले नहीं हैं। १९६ बन्दर आकर लंका में लूटपाट करेंगे। नारद मुनि यह भावी घटना बता गये हैं। १९७ यहाँ लंका में विभीषण राजा होंगे और सारी वस्तुओं का भोग करेंगे। १९८

परमात्मा परमेश्वर राम। ज्ञाते छथि लक्ष्मण गुणधाम ॥ १९९ ॥
हनूमान रुद्रक अवतार। मुख्य सकल दल रहित-विकार ॥ २०० ॥
ततय विभीषण श्वशुर प्रधान। समदर्शी लग सकल समान ॥ २०१ ॥
जाउ जाउ थिक मुख्य विचार। ओतय न लेश असत व्यवहार ॥ २०२ ॥
उप-लक्ष्मण गति समुचित पूर। सती आगु स्वर्ग कत दूर ॥ २०३ ॥

॥ रूपमाला छन्द ॥

चललि पति-भुज पालकी धय, रामचन्द्र समाज ॥ २०४ ॥
कहल दल वनिता-सबारी, अबै अछि की आज ॥ २०५ ॥
जनु दशानन हारि मानल, मेघनादक नाश ॥ २०६ ॥
जनकजा पठबाय देलनि, मानि रघुवर-त्रास ॥ २०७ ॥
चिन्हल दासी भृत्यजन काँ, तट विभीषण जाय ॥ २०८ ॥
उतरि शीघ्र सुलोचना, गुरुचरण गेलि लपटाय ॥ २०९ ॥
कहल अपनैक कयल से नहि, कयल अति अपमान ॥ २१० ॥
तकर फल परिणत अचिर अछि, भेल आनक आन ॥ २११ ॥

॥ सोरठा ॥

से कर्त्तव्य उपाय, पहु-शिर लय जरि जाइ हम ॥ २१२ ॥
देल जाय मङबाय, आज्ञा बंदेहो-पतिक ॥ २१३ ॥

हे राम परमेश्वर परमात्मा हैं। लक्ष्मण के गुण तो सभी को मालूम ही हैं। १९९ हनुमान रुद्र के अवतार हैं। अन्यान्य सभी दलपति भी निष्कलुष हैं। २०० वहाँ विभीषण हैं जो तुम्हारे श्रेष्ठ ससुर हैं। समदर्शी के पास तो सब बराबर है। २०१ जाओ-जाओ। यह अच्छा विचार है। वहाँ तनिक भी बुरे बरताव का डर नहीं है। २०२ यह कहावत भलीभाँति चरितार्थ होगी कि सती के आगे स्वर्ग कितनी दूर है। २०३ पति की बाँह को पालकी में लेकर सुलोचना राम के पास चली। २०४ दल के वानरों ने देखकर कहा— "क्या आज महिला की सवारी आ रही है? २०५ लगता है, रावण ने हार मान ली क्योंकि उसका पुत्र मेघनाद मारा गया। २०६ अतः राम से डरकर उसने सीता को भेज दिया है। २०७ दासियों ने विभीषण के सेवकों को पहचाना। सुलोचना विभीषण के पास गई। २०८ पालकी से उतरकर वह विभीषण के चरण में लिपट गई। २०९ बोली— "रावण ने आपका कहा नहीं किया, आपका बहुत अपमान किया। २१० उसका फल उन्हें जल्द ही भोगना पड़ा। क्या से क्या हो गया। २११ अब ऐसा उपाय कीजिए कि मैं प्राणनाथ का सिर लेकर जल मरूँ। २१२ राम की आज्ञा लेकर वह सिर मुझे मँगवा दिया जाय।" २१३ विभीषण ने वहाँ जाकर रामचन्द्र से कहा— २१४ "अन्याय

कहल बिभीषण जाय, श्रीरघुनन्दन सौं ततय ॥ २१४ ॥
भाय हमर अन्याय, कयल पड़ल साध्वीक शिर ॥ २१५ ॥

॥ रूपमाला छन्द ॥

मेघनादक थिकथि गृहिणी, देव शुनु रघुनाथ ॥ २१६ ॥
सती नाम सुलोचना लिखि, देल स्वामी-हाथ ॥ २१७ ॥
शिर एतहि अछि मेघनादक, मुख्य अयबा काज ॥ २१८ ॥
स्वामि मिलि पावक समाइति, शरण आइलि आज ॥ २१९ ॥

॥ दण्डक छन्द ॥

जय महेश्वर-चाप-खण्डन, जनक-नगरी-कृत-सुमण्डन,
पालिताखिल-भक्त-सज्जन, दलित-दुर्ज्जन हे ॥ २२० ॥
सत्य-सन्ध मनोज-सुन्दर, जनक-जननी-सत्य-धृतिकर,
महाराज मही-पुरन्दर, प्राप्त-निर्ज्जन हे ॥ २२१ ॥
जय धनुर्द्धर दनुज-नाशन, सदा-शासित-पाकशासन,
कृत-विहङ्गम-नायकासन, पन्नगासन हे ॥ २२२ ॥
जय महोदधि-सेतु-कारक, दशवदन-कुल विपुल-मारक,
विहित-मारुततनय-चारक, नुत-विषाशन हे ॥ २२३ ॥

किया मेरे भाई ने पर उसका बुरा फल इस बेचारी सती के सिर पर पड़ा। २१५ हे राम, सुनिये! यह मेघनाद की पत्नी है। २१६ इसका नाम है सती सुलोचना। स्वामी के कटे हुए हाथ ने इसे लिखकर जानकारी दी है कि २१७ मेघनाद का सिर यहाँ पड़ा हुआ है। इसके यहाँ आने का मुख्य काम यह है कि २१८ यह स्वामी के साथ चिता में प्रवेश कर सती होना चाहती है। इसीलिए सिर लेने आपके पास आई है।" २१९ सुलोचना स्तुति करने लगी— "राम की जय हो, जय हो, जिन्होंने शिव के धनुष को तोड़ा, जनकपुरी की शोभा बढ़ाई, सारे भक्त सज्जनों का पालन किया और दुर्जनों का दलन किया। २२० आप सत्यव्रती हैं, कामदेव के समान सुन्दर हैं, पिता और माता दोनों के सत्य और धैर्य को बचानेवाले हैं। आप महाराज हैं, धरती के इन्द्र हैं, आप एकान्तसेवी हैं। २२१ आप धनुष चलाने में दुर्धर्ष हैं, आपने सदा इन्द्र के ऊपर शासन किया, आपने पक्षियों के राजा गरुड़ को वाहन बनाया तथा शेषनाग को आसन बनाया। २२२ समुद्र में पुल बाँधनेवाले आपकी जय हो। रावण के विशाल वंश को नाश करनेवाले आप की जय हो, हनुमान को दूत बनानेवाले और शिव को प्रणाम करनेवाले आपकी जय हो। २२३ हे रघुराज! आपकी जय हो। २२४ जहाँ न मन, न बुद्धि और न

॥ गीत ॥

जय रघुराज ॥ २२४ ॥
मन मति वचनक पहुच जतय नहि, निर्गुण ब्रह्म देखल आज ॥ २२५ ॥
हम राक्षसी इन्द्रजित-गृहिणी, विषयविलास सतत काज ॥ २२६ ॥
योगिनि बनि अयलहुँ शरणागत, करिय प्रणाम रहित-लाज ॥ २२७ ॥
प्रभु जगदिष्ट इष्ट-सम्पादक, तुच्छ सकल पुर सम्राज ॥ २२८ ॥
अन्तर्य्यामी रघुनन्दन अहँ, व्यर्थ बेखरी के बाज ॥ २२९ ॥
अपनँ कयल वनुज-कुल-भेदन, प्रभु समर्थ बड़ रण-शूर ॥ २३० ॥
हमरा जन्य बीज-रवि भेदब, करब मनोरथ निज पूर ॥ २३१ ॥
बेल जाय मँगवाय पतिक शिर, आज न हो प्रभु संग्राम ॥ २३२ ॥
जय रघुनन्दन दुर्गति-खण्डन, भव-जलनिधि-तारण नाम ॥ २३३ ॥

॥ चौपाइ ॥

शुनि सुलोचना साध्वी उक्ति । रघुवर कहलनि वचन सुयुक्ति ॥ २३४ ॥
करु जनु शुभमति चित्त विषाद । मन हो तोँ जीबथि घननाद ॥ २३५ ॥
निर्व्विषाद अपना घर जाउ । युवती सती वियोग न पाउ ॥ २३६ ॥
हाथ जोड़ि कर दण्ड-प्रणाम । कह सुलोचना शुनु गुणधाम ॥ २३७ ॥

वचन पहुँच सकता है, उस निर्गुण ब्रह्म को आज मैंने देखा । २२५ मैं मेघनाद की पत्नी राक्षसी हूँ । सदा विषय-भोग में लगी रही हूँ । २२६ पर आज योगिनी बनकर आपकी शरण में आई हूँ और बिना लाज के आपको प्रणाम करती हूँ । २२७ हे प्रभु ! आप संसार में सबों के इष्टदेव हैं । आप सभी कामनाओं को पूरा करनेवाले हैं । संसार की सभी वस्तुएँ तुच्छ हैं, नगर तुच्छ है और साम्राज्य तुच्छ है । २२८ हे राम ! आप तो सबके भीतर की बात समझते हैं, फिर आपकी स्तुति में बेखरा ध्वनि (शब्दोच्चारण) करने का क्या प्रयोजन होगा ? २२९ आपने राक्षसों के कुल का संहार किया । आप सब कुछ करने में समर्थ हैं और लड़ाई में बहादुर हैं । २३० मेरे वास्ते बीज-रवि का भेदन कीजिएगा और अपनी कामना पूरी कीजियेगा । २३१ मुझे पति का सिर मँगवा दीजिए । आज लड़ाई बन्द रखिए । २३२ दुर्गति को नाश करनेवाले रघुनन्दन की जय हो । आपका नाम भव-सागर से पार उतारनेवाला है ।" २३३ सती सुलोचना की बात सुनकर राम ने युक्तिसंगत बात कही— २३४ "हे कल्याणकर विचार वाली, आप अपने मन में शोक मत कीजिए । आप चाहें तो आपके पति मेघनाद जी सकते हैं । २३५ आप शोक-विषाद को छोड़ अपने घर जाइए । आप युवती हैं और पतिव्रता हैं । विरह में मत पड़िये ।" २३६ सुलोचना ने हाथ जोड़कर और दंडवत् प्रणाम करके बोली— "हे गुणवान, २३७ एक गुहा में दो सिंहों का रहना ठीक

एक गुहा मे दुइ मृगराज। समुचित नहि निर्व्वाहक काज॥ २३८॥
पितो नृपति देखता शक्रारि। एक कोस मे दुइ तरुआरि॥ २३९॥
जेहि लय योग ज्ञान वैराग्य। सुलभ प्राप्त से हमर सुभाग्य॥ २४०॥
प्रभु-पद देखि छुटल भव-राग। मन नहि कतहु विषय-सुख लाग॥ २४१॥
गगन कहक थिक गगनाकार। जलधि जलधि उपमाक विचार॥ २४२॥
राम - दशानन सम संग्राम। राम - दशानन उपमा ठाम॥ २४३॥
सुरपति-अरि हमरा प्राणेश। कोन वस्तु नहि तनिका देश॥ २४४॥
निर्गुण ब्रह्म-सगुण-तन धयल। भूप-रूप बड़ माया कयल॥ २४५॥
जे जे निहत भेल संग्राम। से से पाओल उत्तम धाम॥ २४६॥
धन्य धन्य थिक अपनेक कोप। पाप-पुञ्ज कर क्षण मे लोप॥ २४७॥
कीर्त्ति-शरीर अचल युग चारि। बनल काज की देब बिगारि॥ २४८॥
प्रभु-रुचि जानि आनि देल मुण्ड। देखयित कौतुक वानर-झुण्ड॥ २४९॥
जेहन परशमणि पाबथि रङ्क। पति-शिर लेल हरषि भरि अङ्क॥ २५०॥
आँचर सौं मुह धूरा पोछ। भ्रमराली-निभ दाढ़ी-मोछ॥ २५१॥
जीतल समर अमर अमरेश। आज हमर भेल योगिनि-भेश॥ २५२॥

नहीं। दोनों में बनेगा नहीं। २३८ इन्द्रजित् मेघनाद अपने चाचा विभीषण को राजा बने देखेंगे। एक म्यान में दो तलवारें कैसे समाएँगी। २३९ जिसको पाने के लिए योग है, ज्ञान है और वैराग्य है, वह (राम के चरण का दर्शन) मुझे सौभाग्यवश मिल गया है। २४० आपके चरण को देखकर दुनिया के प्रति मेरा आकर्षण समाप्त हो गया है। अब विषयभोग में कहीं मन नहीं लगता है। २४१ आकाश के समान आकाश ही कहा जा सकता है, समुद्र की उपमा समुद्र ही सम्भव है। २४२ इसी तरह राम और रावण के बीच जो लड़ाई हुई उसकी उपमा राम-रावण-युद्ध से ही दी जा सकती है। २४३ मेरे पति इन्द्र को जीतनेवाले हैं अतः उनके राज्य में कौन-सी वस्तु मेरे लिए दुर्लभ है? २४४ निर्गुण ब्रह्म ने सगुण शरीर धारण किया। आपने राजा का रूप धारण कर बहुत लीला की। २४५ लड़ाई में जो-जो मारा गया, सबों को स्वर्ग मिला। २४६ आपका क्रोध भी धन्य है, जो पाप की राशि को क्षण भर में जला देता है। २४७ यश रूपी शरीर चार युगों तक टिका रहता है। मैं अपने बने हुए काम को क्या बिगाड़ दूँ?" २४८ राम का इशारा पाकर वानरों ने मेघनाद का सिर ला दिया और कुतूहलपूर्वक देखने लगे। २४९ सती सुलोचना ने बड़े हर्ष से अपने पति का सिर गोद में ले लिया, मानो रंक को पारसमणि मिल गई हो। २५० उन्होंने अपने आँचल से चेहरे पर पड़ी धूल को साफ़ किया। उस सिर में दाढ़ी और मूँछ भौंरों की कतार-सी लगती थी। २५१ "लड़ाई में अमर इन्द्र को जीता, पर आज मैं

रामचन्द्र कौ कयल प्रणाम । जहि मे सकल-विश्व-विश्राम ॥ २५३ ॥
रामाकार सकल थल भास । छुटल राग संसार प्रयास ॥ २५४ ॥
चलयिक समय हँसल से मुण्ड । हुलचल माचल वानर-झुण्ड ॥ २५५ ॥
बाहु लिखल लक्ष्मण-गुण पूर । हँसिहि कयल जन-संशय दूर ॥ २५६ ॥
हँसल मुण्ड भुज-लिपि भेल ठीक । पति-सह-गामिनि धन्या थीकि ॥ २५७ ॥
चललि प्रदक्षिण प्रभुकाँ कयल । शिर-भुज पुन पालकि पर धयल ॥ २५८ ॥
बड़ बड़ बाजन चलल निशान । आर्त्तनाद सौँ पूरित कान ॥ २५९ ॥
सञ्चर बहुत निशाचर लोक । प्रभु-आज्ञा सौँ रोक न टोक ॥ २६० ॥
सिन्धुक सङ्गम थल भल जाय । चिता बहुत विस्तार बनाय ॥ २६१ ॥
श्रीखण्डादिक लागल ढेर । वनिता पुरुष सकल दिश घेर ॥ २६२ ॥
घृत घट बहुत चिता मे ढारि । धय भुज शिर नागेश-दुलारि ॥ २६३ ॥
आहिताग्नि दय देखनि ताहि । मर्य्यादा कुल-युगल निबाहि ॥ २६४ ॥
पति सह सती परमगति गेलि । द्वेषराग सौँ रहिता भेलि ॥ २६५ ॥
सभ वृत्तान्त देखल लङ्केश । मन्दोदरी सहिता तहि देश ॥ २६६ ॥
अयला कि करथु मन बड़ शोक । संसारक निन्दा कर लोक ॥ २६७ ॥

योगिनी बन गई हूँ।" २५२ यह कहकर सुलोचना ने राम को प्रणाम किया, जिसमें सारी दुनिया समाई हुई है। २५३ सभी स्थल राम ही राम दिखाई देने लगा। संसार के प्रति लगाव खत्म हो गया। २५४ चलते समय मेघनाद का मुण्ड हँस उठा। वानरों के दल में हलचल मच गयी। २५५ मेघनाद की बाँह में लक्ष्मण के सारे गुण लिखे थे। मुंड ने हँसकर लोगों के सन्देह को दूर कर दिया। २५६ मुंड यह जनाने के लिए हँसा कि बाँह में जो लिखा है वह सच्चा हुआ। जो स्त्री पति के साथ जलती (सती होती) है, वह धन्य है। २५७ सुलोचना राम की प्रदक्षिणा करके विदा हुई। पति के सिर और बाँह को फिर उसी पालकी पर रखा। २५८ बड़े-बड़े बाजे और पताकाएँ चलीं। हाहाकार से कान फट रहे थे। २५९ बहुत से राक्षस भी साथ चल रहे थे। राम की आज्ञा से कोई रोक-टोक न थी। २६० सभी सिन्धु के संगम पर पहुँचे। वहाँ बहुत बड़ी चिता रचाई गई। २६१ श्रीखंड चन्दन आदि वस्तुओं का अम्बार लग गया। चारों ओर से स्त्रियाँ और पुरुष चिता को घेरे हुए थे। २६२ चिता में कई घड़े घी डाला गया। तब उस पर बाँह और सिर को शेष-कन्या सुलोचना ने स्वयं रख दिया। २६३ तब उसमें अग्नि का आधान किया। इस प्रकार दोनों कुलों की मर्यादा का पालन करके सती सुलोचना पति के साथ जलकर स्वर्ग चली गई और राग-द्वेष आदि सभी विकारों से मुक्त हो गई। २६४-२६५ वहाँ मन्दोदरी-सहित रावण ने यह सारा तमाशा देखा। २६६ आये तो करते क्या ? मन में भारी शोक था।

एहि संसारक ई व्यवहार। उतपति थिति होइछ संहार॥ २६८॥
सभ जन घुरि लङ्का गढ़ प्राप्त। जय - प्रत्याशा भेल समाप्त॥ २६९॥
अतिशय विकल दशानन कान। कर उपदेश आन काँ ज्ञान॥ २७०॥
एहि संसारक भंगुर भोग। प्रपादेश संयोग वियोग॥ २७१॥
ककरो विभव रहल नहि थीर। जेहन कमल-दल चञ्चल नीर॥ २७२॥
वर्त्तमान कत कत कत जाय। कालपुरुष सभ सुख धय खाय॥ २७३॥

॥ इति श्रीचन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे लङ्काकाण्डे नवमोऽध्यायः॥

॥ अथ दशमोऽध्यायः॥

॥ चौपाइ॥

रावण मन मन मानल हारि। महि नहि रहल शूर शक्रारि॥ १॥
मारुत-सुत-बल हृदय विचारि। जनिक मुष्टि शत-अशनि प्रहारि॥ २॥
शुक्रक निकट गेला अति दीन। बद्धाञ्जलि राजस - रस - हीन॥ ३॥
शुक्र पुछन कहु नृप लङ्केश। कोन हेतु अयलहुँ एहि देश॥ ४॥

लोग संसार की परिपाटी की निन्दा करते थे— २६७ "इस दुनिया की यही रीति है। इसमें हर वस्तु की उत्पत्ति, स्थिति और नाश तीनों होते ही हैं।" २६८ फिर सभी लोग लौटकर लंका गढ़ गये। जीतने की उम्मीद खत्म हो चुकी थी। २६९ बहुत खिन्न हो रावण रो रहा था, पर दूसरों को ज्ञानोपदेश दे रहा था— २७० "इस संसार में सुख-दुःख का भोग क्षण भर ही होता है। यहाँ मिलन और बिछोह उसी तरह प्रतिक्षण होते रहते हैं, जिस तरह प्याऊ पर प्यासे लोग परस्पर मिलते और क्षण भर में एक-दूसरे से अलग हो जाते हैं। २७१ किसी का भी विभव सदा नहीं रहता है। वह उसी प्रकार चंचल रहता है जिस प्रकार कमल के पत्ते पर पानी। २७२ कोई वस्तु सदा वर्तमान कहाँ रहती। न जाने वह कहाँ-कहाँ चली जाती है। हरेक सुख को अन्त में कालपुरुष चबा जाता है।" २७३

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में लंकाकाण्ड का नवाँ अध्याय समाप्त॥

दसवाँ अध्याय

रावण का शुक्राचार्य से मंत्र ले साधना करना और राम का विघ्न डालना

रावण ने मन में हार मान ली। वीर मेघनाद न रहा। १ उसको मालूम हो गया कि हनुमान के कितनी ताकत है जिनका घूँसा सौ वज्रों की चोट के बराबर है। २ इसलिए वह परम दीन हो, राजस् सुख से विरक्त हो हाथ जोड़कर राक्षसों के गुरु शुक्राचार्य के पास गया। ३ शुक्राचार्य ने

शर-जर्जर अति कृशतर काय। कियक रहल अछि वदन सुखाय॥ ५॥
कयल प्रणाम विनत शत वार। कहल दशानन शोक अपार॥ ६॥
वचन एखन अछि ई कहवाक। नहि अछि राक्षसकुल रहवाक॥ ७॥
लड़यित लड़यित भेलहुँ आँट। एको तरह नहि बाँचक बाट॥ ८॥
मृतसमान अयलहुँ एहि ठाम। असुर-शमन सन जनमल राम॥ ९॥
विद्यमान अपनेँ जहिठाम। असुरक हारि होइछ संग्राम॥ १०॥
कहलनि शुक्र ग्रहण करु मन्त्र। सिद्ध हयत तौँ होयब स्वतन्त्र॥ ११॥
निकट न आओत कालक दूत। कि करत समर अमर पुरहूत॥ १२॥
गुप्त करू गय होमक कुण्ड। देखब बुझय न वानर-झुण्ड॥ १३॥
होमकुण्ड आगिक उठ वाह। तेहि सौँ उतपति रथ रथवाह॥ १४॥
नाना अस्त्र शस्त्र बहराय। तखन चलब रण-ध्वज फहराय॥ १५॥
अजर अमर रहुगय सभ काल। करु गय दीक्षाविधि प्रतिपाल॥ १६॥
विघ्न मध्य नहि होमय पाब। शत्रु सकेत रहै अछि दाब॥ १७॥
बलि सन राजा वञ्चित कयल। स्वयं विष्णु वामन-तन धयल॥ १८॥
बलि-हित करइत गेल एक आँखि। मन्त्रशक्ति की होयत राखि॥ १९॥

पूछा— "कहिए, लंकेश रावण, आप मेरे यहाँ किस प्रयोजन से पधारे? ४ आपका शरीर तो तीरों से क्षत-विक्षत हो गया है। आप बड़े दुबले हो गये हैं। आपका मुँह क्यों सूख रहा है?" ५ नम्रतापूर्वक सौ बार प्रणाम करके रावण ने अपने अपार शोक का वृत्तान्त सुनाया और कहा— ६ "अभी यही बात कहनी है कि अब राक्षसों का कुल नहीं बचनेवाला है। ७ मैं लड़ते-लड़ते बेदम हो गया। बचने का एक भी रास्ता नहीं दिखाई देता है। ८ मैं असमर्थ हुआ सा यहाँ आया हूँ। राक्षसों के लिए यम के समान राम ने जन्म लिया है। ९ जहाँ आप मौजूद हैं वहीं लड़ाई में राक्षस हारते जा रहे हैं।" १० शुक्राचार्य ने कहा— "मुझसे एक मन्त्र लीजिए। यदि यह मन्त्र सिद्ध हो जाएगा तो आप मुक्त हो जाइएगा। ११ यम का दूत भी आपके पास न भटकेगा, युद्ध में इन्द्रदेव भी कुछ नहीं कर सकेंगे। १२ आप चुपसे से जाइए और हवन-कुण्ड बनाइये। देखना, कहीं वानरों के दल को मालूम न हो जाए। १३ हवन-कुण्ड से आग की ज्वाला निकलेगी, उससे एक रथ और एक सारथि उत्पन्न होगा। १४ तरह-तरह के अस्त्र-शस्त्र भी निकलेंगे। तब आप ध्वजा फहराते युद्ध के लिए चलिएगा। १५ इसके प्रभाव से सदा अजर-अमर रहियेगा। दीक्षा का विधान पूरा कीजिए। १६ बीच में विघ्न न होने पावें। दुश्मन घात लगाए रहते हैं। १७ भगवान् विष्णु ने स्वयं वामन-रूप धारण कर बलि जैसे राजा को धोखा दिया। १८ बलि का हित करते हुए मेरी एक आँख चली गई। मन्त्रशक्ति को सुरक्षित रखना कठिन है। १९

मीनादिक तन धयलनि जेह। स्वयं विष्णु रघुनन्दन सेह॥ २०॥
मन्त्र लेल होमक विधि पाय। मुदित दशानन लङ्का जाय॥ २१॥
अपन भवन अन्तर दशभाल। गुफा बनाओल जेहन पताल॥ २२॥
लङ्का-द्वार कपाट लगाय। होमक द्रव्य सकल मङ्गबाय॥ २३॥
होम करय लगला लङ्केश। मौन दृढ़ासन सय्यँम-वेश॥ २४॥
देखल विभीषण अम्बर-धूम। राजभवन सौँ अविरल धूम॥ २५॥
हे रघुनन्दन देखिय धूम। रवि शशि-ग्रह-मण्डल कौं चूम॥ २६॥
सविधि होम-पूरणता पाय। रावण सत्य अमर भय जाय॥ २७॥
कयल जाय प्रभु शीघ्र उपाय। सिद्ध दशानन कर अन्याय॥ २८॥

॥ सोरठा ॥

शुनु अङ्गद हनुमान, जाउ सकल दल कहल प्रभु॥ २९॥
करब विघ्न मतिमान, होम दशानन करै अछि॥ ३०॥

॥ रूपमाला ॥

दशकोटि वानर गेल लङ्का, लाँघि सभ प्राकार॥ ३१॥
जाय रावण-भवन-रक्षक, सभक कयल संहार॥ ३२॥
बाजि गजकौं पटकि मारल, घोरतर चीत्कार॥ ३३॥
तत विभीषण-वधू शरमा, कयल सूचित द्वार॥ ३४॥

जिन्होंने मीन आदि अवतार लिया वही भगवान विष्णु राम के रूप में अवतीर्ण हुए हैं।" २० हवन की रीति जानकर रावण ने शुक्राचार्य से मंत्र की दीक्षा ली। फिर प्रसन्न हो लंका गया। २१ उसने अपने महल के भीतर पाताल-जैसी एक गुहा बनाई। २२ लंका के दरवाज़े पर फाटक बन्द करा दिया। फिर हवन की सारी सामग्री मँगाई गई। २३ तब वह मौन हो, अटल आसन लगाकर कड़े संयम के साथ बैठकर हवन करने लगा। २४ विभीषण ने आकाश में धुआँ देखा जो राजभवन से लगातार निकल रहा था। २५ उन्होंने राम से कहा— "हे राम! यह धुआँ देखिए जो सूरज और चाँद को छू रहा है। २६ यदि रावण विधिपूर्वक हवन पूरा कर लेगा तो वास्तव में अमर हो जाएगा। २७ हे प्रभु! इसका जल्द प्रतिकार किया जाय। यदि रावण को सिद्धि मिल गई तो अनर्थ हो जाएगा।" २८ सुनकर राम ने कहा— "हे अंगद, हे हनुमान! सदल-बल प्रयाण कीजिए। २९ रावण हवन कर रहा है। जाकर उसमें विघ्न कीजिए।" ३० दस करोड़ वानर लंका गये। सभी चहारदीवारियों को लाँघकर भीतर घुसे और रावण के महल के रक्षकों का संहार किया। ३१-३२ घोड़ों और हाथियों का पटक-पटककर मारा। वे ज़ोर-ज़ोर से चीखने लगे। ३३ वहाँ विभीषण की पत्नी शरमा ने उस गुहा का गुप्तद्वार दिखा दिया। ३४ गुहा का द्वार मज़बूती के साथ पत्थरों से ढका

॥ चौपाइ ॥

पाथर-पिहित-गुहा दृढ़द्वार। अङ्गद जोर लात सौँ मार ॥ ३५ ॥
चूर चूर सभ कयल कपाट। कयल प्रवेश विदित भेल बाट ॥ ३६ ॥
अङ्गद कहल सकल दल आउ। करू कोलाहल ध्यान छोड़ाउ ॥ ३७ ॥
रावण ध्यानलीन नहि वाक। दृढ़ आसन से अनत न ताक ॥ ३८ ॥
पकड़ि पकड़ि सेवक काँ मार। फेंकल वस्तु होम - सम्भार ॥ ३९ ॥
उप-साधक काँ कुण्डहिँ झोँक। शक के महावीरगण रोक ॥ ४० ॥
स्रुव लेल खेँचि न दशमुख जान। स्रुवक मारि मारल हनुमान ॥ ४१ ॥
मारि बहुत रावण सहि लेथि। ध्यानदृष्टि नहि बाहर देथि ॥ ४२ ॥
अन्तःपुर गेला युवराज। आनल मन्दोदरी समाज ॥ ४३ ॥
घिसिआबथि तनिकाँ धय झोँट। करथि उपद्रव कपि कय गोट ॥ ४४ ॥
फाड़ल वसन जेहन हो जाल। तदपि न ध्यान छोड़ दशभाल ॥ ४५ ॥
कानथि मन्दोदरी विषाद। हा सुत कतय गेलहुँ घननाद ॥ ४६ ॥
अहँ बिनु एत गोट गञ्जन भोग। जीवित की नहि विधिसंयोग ॥ ४७ ॥
शुनु प्राणेश्वर विपति समाज। एखनहुँ धरि अहँ काँ नहि लाज ॥ ४८ ॥

हुआ था। अंगद ने जोर से उसमें अपने पाँव से धक्का मारा। ३५ फाटक को चकनाचूर कर दिया। रास्ता मिल गया और उसमें प्रवेश किया। ३६ अंगद ने कहा— "सारा दल जुटाकर यहाँ आइये और हल्ला मचाइए और इस प्रकार रावण का ध्यान तोड़िए।" ३७ रावण मौन साधकर ध्यान में लीन था। अटल आसन लगाये हुए था। कहीं इधर-उधर झाँकता न था। ३८ वानरों का दल सेवकों को पकड़-पकड़कर पीटने लगा। हवन की सामग्री को फेंकने लगा। ३९ हवन में सहायता करनेवाले जो पुरोहित थे उन्हें तो हवन-कुण्ड में ही झोंक दिया। वानरों के दल को कौन रोक सकता था। ४० पास से स्रुव खींच लिया, पर रावण को कुछ मालूम न हुआ। तब हनुमान उसे स्रुव से पीटने लगे। ४१ रावण मार बर्दाश्त करता रहा, पर ध्यान तोड़ बाहर नज़र नहीं फेरी। ४२ अंगद निवास में घुस गये। परिजन-सहित मन्दोदरी को पकड़ लाये। ४३ उसे चोटी पकड़ घसीटने लगे। कपिगण तरह-तरह से ऊधम मचाने लगे। ४४ कपड़ों को फाड़-फाड़कर जाल-सा बना दिया, फिर भी रावण का ध्यान न टूटा। ४५ मन्दोदरी बिलख-बिलखकर रोने लगी— "हा पुत्र मेघनाद, तुम कहाँ गये? ४६ तुम्हारे बिना इतनी बड़ी दुर्दशा भुगतनी पड़ रही है। जीते थे तो क्या नहीं था। विधि की विडम्बना है। ४७ सुनिए हे प्राणनाथ! इतनी सारी विपत्तियाँ भुगतनी पड़ीं, अब भी आपको लाज नहीं आती है क्या? ४८ उठिए-उठिए, जाकर लड़ाई कीजिए।

उठु उठु समर करुगय जाय। की बैसल छी घर घुरिआय ॥ ४९ ॥
शुक्रक एतय लाग नहि मन्त्र। परमेश्वर रघुनाथ स्वतन्त्र ॥ ५० ॥
मरण नीक बरु निस्संकोच। वानर धय धय आँचर नोच ॥ ५१ ॥
की बैसल छी आश विचारि। हा हतभाग्या मेलहुँ उघारि ॥ ५२ ॥

॥ सोरठा ॥

सहि न सकल दशमाथ, मन्दोदरि विकला वचन ॥ ५३ ॥
खड्ग लेल विश हाथ, कपिगण काँ मारय चलल ॥ ५४ ॥

॥ चौपाइ ॥

सहि तरुआरि बालि-सुत अङ्ग। हँसि सभ चलल होम कय भङ्ग ॥ ५५ ॥
कयल कटक रामक तट गमन। होमक धूम-धार कय शमन ॥ ५६ ॥
देखल प्राणप्रिया लङ्केश। लगला करय ज्ञान-उपदेश ॥ ५७ ॥
रावण-भवन भालु कपि आब। ई सभ जानब काल-स्वभाव ॥ ५८ ॥
यम जेहि नगर पयर नहि देथि। कुशलक्षेम सोमहि बुझि लेथि ॥ ५९ ॥
जिबयित की नहि देखी आँखि। की लय करब प्राण धन राखि ॥ ६० ॥
प्राणप्रिया परिहरु मन शोक। सकल विनाशि दृश्य अछि लोक ॥ ६१ ॥
जत हम-हम तत दुःख अपार। जत निर्म्मम तत दुःख-उधार ॥ ६२ ॥

घर घुसकर बैठे क्या हैं। ४९ शुक्राचार्य का मंत्र यहाँ कामयाब न होगा। भगवान राम इन सबों के वश में नहीं हैं। ५० हे निर्लज्ज! इससे तो लड़कर मर जाना अच्छा है। देखिए, ये बन्दर पकड़-पकड़कर मेरे आँचल को नोच रहे हैं। ५१ किस आशा से, क्या सोचकर आप बैठे हुए हैं? हाय, मैं अभागिन नंगी हो रही हूँ।" ५२ मन्दोदरी का यह विलाप-भरा वचन रावण बर्दाश्त न कर सका। ५३ बस, बीसों हाथों में तलवार लेकर वह कपियों को मारने के लिए चल पड़ा। ५४ अंगद ने तलवार के वार को बर्दाश्त कर लिया और हवन में विघ्न करके सभी हँसकर चल पड़े। ५५ हवन के धुएँ को खत्म कर सभी अपनी छावनी में राम के पास पहुँचे। ५६ उधर रावण ने अपनी प्रेयसी मन्दोदरी को देखा और उसे ज्ञान का उपदेश देने लगा— ५७ "रावण के महल में भालू और बन्दर आये यह सब काल का संकेत है। ५८ इस नगर में तो यमराज भी क़दम नहीं रख सकते थे। सीमा के उस पार से ही कुशल-मंगल जानकर चले जाते थे। ५९ कहावत है, जियें तो क्या-क्या न देखें। अब जीवन और धन रखकर क्या करूँगा? ६० हे प्यारी! मन में शोक मत करो। इस संसार में जो कुछ दीख पड़ता सब विनाशशील है। ६१ जितनी ही 'मैं-मैं' की भावना होगी उतना ही अधिक दुःख होगा, और ममता जितनी घटती जाएगी उतना दुःख से उद्धार होता जाएगा। ६२ अभी मैं

सम्प्रति हम चललहुँ संग्राम। आइ कि बचता लक्ष्मण राम॥ ६३॥
जौँ कदाच विधि हो विपरीति। तौँ हमरा मे राखब प्रीति॥ ६४॥
हमर चिता मे करब प्रवेश। सीता मारि लेब एहि देश॥ ६५॥
मन्दोदरी कहल शुनु नाथ। सभ गति अछि रघुनन्दन-हाथ॥ ६६॥
बनचर चारि एक अति खर्ब्ब। हरण करय दुर्ज्जन-गण-गर्व्व॥ ६७॥
तीनि राम मे दोसर राम। अवतरला अयला एहि ठाम॥ ६८॥
राजस तामस रस दिय तोड़ि। राज्य विभीषण काँ दिय छोड़ि॥ ६९॥
निर्ज्जन वन बसु मुनिक समाज। सानुकूल रहता रघुराज॥ ७०॥
तनिक चरण मे ध्यान लगाउ। माया - सीता तत पहुँचाउ॥ ७१॥
कयल बहुत युग राज्यक भाग। परिणत से प्राणान्तिक रोग॥ ७२॥
कयल ककर नहि अहँ अपराध। वनिता-हरिणि-हरण बनि व्याध॥ ७३॥
विषय मनोरथ-पुञ्ज हटाउ। अथवा रण मे माँथ कटाउ॥ ७४॥
रावण कहल शोक-विस्तार। हम मानल मिथ्या संसार॥ ७५॥
जाय करब जौँ वन मे बास। दुर्ज्जन करत बहुत उपहास॥ ७६॥
साधन-योग्य न रहल शरीर। की हम की मारथु रघुवीर॥ ७७॥

लड़ने को चला। आज राम और लक्ष्मण बचकर जाएँगे कहाँ। ६३ यदि विधाता विपरीत हो अर्थात् मैं ही मारा जाऊँ तो मुझमें प्रेम बनाये रखना। मेरी चिता मे समा जाना। सीता को भी मारकर उसी जगह ले लेना।" ६४-६५ मन्दोदरी ने कहा— "हे प्राणनाथ, सब कुछ राम के हाथ में है। ६६ चार वनवासी जिनमें एक बहुत छोटा है (अर्थात राम, लक्ष्मण, सुग्रीव और अंगद) दुर्जनों के घमड को चूर कर रहे हैं। ६७ राम नाम वाले तीन अवतारों में (अर्थात् बलराम, दशरथ-पुत्र राम और परशुराम मे) द्वितीय राम ने अवतार लिया है। वही यहाँ आये हैं। ६८ राजस् (भाग-विलास आदि) और तामस् (क्रोध-द्वेष आदि) के प्रति चाव छोड़ दीजिए। राज्य विभीषण को दे दीजिए। ६९ निर्जन वन में मुनियो की मडली में जाकर बसिये। भगवान राम आप पर कृपालु रहेंगे। ७० उनके चरणों में ध्यान लगाइए और मायास्वरूपा सीता को उनके पास दे आइए। ७१ आपने कई युगों तक राज्य-सुख का भोग किया। वही भोग आज जानलेवा रोग के रूप में परिणत हो गया है। ७२ आपने नारी रूपी मृगी को फँसाने के लिए व्याध बनकर किस-किसका अपराध नहीं किया। ७३ आप चाहे तो विषय-भोग के लालच को छोड़िये या लड़ाई में सर कटाइये।" ७४ रावण ने कहा— "भारी शोक आ पड़ा है। मैं मानता हूँ कि यह संसार मिथ्या है। ७५ फिर भी यदि मैं जाकर वन में वास करूँ तो दुष्ट लोग मेरी खिल्ली उड़ाएगे। ७६ अब मेरा शरीर तप करने लायक न रहा। चाहे मैं राम को मारूँ या राम ही मुझको

जानि जानकी आनल गेह। मरण राम-कर निस्सन्देह ॥ ७८ ॥
अपनहिँ पौरुष हम हठ ठानि। समर मरब की होयत हानि ॥ ७९ ॥
ककरो रहल न मन मे रोच। रण लड़ि मरब कोन सङ्कोच ॥ ८० ॥
हमर राज्य जौँ पाओत आन। हमहूँ होयब स्वयं भगवान ॥ ८१ ॥
जायब तनिकहि अङ्ग समाय। जनु कटु धूम जलद बनि जाय ॥ ८२ ॥
॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे लङ्काकाण्डे दशमोऽध्यायः ॥

॥ अथ एकादशोऽध्यायः ॥

॥ चौपाइ ॥

एहि चिन्ता मे भय गेल भोर। वानर भालु द्वार कर शोर ॥ १ ॥
रे दशकण्ठ लण्ठ बहराह। राम-शरानल शलभ समाह ॥ २ ॥
चारू द्वार नगर घर घेर। रावण कां तृणवत नहि टेर ॥ ३ ॥
रावण शुनल कपिक किलकार। कहल प्रबल रथ कर तयार ॥ ४ ॥
रथ मे चक्र एगारह पाँच। बहुत भयावह वदन पिशाच ॥ ५ ॥

मारें। ७७ मैं जान-बूझकर सीता को अपने घर ले आया। अवश्य ही राम के हाथ मेरी मृत्यु होगी। ७८ यदि मैं अपनी ही बहादुरी से लड़ाई छेड़ूँ और लड़ाई के मैदान में मर जाऊं तो क्या हानि होगी? ७९ मैंने मन मे किसी की परवाह नहीं की। तब युद्ध में लड़कर मरूँ तो इसमें लज्जा क्या है? ८० यदि मेरा राज्य कोई और ले लेगा तो मैं भी खुद भगवान हो जाऊँगा। ८१ मैं उसी के शरीर में लीन हो जाऊंगा, जिस तरह कड़वा धुआँ बादल बन जाता है।" ८२

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में लंकाकाण्ड का बसवाँ अध्याय समाप्त ॥

ग्यारहवाँ अध्याय

राम और रावण का प्रचण्ड युद्ध और रावण का वध

इसी तरह सोच-विचार करते सुबह हो गई। बन्दर और भालू दरवाज़े पर शोर मचाने लगे— १ "अरे बदमाश रावण, जल्द निकलो और राम के तीर की आग में पतंग की भाँति समाओ।" २ बन्दरों और भालुओं ने नगर के चारों द्वारों को घेर लिया; और रावण को तिनके के बराबर भी टेरते नहीं। ३ रावण ने जब बन्दरों की किलकारी सुनी तो हुक्म दिया— "एक मजबूत रथ तैयार करो।" ४ उस रथ में सोलह पहिये थे। उसके आगे-पीछे बहुत सारे डरावने चेहरेवाले राक्षस थे। ५ रथों में गधों के कई जोड़े जोते

खर अनेक रथ जोतल जोड़ । सैन्य प्रधान चलल नहि थोड़ ॥ ६ ॥
अस्त्र-शस्त्र सभ तहि पर धयल । दशकन्धर रणयात्रा कयल ॥ ७ ॥
दुहु दल छल संघट्ट अमान । राति दिवस किछु हो नहि भान ॥ ८ ॥
नभ मे भय गेल धूलि-वितान । बड़ गोट शब्द बाधर भेल कान ॥ ९ ॥
रावण जेहन प्रलय - जीमूत । ओ नहि कपि-सामान्यक बूत ॥ १० ॥
कपिदल काँ रण मे ललकार । झपटि झपटि अन्तक जकँ मार ॥ ११ ॥
पड़ल ततय हनुमानक दृष्टि । रावण-हृदय हनल एक मुष्टि ॥ १२ ॥
ठेघुना भर रथपर खसलाह । मूर्छित कय मारुति हँसलाह ॥ १३ ॥
क्षण मूर्छा रावण सौँ दूर । कहलनि पवनतनय तोँ शूर ॥ १४ ॥
धिक धिक हमरा कह हनुमान । एखनहु धरि अछि तोहरा प्राण ॥ १५ ॥
करह प्रथम तोँ मुष्टि-प्रहार । हमरा हृदय जते बलसार ॥ १६ ॥
हमहुँ तखन एक मूका हनब । दशकन्धर निज बलकाँ जनब ॥ १७ ॥
पवनक तनय कहल पण जेहन । कयल दशानन झट दय तेहन ॥ १८ ॥
क्षण भरि अनमन सन हनुमान । रावण-मुष्टि सहत के आन ॥ १९ ॥
पवन-तनय दृढ़ मुष्टि उठाय । चलला रावण चलल पड़ाय ॥ २० ॥
हनूमान अङ्गद नल नील । बड़ बड़ राक्षस मारण-शील ॥ २१ ॥

गये । बहुत से सेनापति चले । ६ उन रथों पर अस्त्र-शस्त्र लदे थे । इस प्रकार रावण ने युद्ध के लिए प्रयाण किया । ७ दोनों दल आपस में खूब टकराते । रात है या दिन कुछ भी मालूम नहीं होता था । ८ आकाश में धूल चँदोवे की भाँति छा गई । इतनी तेज़ आवाज़ होने लगी कि कान बहरे हो गये । ९ रावण मानो प्रलयकाल का बादल था । उसे मामूली बन्दर पछाड़ नहीं सकते थे । १० वह लड़ाई में बन्दरों को फटकारने लगा और पकड़-पकड़कर यमराज की तरह मारने लगा । ११ वहाँ हनुमान की नज़र पड़ी । उन्होंने रावण की छाती में एक घूँसा जमा दिया । १२ वह घुटनों के बल रथ पर से गिर पड़ा । उसे बेहोश कर हनुमान हंसने लगे । १३ क्षण भर में जब रावण की बेहोशी दूर हुई, तब हनुमान ने कहा— "हे रावण, तुम सचमुच शूर हो । १४ धिक्कार है मुझको कि अभी तक तुम्हारे प्राण गये नहीं । १५ तुम्हारे जितनी ताकत हो, सब लगाकर मेरी छाती पर घूँसा लगाओ । १६ फिर मैं भी एक घूँसा लगाऊँगा । हे रावण, तब तुमको मेरी ताकत मालूम हो जाएगी ।" १७ हनुमान ने जैसी शर्त रखी, रावण ने झटपट वैसा ही किया । १८ क्षण भर हनुमान कुछ अप्रकृतिस्थ रहे, फिर ठीक हो गये । रावण का घूँसा और कौन सह सकेगा ? १९ तब हनुमान ने मुक्का उठाकर दौड़े कि रावण भाग गया । २० हनुमान, अंगद, नल और नील बड़े-बड़े राक्षसों को मारने लगे । २१ अग्निवर्ण नाम का जो रावण का सेनापति था उसे हनुमान ने

अग्निवर्ण रावणक प्रधान। तनिक प्राण लेलनि हनुमान ॥ २२ ॥
सर्पपरोम कां अङ्गद मार। खड्गरोम काँ नल संहार ॥ २३ ॥
वृश्चिकरोम लड़ल घड़ि चारि। तनिकहु समर नील लेल मारि ॥ २४ ॥
सिंहनिनाद कयल कपि धीर। गेला जतय छला रघुवीर ॥ २५ ॥

॥ चञ्चला छन्द ॥

भालु ओ प्रचण्ड कीश जाय जाय झट्ट झट्ट ॥ २६ ॥
राक्षसेन्द्र वीर कां पछाड़ि मार पट्ट पट्ट ॥ २७ ॥
शैलखण्ड वृक्ष हाथ सौँ उखाड़ चट्ट चट्ट ॥ २८ ॥
राक्षसेन्द्र-सैन्य-झुण्ड-मुण्ड फोड़ फट्ट फट्ट ॥ २९ ॥
लाग अस्त्र मध्य अस्त्र आबि आबि चट्ट चट्ट ॥ ३० ॥
रावणोग्र-वीर-पेट-कुम्भ फूट भट्ट भट्ट ॥ ३१ ॥
नाचि नाचि योगिनीक वृन्द भाष हट्ट हट्ट ॥ ३२ ॥
राक्षसावलीक मुण्ड जाय खाय कट्ट कट्ट ॥ ३३ ॥
रामचन्द्र-तीर-विद्ध-मौलि-पात छट्ट छट्ट ॥ ३४ ॥
योगिनीक वृन्द रक्त-ओघ घोँट घट्ट घट्ट ॥ ३५ ॥
खाय की शृगाल मासु नोचि नोचि गट्ट गट्ट ॥ ३६ ॥
वस्ति-अस्थि दन्त घोर जोर तोड़ मट्ट मट्ट ॥ ३७ ॥
जोर सौँ कबन्ध नाच वीरभूमि कोटि कोटि ॥ ३८ ॥
भैरवी भभाय हँस्स भूमिमध्य लोटि लोटि ॥ ३९ ॥

निष्प्राण किया। २२ सर्परोम को अंगद ने मारा और खड्गरोम का अन्त नल ने किया। २३ उसके बाद वृश्चिकरोम चार घड़ी लड़ता रहा; उसे भी युद्ध में नील ने मार डाला। २४ तब हनुमान सिंहनाद करके वहाँ गये जहाँ राम थे। २५ प्रचंड भालू और बन्दर तेज़ी से जाते और रावण के सैनिकों को पटापट पछाड़ते जाते। २६-२७ पहाड़ों के टुकड़े और पेड़ चटपट हाथ से उखाड़ लेते और उनसे रावण के सैनिकों के मुंडों को फटाफट फोड़ते। २८-२९ आ-आकर हथियार हथियारों से चटाचट टकराते हैं। रावण के बड़े-बड़े वीरों के पेट रूपी घड़े भटाभट फूटते हैं। ३०-३१ झुंड की झुंड योगिनियाँ नाच-नाचकर एक-दूसरी से कहती हैं— हटो-हटो, और स्वयं मरे राक्षसों के मुंड कटाकट चबाती हैं। ३२-३३ राम के तीरों से राक्षसों के सिर गिरते जाते हैं और योगिनियाँ उससे छूटे लहू की धारा को गटागट पीती जा रही हैं। ३४-३५ सियार मांस नोच-नोचकर जल्दी-जल्दी खा रहे हैं। मूत्राशय की थैलियाँ और हड्डियाँ दाँतों से खूब ज़ोर लगाकर फटाफट तोड़ रहे हैं। ३६-३७ रणभूमि में करोड़ों कबन्ध ज़ोर-ज़ोर से नाच रहे हैं। भैरवियाँ धरती पर लोट-लोटकर अट्टहास कर रही हैं। ३८-३९ छोटी-छोटी भैरवियाँ

नाचथि प्रसन्न गीत गाबि गाबि छोटि छोटि ॥ ४० ॥
हर्ष सौं कपाल ताल देथि महा मोटि मोटि ॥ ४१ ॥

॥ अनुष्टुप् ॥

॥ वेश ॥

महाकाली विशालाक्षी मुदा गृह्णाति मुण्डालीम् ॥ ४२ ॥
हसन्ती युद्धभूमौ तम्पिवन्ती शोणितं काली ॥ ४३ ॥
वहन्मुण्डालिभारस्ते महोक्षो बिह्वलत्येषः ॥ ४४ ॥
कथन्नाद्यापि सन्तृप्तो भवान्व्यग्रश्च ते शेषः ॥ ४५ ॥

॥ चौपाइ ॥

लाखहि लाख सबार-विहीन । घोड़ दौड़ पिठ कसले जीन ॥ ४६ ॥
मुइले चढ़ल पीठ असबार । कय चीत्कार भ्रमित दन्तार ॥ ४७ ॥
घोड़ा बहुतक डाँड़े टूट । लादल अस्त्र पड़ायल ऊँट ॥ ४८ ॥
शोणित-धार चलल बढ़िआय । गेलि दीघिका सिन्धु समाय ॥ ४९ ॥
मेलि तेहनि सूतहु नहि थाह । बहुत समुद्रक पहुँचल ग्राह ॥ ५० ॥
तनिका भेटल भक्ष्य कबन्ध । खाय खाय सभ भेल निर्धन्ध ॥ ५१ ॥
समरभूमि कत योगिनि नाँच । खाथि मासु निधुरायल काँच ॥ ५२ ॥
अगनित गृद्ध चिल्ह ओ काक । कङ्क शृगालक बनि गेल ताक ॥ ५३ ॥

प्रसन्न हो गा-गाकर नाच रही हैं और मोटी-मोटी भैरवियाँ हर्षपूर्वक खोपड़ियाँ पीट-पीटकर ताल दे रही हैं। ४०-४१ बड़ी-बड़ी आँखोंवाली महाकाली युद्ध-भूमि में लहू पीती हुई हर्ष के साथ मुडों को बटोरती है। ४२-४३ अरे, इतने मुंड लाद दिये हैं कि आपका यह विशाल बसहा लड़खड़ा रहा है। ४४ फिर भी आपको सन्तोष क्यों नहीं होता ? आपका शेषनाग भी व्यग्र है। ४५ बिना सवार के लाखों घोड़े, जिनका पीठ पर जीन कसे हुए ही हैं, दौड़ते नज़र आ रहे हैं। ४६ पीठ पर चढ़े मृत सवारोंवाले बहुत से दन्तार हाथी चिंघाड़ते हुए इधर-उधर भटक रहे हैं। ४७ बहुत से घोड़ों की कमर टूट गई है। अस्त्रों से लदे ऊँट भागते जा रहे हैं। ४८ लहू की धारा की बाढ़ आ गई और बड़े-बड़े तालाब उमड़कर समुद्र में जा गिरने लगे। ४९ इतनी बाढ़ आई कि सूत से भी गहराई मापी नहीं जा सकती। समुद्र से बहुत से मगर आ पहुँचे। ५० उन मगरों को खाने के लिए कबन्ध (मुर्दों के सिर-रहित धड़) मिल गये और वे खा-खाकर निश्चिन्त हो गये। ५१ लड़ाई के मैदान में बहुत सी योगिनियाँ नाचतीं और लहू से लिपटे मांस खातीं। ५२ अनगिनत गीधों, चील्हों, कौवों, कंकों और सियारों को अच्छा मौका हाथ लगा। ५३ रक्त की धारा में तैरते मुर्दों पर कौवे बैठ जाते। मांस खानेवाले

भासल घर पर वायस बास । मांसाशी खग पूरित आश ॥ ५४ ॥
लङ्का वनिता-गण जे कान । करुणा-गिरि-झरनाक समान ॥ ५५ ॥
भैरव मुण्डमाल लय आब । महाकाल गलमे पहिराब ॥ ५६ ॥
वृद्ध गृद्ध रण-महि मे भाष । आइ पुरल आमिष-अभिलाष ॥ ५७ ॥
आहि आहि हा हा धुनि कान । लङ्काधिप-पुर पड़ल मलान ॥ ५८ ॥
लङ्केश्वर से पढलनि पाठ । सगर नगर भेल राँड़क ठाठ ॥ ५९ ॥
राक्षस - वृन्द - वधूटी कान । आज कयल विधि घर शमशान ॥ ६० ॥
मान्य विभीषण छथि कोन ठाम । जे राखल राक्षसकुल-नाम ॥ ६१ ॥
लय लय तीक्ष्ण हाथ तरुआरि । प्रिय-हीना कें से देथु मारि ॥ ६२ ॥
धिक पति विनु जीवन संसार । अपनो प्राण लगै अछि भार ॥ ६३ ॥
पति-रण-मरण देखल सभ आँखि । की सुख जीव देह मे राखि ॥ ६४ ॥
आनु हलाहल सभ जनि खाउ । गर पाथर दय सिन्धु समाउ ॥ ६५ ॥
कतय कयल नहि राक्षस लूटि । हा स्वाधीन नगर गेल छूटि ॥ ६६ ॥
त्यागथि विकला गहना अङ्ग । विधि विपरीत मनोरथ भङ्ग ॥ ६७ ॥
मणिमाला व्यालो समतूल । लगइछ आइ दैव प्रतिकूल ॥ ६८ ॥
केओ कह युवति चित्त कर थीर । सभ सङ्कट हर्ता रघुवीर ॥ ६९ ॥

पक्षियों की आशा पूरी हुई । ५४ लंका में औरतें जो रोतीं वह मानो करुणा के पहाड़ से झरना गिर रहा हो । ५५ भैरव मुंडमाल ले-ले आते और महाकाल के गले में पहनाते । ५६ बूढ़े गीध लड़ाई के मैदान में बोलते— मांस खाने की अभिलाषा आज पूरी हुई । ५७ चारों ओर आह-आह और हाय-हाय की आवाज़ सुनाई पड़ने लगी । लंका नगरी सदमे से उदास हो गई । ५८ रावण ने ऐसा पाठ पढ़ा कि सारे नगर में विधवाओं की जमवट हो गई । ५९ राक्षसों की बहुएँ रोतीं और कहतीं— "हाय, आज विधाता ने हमारे घर को श्मशान बना दिया । ६० पूजनीय विभीषण कहाँ हैं, जिन्होंने राक्षस-वंश की इज़्ज़त बचाई ? ६१ वे हाथ में तेज तलवार ले-लेकर विधवाओं को क़त्ल कर दें, क्योंकि ६२ संसार में पति के बिना जीना बेकार है । खुद अपने प्राण भी भार लगते हैं । ६३ सबों ने अपनी आँखों से अपने-अपने पतियों को युद्धभूमि में मरते देखा । अब शरीर में प्राण रखकर क्या सुख मिलेगा ? ६४ ज़हर लाओ और सभी बहनें मिलकर पियें या गले में पत्थर लटकाकर समुद्र में डूब मरें । ६५ राक्षसों ने कहाँ लूटपाट नहीं की ? हाय, अब यह लंका नगरी स्वाधीन नहीं रही ।" ६६ इस प्रकार बिलखती हुई वे अपने शरीर से गहने उतारतीं और कहतीं, "जब विधाता प्रतिकूल हो जाता है तब सारे अरमान जाते रहते हैं । ६७ मणि की माला लगती है जैसे नागिन हो । लगता है आज हमारे भाग्य ने पलटा खाया ।" ६८ कोई कहती— "हे युवती, चित्त

तनिकाँ सौँ होयत नहि हानि। करुणामय तनिकाँ लिय मानि ॥ ७० ॥
दाँतय ओठ काट दशमाल। विकट कोप विश लोचन लाल ॥ ७१ ॥
रामचन्द्र दिश रथ चढ़ि धाव। अशनि जेहन शर कोटि चलाव ॥ ७२ ॥
अविरल जलधर सम शर-धार। शरक निकर दशकन्धर मार ॥ ७३ ॥
राम-निकट जे वीर प्रधान। सभ जन आनन कयल मलान ॥ ७४ ॥
कनक-अलङ्कृत पावक जेहन। रघुवर बाण चलाओल तेहन ॥ ७५ ॥

॥ सोरठा ॥

देखि समर अमरेश, मातलि सारथि काँ कहल ॥ ७६ ॥
रथपर अछि लङ्केश, रघुनन्दन रथ-रहित छथि ॥ ७७ ॥
रथ लङ्का लय जाउ, अस्त्र सकल तेहि पर धरू ॥ ७८ ॥
हमर सन्देश शुनाउ, रथ चढ़ि मारू शत्रु कें ॥ ७९ ॥
रथ पहुँचल तेहिठाम, हाथ जोड़ि मातलि कहल ॥ ८० ॥
चढ़ल जाय प्रभु राम, अमरेश्वर-साहित्य रथ ॥ ८१ ॥
अस्त्र शस्त्र सभ धयल, कवच अभेद्य अखेद्य विधि ॥ ८२ ॥
प्रभु शुनि सम्मति कयल, नमस्कार कय रथ चढ़ल ॥ ८३ ॥

को स्थिर करो। राम सभी संकटों को हरण करनेवाले हैं। ६९ उनके हाथ बुरा नहीं होगा। मान लो, वे बड़े दयालु हैं।" ७० रावण दाँतों से अपना होठ काटता। भीषण क्रोध से उसकी बीसों आँखें लाल हो गई हैं। ७१ वह रथ पर सवार हो राम की ओर दौड़ा, और वज्र के समान करोड़ों तीर उन पर चलाने लगा। ७२ जैसे बादल से वर्षा होती है उसी तरह रावण तीरों की बौछार करने लगा। ७३ यह देख राम के पास जितने वीर सेनापति थे उन सबों का चेहरा उतर गया। ७४ तब राम ने सोने से अलंकृत आग के समान बाण चलाया। ७५ इन्द्र ने यह लड़ाई देखी और अपने सारथि मातलि से कहा— ७६ "देखो, रावण रथ पर सवार है पर राम बिना रथ के हैं। ७७ इस रथ को लंका ले जाओ। इस पर सारे अस्त्र रख दो। राम को मेरा संवाद जाकर कहो कि वे इस रथ पर सवार हो शत्रु को मारें।" ७८-७९ रथ राम के पास पहुँच गया। हाथ जोड़कर मातलि ने कहा— ८० "हे राम, इस रथ पर चढ़िये। देवताओं के राजा इन्द्र ने सहायता के लिए यह रथ दिया। ८१ इसमें सभी प्रकार के अस्त्र रखे हैं, और ऐसा कवच है जिसे कोई अस्त्र बींध नहीं सकता है।" ८२ राम ने यह सुनकर उस रथ को स्वीकार किया और इन्द्र के प्रति सिर झुकाकर रथ पर सवार हो गये। ८३ फिर इतनी भारी लड़ाई होने लगी जिसका वर्णन कोई न कर सकता, शेषनाग

॥ चौपाइ ॥

॥ जयकरी छन्द ॥

महायुद्ध बरणय के पार। शेष सहस्र-मुख कहइत हार ॥ ८४ ॥
रावण अग्नि-अस्त्र लय फेक। अग्नि-अस्त्र सौं प्रभु सभ टेक ॥ ८५ ॥
देव-अस्त्र दशभाल चलाब। देव-अस्त्र-बल राम फिराब ॥ ८६ ॥
पन्नग-अस्त्र चलाओल फेर। सापहि साप समर भेल ढेर ॥ ८७ ॥
दिश ओ विदिश विकल दल कयल। गरुड़-अस्त्र रघुनन्दन धयल ॥ ८८ ॥
पन्नगास्त्र जौं जौं फुफुआथि। गरुड़-अस्त्र गट गट गिड़ि जाथि ॥ ८९ ॥
रावण माया करथि अपार। श्रीरघुनन्दन कर संहार ॥ ९० ॥
देखि इन्द्रक रथ सारथि निकट। रावण क्रुद्ध भेल मन विकट ॥ ९१ ॥
इन्द्रादिक कृत सभ उत्पात। बड़ प्रपञ्च अपनैं रह कात ॥ ९२ ॥
इन्द्रक घोड़ा काँ शर मार। मातलि सारथि शत्रु विचार ॥ ९३ ॥
पड़य न सारथि घोड़ा दृष्टि। कयल दशानन सायक-वृष्टि ॥ ९४ ॥
सुरगण नभ कर हा हा-कार। बिगड़ल देखि समर-व्यवहार ॥ ९५ ॥
सहित विभीषण वानर वीर। विकल मर्म्म मे वेधित तीर ॥ ९६ ॥
घोर युद्ध कर रावण एक। विश भुज धनुष धयल शर फेक ॥ ९७ ॥
रामचन्द्र मन बाढ़ल कोप। करय चाह दश-वदनक लोप ॥ ९८ ॥

अपने हजार मुँहों से भी वर्णन करते थक जाएँगे। ८४ रावण अग्न्यस्त्र चलाता तो राम अग्न्यस्त्र से उसे काट देते। ८५ जब वह देवास्त्र चलाता तो राम देवास्त्र से उसे लौटा देते। ८६ फिर रावण ने सर्पास्त्र छोड़ा। सारी रणभूमि में साँप ही साँप छा गये। ८७ सभी दिशाओं में राम के सैनिक यह देख घबरा गये। तब राम ने गरुड़ास्त्र छोड़ा। ८८ ज्यों-ज्यों सर्पास्त्र फू-फू करते हुए बढ़ते त्यों-त्यों गरुड़ास्त्र उन्हें टपाटप खाते जाते। ८९ रावण तरह-तरह की माया रचता और राम उसको काटते जाते। ९० इन्द्र के रथ और सारथि को राम के पास में देखकर रावण के मन में घोर क्रोध हो उठा। ९१ उसने कहा— "ये सारे उत्पात इन्द्र आदि देवताओं ने रचे हैं, पर वंचना यह है कि वे खुद अलग ही रहते।" ९२ इतना कहकर रावण ने इन्द्र के घोड़े को तथा सारथि मातलि को शत्रु समझकर तीर लगाया। ९३ फिर न वह घोड़ा दिखाई पड़ा और न वह सारथि। रावण तीरों का बौछार करने लगा। ९४ आकाश में देवता लोग लड़ाई की बिगड़ी हुई हालत देख हाहाकार करने लगे। ९५ विभीषण-सहित वीर बन्दरों के मर्मस्थल में तीर चुभ गये थे, इससे वे विकल थे। ९६ रावण अकेला ही भीषण युद्ध कर रहा था। बीसों हाथों में धनुष ले दनादन तीर चलाता जा रहा था। ९७ रामचन्द्र के मन में क्रोध बढ़ गया और वे राक्षस को खत्म करने की कोशिश करने

ऐन्द्र धनुष सायक लय हाथ। कालानल सन श्री रघुनाथ ॥ ९९ ॥
सुरगण सिद्ध तथा गन्धर्व्व। देखथि युद्ध गगन सौँ सर्व्व ॥१००॥

॥ मिथिला-संगीतानुसारेण भैरव-छन्दः ॥

॥ ध्रुपद ॥

रामचन्द्र-हाथ सौँ सायक छट सन्न सन्न ॥ १०१ ॥
राक्षसेन्द्र-देह सौँ शोणित वह फन्न फन्न ॥ १०२ ॥
देवी नाच मगन नूपुर बाज झन्न झन्न ॥ १०३ ॥
देवताक वृन्द कहै रामचन्द्र धन्य धन्य ॥ १०४ ॥
बार बार मेदिनी समस्त ऊठ काँपि काँपि ॥ १०५ ॥
अन्धकार चन्द्र सूर्य्य चक्र लेथि झाँपि झाँपि ॥ १०६ ॥
तारका-निपात उतपात बाढ़ अर्व्व खर्व्व ॥ १०७ ॥
राहु-उपराग दृष्ट चन्द्र सूर्य्य विना पर्व्व ॥ १०८ ॥
गृद्ध वृद्ध आबि दशभाल-भाल-वृन्द नोच ॥ १०९ ॥
आज छूटि गेल की जटायु धर्म्मशील शोच ॥ ११० ॥
मौलि दशमौलि मही आबि खस्स धम्म धम्म ॥ १११ ॥
योगिनीक यूथ लूट ताल-फल हम्म हम्म ॥ ११२ ॥
रावण न मरय सकल माथ काटलहुँ ॥ ११३ ॥
सङ्ग्राम-अवनि मुण्ड-झुण्ड काटि पाटलहुँ ॥ ११४ ॥
चिन्तित बहुत चित्त भेल रघुनाथ काँ ॥ ११५ ॥

लगे। ९८ राम ने इन्द्र-धनुष पर प्रलयकाल की आग के समान तीं
चलाये। ९९ देव, सिद्ध और गन्धर्व सभी आकाश से युद्ध देख रहे थे। १०
राम के हाथ से सनासन तीर छूट रहे हैं। १०१ रावण के शरीर से बन-ब
लहू निकल रहा है। १०२ देवी चंडी नाच रही है और उसके नूपुर झनाझ
बज रहे हैं। १०३ देवता लोग पुकार रहे हैं— धन्य हैं, राम धन्य हैं। १०
बार-बार सारी धरती काँप उठती है। १०५ धूल के उड़ने से छाये अंधेरे
चाँद और सूरज को ढक लिया। १०६ तारे टूटे और लाखों उत्पात हुए। १
अमावस और पूनम के बिना ही सूरज और चाँद के गहन लगे। १०८
गीध आ-आकर रावण के माथे नोच रहे हैं। १०९ क्या आज धर्मात्
जटायु की चिन्ता दूर हो गई ? ११० रावण के मस्तक कट-कटकर धरती
धड़ाम-धड़ाम गिर रहे हैं। १११ योगिनियाँ पेड़ से गिरे ताड़ के फल
समान उन मुंडों को आपस में होड़ के साथ लूट रही हैं। ११२ सारे सि
कट जाने पर और रणभूमि में कोटि-कोटि मुंडों के फैल जाने पर भी रा
मरा नहीं। ११३-११४ रावण के मस्तक को बढ़ते ही देखकर राम के मन

बुद्ध भेल देखि देखि रावणक माँथ काँ ॥ ११६ ॥
महाकाल सहित समर शोभ कालिका ॥ ११७ ॥
बहुत प्रसन्नतरा देवि मुण्ड-मालिका ॥ ११८ ॥
हाथ जोड़ि चण्डिकाक कयल देव वन्दना ॥ ११९ ॥
जय जय जगदीश्वरी महेशि दक्ष-नन्दना ॥ १२० ॥
सृष्टि उतपत्ति प्रतिपाल लय कारिणी ॥ १२१ ॥
अम्बिका थिकहुँ अहाँ सर्व्व लोक-तारिणी ॥ १२२ ॥
तारिणी हमर चित्त चिन्ताजाल आज अछि ॥ १२३ ॥
मर वशभाल से उपाय मुख्य काज अछि ॥ १२४ ॥
अट्टहास हसलि तखन मुण्डमालिका ॥ १२५ ॥
विजय पायब रघुनाथ कहै कालिका ॥ १२६ ॥
कयल कृतार्थ अहाँ मर्त्य-अवतार सौँ ॥ १२७ ॥
योगिनी प्रसन्ना-मुखी भेलि रक्तधार सौँ ॥ १२८ ॥
हमर क्षुधाक शान्ति भेल नहि कतहू ॥ १२९ ॥
भेलहुँ प्रसन्ना हम महाकाल बतहू ॥ १३० ॥
देखि लेब रावणक मृत्यु गोट नयन सौँ ॥ १३१ ॥
तखन नाचति योगिनीक वृन्द चयन सौँ ॥ १३२ ॥
रावण मरत कोना पूछू तनि भाय काँ ॥ १३३ ॥
कहताह रावणक मरण-उपाय काँ ॥ १३४ ॥

बड़ी चिन्ता हुई। ११५-११६ भगवान महाकाल के साथ भगवती कालिका मुंडों की माला पहने शोभा पा रही हैं और बहुत खुश हैं। ११७-११८ तब राम हाथ जोड़कर देवी चण्डिका की स्तुति करने लगे— ११९ "हे जगदीश्वरी, हे शिव की शक्ति, हे दक्ष की कन्या, तुम्हारी जय हो। १२० तुम इस संसार की उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवाली हो। १२१ तुम सारे संसार की माता अम्बिका हो, तुम सभी लोगों का उद्धार करनेवाली हो। १२२ हे तारिणी, आज मेरा मन चिन्ता के जाल में फँसा है। १२३ रावण मरे, यही आज मेरी प्रधान कामना है।" १२४ यह स्तुति सुनकर मुण्डमालाधारिणी चण्डिका ठठाकर हँसी। १२५ चण्डिका ने कहा— "हे राम! तुम विजय पाओगे। १२६ आपने मानव के रूप में अवतार लेकर हम देवताओं को कृतार्थ किया। १२७ योगिनियाँ रक्त की धारा से तृप्त हो गईं। १२८ इससे पहले मेरी भूख कहीं नहीं मिटी थी। १२९ आज मैं प्रसन्न हुई और मेरे मतवाले शिवजी भी प्रसन्न हुए। १३० रावण की मृत्यु अपनी आँखों से देख लेंगे। १३१ ऐसा होने पर योगिनियों का दल निश्चिन्त हो नाचेगा। १३२ रावण कैसे मरेगा यह रहस्य आप उसके भाई विभीषण से पूछिए। १३३ वे

देव नै विलम्ब करू मारू दशमाथ काँ ॥ १३५ ॥
कहु की अभीष्ट-देनिहार सर्व्व-नाथ काँ ॥ १३६ ॥

॥ दोहा ॥

निकटहि छला विभीषण, पुछलनि श्रीरघुनाथ ॥ १३७ ॥
रावण-मरण-उपाय कहू, सम्प्रति हमरा हाथ ॥ १३८ ॥

॥ चौपाइ ॥

सुनल विभीषण रघुवर-उक्ति । रावण-मरणक कहलनि युक्ति ॥ १३९ ॥
ब्रह्म-दत्त-वर छथि दशभाल । निकट न आबय तनिकर काल ॥ १४० ॥
नाभि - प्रदेश कुण्डलाकार । सुधा - सरोवर प्राणाधार ॥ १४१ ॥
अनल-अस्त्र सौँ शोखल जाय । रावण-मरणक सहज उपाय ॥ १४२ ॥
अनल-अस्त्र रघुवर देल छोड़ि । रावण-नाभिकुण्ड देल फोड़ि ॥ १४३ ॥
दुइ भुज एक शेष कय माँथ । काटल भुज शिर श्रीरघुनाथ ॥ १४४ ॥
घोर शक्ति दश-कण्ठ उठाय । मारल मरथु विभीषण भाय ॥ १४५ ॥
शक्तिक शक्ति हरल प्रभु बाट । कनकाञ्चित सिर शर सौँ काट ॥१४६॥
रावण अतिशय भेला मलान । एक शिर दुइ भुज तदपि न ज्ञान ॥१४७॥
रघुनायक पर सायक फेक । रघुनन्दन शर मार अनेक ॥ १४८ ॥

रावण की मृत्यु का उपाय बतायेंगे । १३४ हे देव, अब विलम्ब न कीजिए और रावण को मारिये । १३५ अधिक क्या कहूँ; आप सबके प्रभु और अभीष्ट-दाता हैं ।" १३६ विभीषण पास में ही थे । राम ने उनसे पूछा— "अभी मुझे यह बताइए कि रावण मरे इसका उपाय क्या है ?" १३७-१३८ राम की बात सुनकर विभीषण ने उन्हें रावण के मरने का उपाय बता दिया । उन्होंने कहा— १३९ "रावण को ब्रह्मा से वरदान मिला हुआ है कि काल पुरुष भी उसके पास भटक नहीं सकता । १४० उनकी नाभि की जगह गोल आकार का एक अमृतकुंड है; वही उसके प्राण का आधार है । १४१ अग्न्यस्त्र चलाकर उस अमृतकुंड को सोख लीजिए । रावण मरे, इसका यही आसान रास्ता है ।" १४२ राम ने अग्न्यस्त्र छोड़ा और रावण के नाभिकुंड को फोड़ डाला । १४३ फिर राम ने दो बाँहें और एक सिर को छोड़ शेष बाँहों और सिरों को काट दिया । १४४ तब भाई विभीषण को जान से मारने के लिए रावण ने एक भीषण शक्ति (साँगी) उठाकर वार किया । १४५ राम ने उस साँगी के प्रभाव को नष्ट कर दिया और उसके सोने से मढ़े शीर्ष (नोक) को तीर से काट दिया । १४६ रावण बहुत उदास हो गया । एक सिर और दो बाँहें शेष रह जाने पर भी उसे आँख न खुली । १४७ वह राम के ऊपर तीर चलाने लगा और राम भी उसे तीर पर तीर मारने लगे । १४८ घमासान

तुमुल युद्ध सुर हर्ष विषाद । सकल समुद्र रहित-मर्याद ॥ १४९ ।
मातलि देलनि स्मरण कराय । दशमुख माथ न काटल जाय ॥ १५० ।
कयल जाय ब्रह्मास्त्र प्रयोग । दशकन्धर नहिं जीतय योग ॥ १५१ ।
रावण-मरण-समय अछि आज । कहथि रहथि नित देव-समाज ॥ १५२ ।
ताकि मर्म्म मे हनिऔनि बाण । चट पट उड़ दशवदनक प्राण ॥ १५३ ।
इन्द्रक सारथि कहलनि जह । रघुनन्दन शुनि कयलनि सेह ॥ १५४ ।
कयलनि हाथ दीप्त शर तेहन । कर फुफकार फणाश्वर जेहन ॥ १५५ ।
बामिक पार्श्व मे मारुत बनल । तनि फल मे रवि राजित अनल ॥ १५६ ।
देह गगनमय जनिकाँ सर्व्व । लोकपाल बस तनिका पर्व्व ॥ १५७ ॥
गुरुता मन्दर मेरु समान । यहन अस्त्र लेलनि भगवान ॥ १५८ ।
सर्व्वलोक - भय - नाशन नाम । अभिमन्त्रित कयलनि श्रीराम ॥ १५९ ॥
वेद-उक्त विधि सौं लेल चाप । कयलनि रघुवर प्रबल प्रताप ॥ १६० ॥

॥ षट्पद छन्द ॥

क्रुद्ध कहल रघुनाथ, दशानन खल काँ मारब ॥ १६१ ॥
निर्भय कय सभ लोक, भार धरणीक उतारब ॥ १६२ ॥
कयल धनुष सन्धान बाण, अरि-मर्म्म-विघाती ॥ १६३ ॥
वज्रकल्प उद्धत धधक, दशकन्धर-छाती ॥ १६४ ॥

लड़ाई होने लगी। देवता लोग कभी हर्षित होते थे तो कभी चिन्तित। सभी समुद्र उतावले हो गये। १४९ इन्द्र के सारथि मातलि ने स्मरण कराया कि "रावण का सिर काटना तो बाकी ही है। १५० अब ब्रह्मास्त्र चलाइए। रावण को जीतने की ताक़त नहीं है। १५१ रावण के मरने का समय आज ही है, देवता लोग ऐसा बतला रहे थे। १५२ मर्म ताककर तीर चलाइए। तुरन्त ही रावण के प्राण उड़ जाएँगे।" १५३ इन्द्र के सारथि मातलि ने जैसा कहा राम ने वैसा किया। १५४ राम ने अपने हाथ में एक तेज़ बाण लिया। वह शेषनाग की भाँति फुफकारता था। १५५ उसके बगल में गति देने के लिए वायुदेव थे, उसके फल में सूर्य और अग्निदेव समाहित थे। १५६ उसका सारा शरीर आकाशमय था। उसकी ग्रन्थि-ग्रन्थि में इन्द्र आदि लोकपाल समाहित थे। १५७ उसमें मेरु पर्वत के बराबर भारीपन था। राम ने ऐसा बाण हाथ में लिया। १५८ इस अस्त्र का नाम 'सभी लोगों के डर को दूर करनेवाला' था। राम ने इसको अभिमन्त्रित किया। १५९ फिर वेद में बताई गई रीति से धनुष उठाया और प्रबल प्रताप दिखाने लगे। १६० राम क्रुद्ध होकर बोले— "आज मैं दुष्ट रावण को मार डालूँगा। १६१ सभी लोगों का डर दूर कर धरती का भार उतारूँगा" १६२ तब राम ने शत्रु के ममस्थल पर चोट पहुँचानेवाले उस बाण को धनुष पर

लागल जाय कृतान्त जकँ, हृदय बेधि प्राणान्त कय ॥ १६५ ॥
धसि धरणीतल राम-शर, आबि बसल तूणीर भय ॥ १६६ ॥

॥ कलहंस-छन्दोभेदे माली-छन्दः श्रीछन्दश्च ॥

रावणक हाथ सौँ ससरि खस चाप ॥ १६७ ॥
घूमिकेँ खसल भूमि भूमिभार पाप ॥ १६८ ॥
भेलहुँ अनाथ नाथ बिना दशभाल ॥ १६९ ॥
छलहुँ कि सिंह आब भेलहु शृगाल ॥ १७० ॥
करत के रावण सदृश प्रतिपाल ॥ १७१ ॥
सूर्य्यवंश मध्य राम जनमल काल ॥ १७२ ॥
विंश गोट बाहु दश गोट छल भाल ॥ १७३ ॥
तनिकहु आबिकेँ ग्रहण कयल काल ॥ १७४ ॥
प्राण सौँ रहित भय गेला दशमाथ ॥ १७५ ॥
नाचि नाचि कीश कहै जय जय रघुनाथ ॥ १७६ ॥

॥ चौपाइ ॥

रावण-मरण विदित सभठाम । मन अति हर्ष विजय सङ्ग्राम ॥ १७७ ॥
पूरल आश देव-मन आज । रघुनन्दन कयलनि सभ काज ॥ १७८ ॥

चढ़ाया। १६३ वज्र के समान वह अमोघ बाण रावण की छाती में लगा और उसे दग्ध करने लगा। १६४ उस बाण ने यमराज की तरह जाकर उसकी छाती को बेध उसका प्राणान्त कर दिया। १६५ फिर धरती में घुसा और लौटकर तरकस में आ गया। १६६ रावण के हाथ से धनुष खिसककर गिर गया। १६७ चक्कर खाकर वह धरती का भार पापी रावण धरती पर गिर पड़ा। १६८ जीवित बचे राक्षस कहते हैं— "रावण हमारे प्रभु थे उनके बिना हम अब अनाथ हो गये। १६९ पहले हम लोग सिंह के समान थे, पर अब तो सियार की गति हो गई। १७० रावण की भाँति अब हमारा पालन-पोषण कौन करेगा ? १७१ सूर्यवंश में राम हम लोगों के लिए काल होकर पैदा हुआ। १७२ जिन्हें बीस बाँहें और दस सिर थे उन रावण को भी काल आकर खा गया। १७३-१७४ रावण के प्राण चले गये।" १७५ कपिगण नाच-नाचकर कहते हैं— "जय हो ! रघुनाथ की जय हो।" १७६ हर जगह खबर फैल गई कि रावण मारा गया। लड़ाई में विजय होने से देवताओं के मन में हर्ष का ठिकाना न रहा। १७७ आज देवताओं के मन की कामना पूरी हुई। राम ने सारा काम तमाम कर दिखाया। १७८

त्रिदश-दुन्दुभी बाजय लाग। नाच अप्सरा गाबि सुराग॥ १७९॥
रघुनन्दन पर फूलक वृष्टि। कय देल आज अपूर्व्व सृष्टि॥ १८०॥
स्तुति कर मुनिजन सिद्ध समस्त। धन्य कयल रावण-बल-अस्त॥ १८१॥
रावण-देह जोति बहराय। रघुनन्वन मे गेल समाय॥ १८२॥
से देखइत सभ देव छलाह। धन्य दशानन सुर बजलाह॥ १८३॥
हमरा सभ काँ सात्विक कर्म्म। सपनहुँ नहि पर-तरुणी-नर्म्म॥ १८४॥
बहुत कर्म्म रावण-कृत छोट। तामस-रूप भूप बड़ गोट॥ १८५॥
विष्णु-द्रोह तापस काँ मार। हरि हरि आनय अनकर दार॥ १८६॥
दैवी गति किछु कहल न जाय। मुक्तिलाभ तनिकाँ को न्याय॥ १८७॥
नारद पहुँचलाह तहिठाम। कहलनि नाम बजाओल राम॥ १८८॥
बुझलनि अमरक हृदय-विषाद। नारद कहल बहुत आह्लाद॥ १८९॥
रावण-मरण शुनल प्रभु-हाथ। कोपहु कल्पवृक्ष रघुनाथ॥ १९०॥

॥ रूपमाला छन्द ॥

मारि रावण विश्व-कण्टक, धनुष बामा हाथ॥ १९१॥
तथा क्षयलय दक्ष कर शर, भ्रमण कर रघुनाथ॥ १९२॥

देवताओं का नगाड़ा बजने लगा। अच्छे-अच्छे गीत गाती हुई अप्सराएँ नाचने लगीं। १७९ राम के ऊपर फूल बरसने लगे। राम ने आज मानो नयी सृष्टि कर दी। १८० सारे मुनि और सिद्ध लोग राम की स्तुति करने लगे— "हे राम, आप धन्य हैं जो रावण की ताक़त को खत्म किया।" १८१ रावण के शरीर से एक ज्योति निकली और वह राम के शरीर में समा गई। १८२ सभा देवता यह तमाशा देख रहे थे। देवगण बोले— "धन्य है रावण। १८३ हम लोग सदा सात्त्विक कामों में लगे रहे। सपने में भी पराई औरत से साथ नहीं किया। १८४ रावण ने तो बहुत-सारे ओछे काम किये हैं। वह बड़े भारी तामसी प्रकृति का राजा था। १८५ वह भगवान् विष्णु से द्रोह करता था। तपस्वियों को मारता था। पराई औरत को हरण कर ले आता था। १८६ भाग्य की गति कोई नहीं जानता। ऐसे रावण को मुक्ति मिली। क्या आश्चर्य की बात है!" १८७ वहाँ नारद पहुँचे। उन्होंने अपना नाम बताया। राम ने उन्हें अपने पास बुलाया। १८८ उन्हें देवताओं के हृदय का विषाद मालूम हुआ। नारद ने कहा— "बड़ी खुशी है।" १८९ उन्हें मालूम हुआ कि रावण राम के हाथ से मारा गया है। क्रोध में आने पर भी राम कल्प-वृक्ष के समान हैं। १९० दुनिया भर को तकलीफ़ देनेवाले रावण को मारकर बायें हाथ में धनुष लिये और दाहिने हाथ में तीर लिये राम भ्रमण कर रहे हैं। १९१-१९२ उनकी आँखों के कोने लाल हैं, साँवला शरीर

शोण-लोचन-कोण रिपु-शर-भिन्न श्याम शरीर ॥ १९३ ॥
कोटि-सूर्य्य-प्रकाश रक्षा, करथु से रघुवीर ॥ १९४ ॥
॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे लङ्काकाण्डे एकादशोऽध्यायः ॥

॥ अथ द्वादशोऽध्यायः ॥

॥ चौपाइ ॥

देखि विभीषण ओ हनुमान । अङ्गद लक्ष्मण कोश प्रधान ॥ १ ॥
जाम्बवान आदिक रणधीर । सभकाँ तुष्ट कहल रघुवीर ॥ २ ॥
अहँ सभहिक बाहुक बल पाबि । मारल रावण लङ्का आबि ॥ ३ ॥
यावत रवि शशि नभ रहताह । यशोगान मुनिजन करताह ॥ ४ ॥
ई चरितक जे कीर्त्तन करत । भव-वारिधि विनु श्रम से तरत ॥ ५ ॥
रावण मृतक पड़ल रण-भूमि । गृद्ध काक विघासत घुमि घूमि ॥ ६ ॥
दुस्सह मन्दोदरिक विषाद । मुरछि मुरछि कर कुररी-नाद ॥ ७ ॥
पति-गुण कहि कहि करथि विलाप । पाप - प्रताप असह सन्ताप ॥ ८ ॥
भेलहुँ अभागिनि पहु विनु आज । धिक् विधवा-जीवन को काज ॥ ९ ॥

दुश्मन के तीरों से क्षत हैं, उनसे करोड़ों सूर्यों के बराबर ज्योति निकल रही है। ऐसे भगवान् रघुवीर रक्षा करें। १९३-१९४

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में लंकाकाण्ड का ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥

बारहवाँ अध्याय

विजय के बाद राम द्वारा विभीषण आदि के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन

युद्ध के बाद राम ने विभीषण, हनुमान, अंगद, लक्ष्मण, सुग्रीव, जाम्बवान आदि सभी योद्धाओं की खोज-खबर ली और प्रसन्न हो सबों से कहा— १-२ "आप सबों के बाहुबल की बदौलत मैंने लंका आकर रावण को मारा। ३ जब तक आकाश में सूरज और चाँद रहेंगे तब तक मुनि लोग आप सबों का गुण गाते रहेंगे। ४ मेरे इस चरित का जो कीर्तन करेगा वह बिना श्रम के भव-सागर पार करेगा।" ५ रावण का शव लड़ाई के मैदान में पड़ा हुआ है। गीध और कौवे उसे नोच-नोचकर खा रहे हैं। ६ मन्दोदरी को असह्य शोक हो रहा है। वह बार-बार बेहोश होती और कुररी की तरह सिसक-सिसककर रोती है। ७ पति के गुणों का बखान कर-करके बिलखती है। पाप के परिणामस्वरूप वह असह्य सन्ताप से जल रही है— ८ आज मैं पति के बिना अभागिन हो गई। धिक्कार है विधवा के जीवन को। इससे अब क्या

तुम्बुरु प्रभृतिक गुन जे गान। काक नोच से प्रियतम-कान ॥ १० ॥
यम जे लोचन-ओतहि जाथि। हा से गृद्ध नोचि कय खाथि ॥ ११ ॥
शिव काँ माँथ चढ़ाबथि काटि। सञ्जीवन-साधन भेल माटि ॥ १२ ॥
अहह नाथ नित नित अन्याय। एकदिन माँथा अवश बिलाय ॥ १३ ॥
परमेश्वर सौँ भारी द्वेष। दण्डक गेलहुँ दण्डी-वेष ॥ १४ ॥
सीता हरि आनल जेहि काल। तेहिखन भानल नहि दशभाल ॥ १५ ॥
शोक विभीषण-हृदय समाय। शीतज्वर जनु देल दलकाय ॥ १६ ॥
कुल-प्रधान हा बड़का भाय। काल-प्रपञ्च वृथा नहि जाय ॥ १७ ॥
अपनेक कि कहब गुण ओ दोष। के कर वारण कालक रोष ॥ १८ ॥
विधवा-वनिता-वृन्द-विलाप। शुनि पर-मन सञ्चर सन्ताप ॥ १९ ॥

॥ दोहा ॥

शुनु लक्ष्मण रघुनाथ कह, सत्वर अहुँ तहँ जाय ॥ २० ॥
विकल विभीषण शोक सौँ, सद्यः करू उपाय ॥ २१ ॥
लाउ विभीषण काँ एतय, तत्त्वज्ञान शुनाउ ॥ २२ ॥
की राजा मन विकल अहुँ, वनिता-वृन्द बुझाउ ॥ २३ ॥

काम ? ९ हाय, जो कान तुम्बुरु आदि महान संगीताचार्यों का गान सुनते थे, मेरे प्रियतम के उन्हीं कानों को आज कौवे नोच रहे हैं। १० जिन आँखों के सामने यम भी नहीं आते थे, उन्हें गीध नोच-नोचकर खा रहे हैं। ११ जिस संजीवन-सिद्धि के सहारे वे अपना सर काटकर चढ़ाते थे, वह संजीवन-सिद्धि आज मिट्टी हो गई। १२ हा नाथ, यदि रोज-ब-रोज अन्याय-अत्याचार करें तो एक-न-एक दिन उनका कुफल अवश्य भोगना पड़ता है। १३ आपने परमेश्वर से बहुत द्वेष किया। संन्यासी का छद्म-वेष बनाकर दंडकवन गये। १४ जब ही आप सीता को हर लाये, उसी दिन मैं जान गई कि अब आपके ये दसों सिर टिकनेवाले नहीं।" १५ विभीषण के हृदय में शोक हुआ। उनका हृदय दलकने लगा जैसे जड़ैया बुखार हो गया हो। १६ वे विलाप करने लगे— "हा मेरे बड़े भाई, आप हमारे कुल के श्रेष्ठ पुरुष थे। काल की चाल बेकार नहीं जाती। १७ आपका गुण या दोष मैं क्या कहूँ ? काल-वश सभी सब कुछ करते हैं, काल के प्रकोप को कौन रोक सकता है!" १८ विधवाएँ जो करुणक्रन्दन कर रही हैं वह सुनकर दुश्मन का मन भी सन्ताप से भर जाता है। १९ तब राम ने कहा— "हे लक्ष्मण, तुम तुरत वहाँ जाओ। २० विभीषण शोक से व्याकुल हैं। उन्हें सान्त्वना देने का उपाय करो। २१ विभीषण को यहाँ ले आओ। उनका प्रबोधन करो कि २२ राजा होकर आप विह्वल क्यों होते हैं ? आप महिलाओं को समझाइए-बुझाइए। २३ लक्ष्मण ने विभीषण को सान्त्वनाप्रद उपदेश दिया— "रोने

॥ चौपाइ ॥

लक्ष्मण कहल सुखद उपदेश । कनलें की भेटता लङ्केश ॥ २४ ॥
देहादिक सौं आत्मा आन । विश्व अनित्य मानि करु ज्ञान ॥ २५ ॥
देखू रावण-देह समीप । भवन अँधार भिझायल दीप ॥ २६ ॥
सगुण ब्रह्म रामहिँ काँ जानि । सेवा करू कतहु नहि हानि ॥ २७ ॥
प्रभु कहइत छथि से शुनु कान । भ्राता रावण छथि नहि आन ॥ २८ ॥
दाहादिक परलौकिक काज । करु गय सभटा अपनहि आज ॥ २९ ॥
कनइत वनिता-गण करु चूप । लङ्का-राज्यक भेलहुँ भूप ॥ ३० ॥
सभ जनि घुरिकें लङ्का जाथु । पानि पिबथु गय अन्नो खाथु ॥ ३१ ॥
लक्ष्मण कहल कथा शुनि कान । गेला जतय राम भगवान ॥ ३२ ॥
कहल विभीषण शुनु भगवान । रावण पतित छला सभ जान ॥ ३३ ॥
तनिकर दाह करब नहि जाय । विदित छला अततायि कहाय ॥ ३४ ॥

॥ सोरठा ॥

बैर मरण-पर्य्यन्त, कहल राम उत्तर तकर ॥ ३५ ॥
भेल प्रयोजन अन्त, करु रावण संस्कार बिधि ॥ ३६ ॥
तखन विभीषण कयल, लङ्कापति-संस्कार तहँ ॥ ३७ ॥
काष्ठ घृतादिक धयल, चिता धधक प्रलयाग्नि सन ॥ ३८ ॥

से क्या रावण मिल जाएँगे ? २४ देह आदि से आत्मा भिन्न है और यह विश्व अनित्य है, यह समझकर ढाढ़स बाँधिये। २५ देखिये, रावण का शरीर पास में पड़ा है। दिया बुझ गया और घर में अँधेरा छा गया। २६ राम को सगुण ब्रह्म जानकर उनकी सेवा कीजिए, कहीं कोई अहित न होगा। २७ राम ने जो कहा है वह ध्यान से सुनिये। रावण आपके भाई थे, कोई गैर नहीं। २८ आज उनका दाह-संस्कार आदि सारा काम आप स्वयं कीजिए। २९ महिलाएँ जो रो रही हैं, उन्हें समझाइए-बुझाइए। आप लंका के राजा हुए। ३० सभी महिलाएँ लौटकर लंका जाएँ और खाएँ-पिएँ।" ३१ इस प्रकार लक्ष्मण ने जो कहा वह सुनकर विभीषण वहाँ गये जहाँ राम थे। ३२ विभीषण ने कहा— "हे भगवान राम, सुनिये। सभी जानते हैं कि रावण पतित थे। ३३ उनका दाह-संस्कार मैं कैसे करूँगा ? वे तो आततायी के रूप में मशहूर थे।" ३४ राम ने इसका उत्तर दिया— "शत्रुता मरने तक ही रहती है। जो काम था वह पूरा हो गया। अब रावण का संस्कार कीजिए।" ३५-३६ तब विभीषण ने लंकापति रावण का वहाँ अन्तिम संस्कार किया। ३७ चिता में लकड़ी, घी आदि इँधन डाला और चिता प्रलयकाल की आग जैसे धधक करने लगी। ३८ तब स्नान किया और हाथ में कुश

कयलनि तखना स्नान, देल तिलाञ्जलि हाथ कुश ॥ ३९ ॥
वनिता-गण कां ज्ञान, कहल विभीषण हित वचन ॥ ४० ॥
क्रन्दन की रहु चूप, सगर नगर घर बनल अछि ॥ ४१ ॥
हमहि भेल छी भूप, सुख सौं रहबे पूर्व्ववत् ॥ ४२ ॥
दशमुख-धरणी जाय, बद्धाञ्जलि प्रभु सौं कहल ॥ ४३ ॥
हो को हमर उपाय, दुर्म्मति पति-सुत-रहित छो ॥ ४४ ॥

॥ अहीर छन्द ॥

॥ तिरहुति ॥

छल छथि पति दशमाथ, हे माधव, तनि विनु विकलि अनाथ ॥ ४५ ॥
ओ अरि-भाव बढ़ाय, हे माधव, प्रभु तन गेलाह समाय ॥ ४६ ॥
हम पापिनि सहि ताप, हे माधव, परिणत भेल फल पाप ॥ ४७ ॥
हम घननादक माय, हे माधव, जलनिधि-शोक समाय ॥ ४८ ॥
प्रभुक चरण भरि नयन, हे माधव, देखल मुक्तिक अयन ॥ ४९ ॥
जय रघुनन्दन वीर, हे माधव, नूतन जलद शरीर ॥ ५० ॥
भ्राता युगल उदार, हे माधव, करब हमर उद्धार ॥ ५१ ॥

॥ मिथिला-सङ्गीतानुसारेण कलहंस छन्दः ॥

॥ श्रीमालव छन्दश्च ॥

देवर अहाँक एत छथि महराजे। सुख सम अनुभव तनिक समाजे ॥ ५२ ॥
दशमुख-घरणि करणि अछि नीके। पुर परिजन सभ अहँइक थीके ॥ ५३ ॥

लेकर तिलांजलि दी। ३९ महिलाओं को प्रबोध दिया और बताया कि क्या करना चाहिए— ४० "रोती क्यों हैं? सारी लंकापुरी में घर बन चुके हैं। ४१ मैं ही राजा हुआ हूँ। आप सभी जैसे रहती थीं वैसे ही आराम से रहेंगी।" ४२ रावण की स्त्री मन्दोदरी राम के पास गई और हाथ जोड़कर उनसे कहा— ४३ "अब मेरी क्या गति होगी? मुझे न तो बुद्धि है, न पति और न बेटा। ४४ रावण मेरे प्राणेश्वर थे। उनके बिना मैं अनाथ हो गई। ४५ हे भगवान्, वे आपसे शत्रु का भाव जगाकर अन्त में आपके शरीर में लीन हो गये। ४६ मैं पापिनी सन्ताप सह रही हूँ, पापों का फल भुगत रही हूँ। ४७ मैं मेघनाद की माता हूँ, फिर भी शोकसागर में डूबी हूँ। ४८ मैंने आपके चरण आँखों भर देखे जो मुक्ति के साधन हैं। ४९ हे रघुनन्दन! घनश्याम-तनु वीरवर राम, आपकी जय हो। ५० आप उदार हृदय दोनों भाई मेरा उद्धार करेंगे।" ५१ राम ने कहा— "यहाँ आपके देवर विभीषण महाराज के पद पर हैं। उनके पास आपको सभी सुविधाएं मिलेंगी। ५२ हे रावण की प्रिया मन्दोदरी, आपकी करनी अच्छी है। सभी नौकर-चाकर

देवर वदान्य सह करु सहवासे । मन न रखब किछु विपतिक त्रासे ॥ ५४ ॥
शुनि प्रभु-वचन सकल दुख-हीना । लङ्का मानल से अपन अधीना ॥ ५५ ॥

॥ सोरठा ॥

सभ काँ नगर पठाय, प्राप्त विभीषण प्रभु-निकट ॥ ५६ ॥
पङ्कज-नयन उठाय, देखल भक्त-प्रधान काँ ॥ ५७ ॥
रामक दण्ड-प्रणाम, बहुत विनय मातलि कयल ॥ ५८ ॥
चलला सुरपति-धाम, प्रभु-आज्ञा सौं हर्षयुत ॥ ५९ ॥

॥ जयकरी छन्द ॥

करु अभिषेक विभीषण माथ । लक्ष्मण काँ कहलनि रघुनाथ ॥ ६० ॥
पूर्व्व कयल हम लङ्कानाथ । सुखशासन न विभीषण-हाथ ॥ ६१ ॥
विधिपूर्व्वक ब्राह्मण सभ आब । हाटक-घटसौं जलधि-जल लाब ॥ ६२ ॥
पुरजन वानर सैन्य अनेक । कयल विभीषण नृप-अभिषेक ॥ ६३ ॥
प्रभुक प्रणाम विभीषण करथि । रत्न असूल्य चरण पर धरथि ॥ ६४ ॥
देखि विभीषण प्रभु कृतकृत्य । बड़ गोट राज्य पाबि गेल भृत्य ॥ ६५ ॥
मिलि सुग्रीव सङ्ग रघुनाथ । भेल विजय-यश अहँइक हाथ ॥ ६६ ॥
मारल रावण लङ्का राज । देल विभीषण काँ भल काज ॥ ६७ ॥

और नगरनिवासी आप ही के हैं। ५३ आप उदार देवर के साथ रहें। आप विपत्ति में हैं, ऐसी आशंका मत कीजिए।" ५४ राम की बात सुनकर मन्दोदरी का दुख दूर हुआ और उसने लंका को अपने अधिकार में समझा। ५५ विभीषण सबों को लंकापुरी भेजकर स्वयं राम के पास गये। ५६ राम ने आँख उठाकर अपने प्रमुख भक्त विभीषण को देखा। ५७ इन्द्र के सारथि मातलि ने राम को दंडवत् प्रणाम किया और बहुत विनती की। फिर राम की आज्ञा पाकर सहर्ष इन्द्रपुरी विदा हुए। ५८-५९ तब राम ने लक्ष्मण से कहा— "तुम विभीषण के माथे पर अभिषेक करो। ६० पहले मैंने इन्हें लंका का स्वामी बनाया। पर सुखपूर्वक शासन करने का अधिकार विधिवत् उनके हाथ में सौंपा नहीं था। ६१ अब शास्त्रोक्त विधान के अनुसार ब्राह्मण बुलाए जाएँ। सोने के घड़ों में समुद्र का जल मँगाया जाए।" ६२ नगर के निवासी, कपिगण और अनेक सैनिक सबों ने मिलकर विभीषण का राज्याभिषेक किया। ६३ विभीषण ने राम को प्रणाम किया और अमूल्य रत्न उनके चरणों पर समर्पित किये। ६४ विभीषण को राजा के रूप में देखकर राम कृतकृत्य हो गये। सेवक को महान् राज्य मिल गया। ६५ तब राम सुग्रीव से मिले और उनसे कहा— "यह विजय की कीर्ति मुझे आप ही की मदद से मिली है। ६६ रावण को मारा। लंका का राज्य विभीषण को दिया, यह अच्छा

विजय-लाभ भेल अहँक प्रसाद। राखल उचित मित्र-मर्याद ॥ ६८ ॥
लङ्का मारुतसुत अहँ जाउ। सीता कौं वृत्तान्त सुनाउ ॥ ६९ ॥
रावण-मरण प्रथम कहि देव। समाचार तनिकर बुझि लेब ॥ ७० ॥
सुनि प्रभु-वचन गेला हनुमान। दनुजी-जन मन कर अनुमान ॥ ७१ ॥
प्रथमहिँ लङ्का अयला जेह। मन अबइछ लगइछ रङ्ग सेह ॥ ७२ ॥
जनकनन्दिनी देखल जाय। दिन दिन गेलि बहुत दुबराय ॥ ७३ ॥
रामचन्द्र-पद मे दृढ़ ध्यान। चिन्हल न आयन छथि हनुमान ॥ ७४ ॥
हाथ जोड़ि तहँ कयल प्रणाम। दूर ठाढ़ भय कहलनि नाम ॥ ७५ ॥
स्वामिनि रावण कौं रघुवीर। मारल समर अमर-मन थीर ॥ ७६ ॥
भेल विभीषण नव लङ्केश। जय जय करथि अमर अमरेश ॥ ७७ ॥
प्रभु-आज्ञा सौँ हर्ष समाद। अयलहुँ कहय न रहय विषाद ॥ ७८ ॥
रावण-दशा कि अछि कहबाक। घर पर सञ्चर गृद्ध ओ काक ॥ ७९ ॥
गेला विभीषण आज्ञा पाय। अन्त-क्रिया कयलनि बुझि भाय ॥ ८० ॥
अत छल लङ्का रावण-वंश। सभहिक भेल समर विध्वंस ॥ ८१ ॥

हुआ। ६७ मैंने आप ही को बदौलत जीत पाई। आपने मित्र की मर्यादा भलीभाँति निभाई।" ६८

सीता को संवाद देना, उनका लौटना तथा अग्नि-परीक्षा

फिर राम ने हनुमान से कहा— "हे पवनसुत, आप लंका जाइए और सीता को समाचार सुनाइए। ६९ पहले यह सुनाना कि रावण मारा गया। फिर उनका कुशल-मंगल पूछना।" ७० राम की बात सुनकर हनुमान सीता के पास गये। वहाँ उन्हें देख राक्षसियाँ अनुमान करने लगीं— ७१ जो बन्दर पहले आया था, रंग-ढंग से लगता है कि वही फिर लंका आया है। ७२ हनुमान ने जाकर जनकनन्दिनी सीता को देखा। वह दिन-पर-दिन दुबली होती गई थी। ७३ उनका ध्यान राम के चरण में इस प्रकार लगा था कि पहचान न सकीं कि ये हनुमान हैं। ७४ वहाँ हनुमान ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और दूर ही खड़ा रहकर अपना नाम कहा। ७५ फिर बोले— "हे स्वामिनी, राम ने युद्ध में रावण को मार डाला। देवताओं का मन निश्चिन्त हुआ। ७६ विभीषण लंका के नये राजा हुए। देवता और उनके राजा इन्द्र राम का जय-जयकार कर रहे हैं। ७७ राम की आज्ञा से यह हर्ष का समाचार मैं सुनाने आया हूँ ताकि आपका विषाद दूर हो। ७८ रावण का जो हाल है वह क्या कहें। उसके घर पर गीध और कौवे मँड़रा रहे हैं। ७९ राम की आज्ञा से विभीषण गये और भाई समझकर उसका अन्तिम संस्कार किया। ८० लंका में रावण के कुल के जो-जो राक्षस थे, युद्ध में सबों का अन्त हो गया। ८१ प्रभुवर राम के जो सेवक थे युद्ध में वे सभी बचे हुए हैं

श्रीरघुवर प्रभुसरक जे दास। से सभ कुशल समर निस्त्रास ॥ ८२ ॥
वैदेही मन शुनि बड़ हर्ष। तन पुलकित लोचन जल वर्ष ॥ ८३ ॥
रघवर - प्रिय - सेवक हनुमान। वचन अहाँक सुधाक समान ॥ ८४ ॥
प्रिय वचनक तुल की वसु देब। सकल लोक उत्तम यश लेब ॥ ८५ ॥
शुनु वैदेहि कहल हनुमान। देवि-अनुग्रह सम की आन ॥ ८६ ॥
रावण काँ मारल रघुवीर। मन छल कलुषित से सुख थीर ॥ ८७ ॥
हनुमानक शुनि वचन उदार। सीता उत्तर कहल विचार ॥ ८८ ॥
करुणा-सदन समीर-कुमार। कहल समाद प्रभुक दरबार ॥ ८९ ॥
आज्ञा देथि दुखी - दुख - हरण। देखी श्री रघुनन्दन - चरण ॥ ९० ॥
चलल अनिल-सुत कयल प्रणाम। पहुँचलाह रघुवर जहि ठाम ॥ ९१ ॥
सीता - दशा कहल सभ कहल। गदगद कण्ठ नयन जल बहल ॥ ९२ ॥
जेहि कारण सागर मे सेतु। दशकन्धर मारल जे हेतु ॥ ९३ ॥
तनि सीता - मन छूटय शोक। देखल जाय मङ्गाय सुकोक ॥ ९४ ॥
रघुनन्दन - माया के जान। मन मे कयल तखन प्रभु ध्यान ॥ ९५ ॥
सीता अनल - गता बहराथु। माया-सीता छाया जाथु ॥ ९६ ॥

और उन्हें अब कोई त्रास नहीं है।" ८२ सीता को यह सुनकर मन में बड़ा हर्ष हुआ। हर्ष से शरीर के रोंगटे खड़े हो गये और आँखों से आनन्द के आँसू बहने लगे। ८३ उन्होंने कहा— "हे राम के प्रिय सेवक हनुमान, आपका यह वचन अमृत के समान है। ८४ आपको मैं इस प्रिय वचन के अनुरूप क्या इनाम दूं? सारी दुनिया में आपको सर्वश्रेष्ठ कीर्ति मिलेगी।" ८५ हनुमान ने कहा— "हे जानकी, आपकी कृपा से बढ़कर और कौन चीज़ है? ८६ रावण को राम ने मारा यह सुनकर मेरा व्यथित चित्त सुख से शान्त हो गया।" ८७ हनुमान का यह प्रशस्त वचन सुनकर सीता ने उत्तर में यह विचार रखा। ८८ "हे कृपालु पवनसुत हनुमान, आपने राम के दरबार का समाचार कहा। ८९ अब मैं दुखियों के दुख को दूर करनेवाले राम के चरणों का दर्शन करना चाहती हूँ।" ९० तब हनुमान प्रणाम करके विदा हुए और वहाँ पहुँचे जहाँ राम थे। ९१ सीता का हाल पूरा-पूरा कह सुनाया। सुनकर राम गद्गद हो गये और उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। ९२ उन्होंने कहा— "जिनके खातिर समुद्र बाँधा गया और रावण मारा गया उन सीता के मन से शोक दूर होना चाहिए। उनको सकुशल मँगाया जाय। ९३-९४ राम की माया कौन जान सकता है। तब राम ने सोचा— ९५ जो असली सीता आग में समाई हुई थीं वह निकलकर बाहर आवें और माया रूपी सीता छाया में समा जाएँ। ९६ तब राम ने अपने नये मित्र लंकापति विभीषण से हर्षपूर्वक कहा— ९७ "अब सीता वहाँ

॥ सोरठा ॥

मित्र निवल लङ्केश, कहल रघूत्तम हर्षयुत ॥ ९७ ॥
लय आनू एहि देश, सीता भीता छथि वृथा ॥ ९८ ॥

॥ चौपाइ ॥

स्नान वस्त्र सुन्दर नवरङ्ग । सकलाभरण - विभूषित अङ्ग ॥ ९९ ॥
शिविका पर लय आनू आज । प्राणेश्वरि काँ हमर समाज ॥ १०० ॥
गेला विभीषण सङ्ग हनुमान । करबाओल तनिका अस्नान ॥ १०१ ॥
बड़ि बड़ि वृद्धा काँ मङ्गबाय । तेल सुगन्धि देल लगबाय ॥ १०२ ॥
सभ सौं उत्तम छल नव कोष । वस्त्र पहिरलनि से निर्दोष ॥ १०३ ॥
जनि पहिराओल गहना सर्व्व । वस्तु अमूल्य कि खर्व्व निखर्व्व ॥ १०४ ॥
शिविका चढ़लि कहार उठाय । चललि राजपथ सङ्ग सहाय ॥ १०५ ॥
सङ्ग पदाति न किछु पछुआथि । हट हट करयित आगाँ जाथि ॥ १०६ ॥
देखय दौड़ल वानर-ठठ्ठ । धक्का खड़्गिक सह निरहठ्ठ ॥ १०७ ॥
नहि हट पथ सौं कपि जे झट्ट । बेंतक मारि सहाथ पट पट्ट ॥ १०८ ॥
वानर-बृन्द कयल चित्कार । राक्षसगण वानर काँ मार ॥ १०९ ॥
राम समीप गेला सभ गोट । मन विषाद किछु लगलैं चोट ॥ ११० ॥

नाहक डरी हुई है। उसे यहाँ ले आइये। ९८ सीता स्नान करके नये रंग-बिरंगे सुन्दर वस्त्र पहने। अंगों में सभी गहने लगाये। ९९ तब मेरी प्राणेश्वरी सीता को डोली चढ़ाकर मेरे पास लेते आइये।" १०० आज्ञा पाकर हनुमान के साथ विभीषण सीता के पास गये। उन्हें स्नान कराया। १०१ बड़ी-बड़ी बूढ़ियों को मँगवाकर उनसे फुलेल लगवाया। १०२ नये खज़ाने में जो सबसे अच्छा स्वच्छ वस्त्र था सीता ने वह पहना। १०३ उन महिलाओं ने उन्हें सारे गहने पहनाये। ये गहने अमूल्य थे, अरबों-खरबों में भी उनका मूल्य आँका नहीं जा सकता। १०४ सीता डोली पर सवार हुई। कहारों ने डोली को उठाया। वह परिजनों के साथ राजपथ पर चल पड़ी। १०५ साथ में पैदल अंगरक्षक सैनिक चल रहे थे; वे कभी पीछे न होते। वे 'हटो-हटो' की आवाज़ करते आगे-आगे चल रहे थ। १०६ बन्दरों के दल सीता को देखने दौड़े। उन्हें खड्गधारी अगरक्षक धक्का दे-देकर हटाते थे। फिर भी वे निलंज्ज की भाँति धक्का खाते थे। १०७ जो बन्दर रास्ते से तुरत न हटते थे उन्हें अंग-रक्षकों के बेंत की मार पड़ती थी। १०८ तब कपिगण चिल्लाने लगे कि राक्षस बन्दरों को पीट रहे हैं। १०९ ये सभी बन्दर राम के पास गये। चोट लगी थी, इससे इनका मन दुखी था। ११० तब राम ने देखा कि एक डोली आ रही है और उसके

देखि सबारी अबइत एक । अनुव्रजन कर लोक अनेक ॥ १११ ॥
कहल विभीषण काँ तहँ राम । वैदेही आबथु एहिठाम ॥ ११२ ॥
उतरि सबारीपर सौं लेथ । निज-पद-दर्शन जनकाँ देथु ॥ ११३ ॥
रघुनन्दन आज्ञा देल जेहन । जनकनन्दिनी कयलनि तेहन ॥ ११४ ॥
राम असह्य कथा किछु कहल । सर्व्वसहा-तनया सभ सहल ॥ ११५ ॥
सीता काँ मन मे भेल आनि । लक्ष्मण काँ कहलनि शुनि कानि॥ ११६ ॥
करु करु देवर ज्वलित हुताश । करब सकल मन संशय नाश ॥ ११७ ॥
प्रभु-अनुमति बुझि जोड़ल अनल । देखइत लोक शोक सौं कनल ॥ ११८ ॥
राम निकट भय भेला ठाढ़ । धह धह धाह आगि मे बाढ़ ॥ ११९ ॥
पतिक प्रदक्षिण कय कय बेरि । बेरि बेरि चरणाम्बुज हेरि ॥ १२० ॥
वैदेही सभ शक्तिक शक्ति । रामचरण मे अविरल भक्ति ॥ १२१ ॥
विकल लोक ओ राक्षसदार । कि होयत कि होयत वचन उचार॥१२२॥
सकल देवता भूसुर-चरण । कयल प्रणाम कष्ट सभ हरण ॥ १२३ ॥
सीता निर्भीता निज चित्त । साहस कर आमर्ष निमित्त ॥ १२४ ॥
करयुग जोड़ल अनल समीप । विधु-दिनकर-कुल-कीर्ति-प्रदीप ॥ १२५ ॥
जौं रघुवर मे सत्य सनेह । तौं रह अनल बनल ई देह ॥ १२६ ॥

पीछे बहुत-से लोग लगे हैं। १११ यह देख राम ने विभीषण से कहा— "जानकी को यहाँ लाइये। ११२ वे अपनी डोली से उतर जाएँ और अपने सेवकों को अपने चरण का दर्शन दें।" ११३ राम ने जैसी आज्ञा दी, सीता ने वैसा किया। ११४ राम ने कुछ कड़वी बात कही। सर्वसहा (सब कुछ सहनेवाली, धरती) की पुत्री सीता ने सब बरदाश्त कर लिया। ११५ फिर भी सीता के मन में कुछ आन हुई। उन्होंने रोते हुए अपने देवर लक्ष्मण से कहा— ११६ "हे देवर जी, आप आग जलाइये। मैं सबों के मन का संदेह दूर करूँगी।" ११७ राम की अनुमति पाकर लक्ष्मण ने आग जलाई। देखते ही सभी लोग शोक से रोने लगे। ११८ राम उस आग के पास खड़े हो गये। आग में धह-धहकर ज्वाला बढ़ती जा रही थी। ११९ सीता ने, जो देवी शक्ति की भी शक्ति है और जिन्हें राम के चरण में अटल भक्ति है, बार-बार पति का प्रदक्षिण किया और बार-बार उनके चरण-कमल का दर्शन किया। १२०-१२१ सभी लोग और राक्षस-पत्नियाँ स्थिति देखकर खिन्न हो गई थीं और बोलती थी कि न जाने अब क्या होगा। १२२ तब सीता ने सभी देवताओं और ब्राह्मणों को प्रणाम किया जो सभी कष्टों को दूर करनेवाले हैं। १२३ सीता को मन में कोई त्रास नहीं था। वह आन पर साहस कर रही थीं। १२४ चन्द्रवंश और सूर्यवंश दोनों को उजागर करनेवाली सीता हाथ जोड़कर आग के पास खड़ी हो गईं और बोलीं— १२५ "यदि मुझे राम से सच्चा प्रेम है तो मेरा यह शरीर आग में ज्यों-का-त्यों बना रहे। १२६

जौं पति तेजि मन अनत न जाय। तौं रह अनल बनल ई काय ॥ १२७ ॥
जाग्रत स्वप्नदशा मे आन। पुरुषक भेल न मन मे ध्यान ॥ १२८ ॥
सत्य स्वकीया जौं हम नारि। पति-पद-व्रत मन गर्व्व विचारि ॥ १२९ ॥
उबलित अनल मे पड़बे जाय। व्रत अन्यथा देह जरि जाय ॥ १३० ॥
साक्षी पावक रक्षा करब। संशय सकल-लोक-गत हरब ॥ १३१ ॥
कयल प्रदक्षिण अग्नि-प्रवेश। जय-जय शब्द भेल नभ बेश ॥ १३२ ॥
सीता अनल-राशि मे ठाढ़ि। सीता-कान्ति कोटिगुण बाढ़ि ॥ १३३ ॥
सकल सिद्ध कह बारंबार। एहन विशुद्ध आन के दार ॥ १३४ ॥
लक्ष्मी सीता करु जनु त्याग। सकल लोक काँ अनुचित लाग ॥ १३५ ॥
अनल कहल बनि दिव्य स्वरूप। शुनु जगदीश्वर माया-भूप ॥ १३६ ॥
छल छथि सीता सोपलि जतय। प्रकट भेलि छथि देखू ततय ॥ १३७ ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे लङ्काकाण्डे द्वादशोऽध्यायः ॥

यदि मेरा मन पति को छोड़ और कहीं नहीं जाता है तो मेरा यह शरीर आग में ज्यों-का-त्यों बना रहे। १२७ यदि जागते या सोते कभी मेरे मन में पराये पुरुष का ध्यान न आया; १२८ यदि मैं सच्ची स्वकीया नारी हूँ और पतिव्रता होने का मुझे अभिमान है १२९ तो मैं धधकती आग में प्रवेश करूँगी। यदि मेरा व्रत गड़बड़ हो तो मेरा यह शरीर जल जाय। १३० हे अग्नि, आप साक्षी हैं; मेरी रक्षा कीजियेगा। सारे लोगों के मन के संदेह को दूर कर दीजियेगा।" १३१ इतना कहकर सीता ने आग की प्रदक्षिणा किया और उसमें प्रविष्ट हो गईं। आकाश में ज़ोर-ज़ोर से जयध्वनि होने लगी। १३२ सीता धधकती आग में खड़ी हो गईं। उनकी कान्ति करोड़ों गुना बढ़ गई। १३३ सभी सिद्ध बार-बार कहने लगे— "और कौन नारी ऐसी विशुद्ध है। १३४ सीता तो साक्षात् लक्ष्मी हैं। इनका त्याग मत कीजिये।" राम का ऐसा व्यवहार सबों को बुरा लगा। १३५ अग्नि भगवान् दिव्य रूप में प्रकट हुए और बोले— "हे लीलावश राजा बने जगदीश्वर राम! आपने वास्तविक सीता को जहाँ सौंप रखा था, देखिये, उसी आग से वह यहाँ प्रकट हो गई हैं।" १३६-१३७

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला भाषा रामायण में लंकाकाण्ड का बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥

॥ अथ त्रयोदशोऽध्याय: ॥

॥ चौपाइ ॥

ऐरावत पर चढ़ि सुरराज । समीचीन श्री-शची समाज ॥ १ ॥
सहस्राक्ष अयला तहिठाम । सुरगण सहित गबंत गुणग्राम ॥ २ ॥
यम ओ वरुण कुबेर समेत । अयला रघुनन्दन - रण - खेत ॥ ३ ॥
वृषभ चढ़ल अयला वृषकेतु । करब रघूत्तम-स्तुति तें हेतु ॥ ४ ॥
रजताचल सन झलकय देह । चण्डी सङ्ग अखण्ड सिनेह ॥ ५ ॥
त्रिनयन शोभित श्रीमुख पाँच । रघुपति-चरित सतत से बाँच ॥ ६ ॥
गङ्गा पिङ्ग - जटा भल रङ्ग । भूतप्रेत-गण बहुविध सङ्ग ॥ ७ ॥
ब्रह्मा अयला हंस-सवार । सङ्ग शारदा सदगुणदार ॥ ८ ॥
वीणा पुस्तक अक्ष सुमाल । अयली जतय राम महिपाल ॥ ९ ॥
मुनि ऋषि पितर सिद्ध गन्धर्व्व । उरगादिक मिलि अयला सर्व्व ॥ १० ॥
बद्धाञ्जलि अभिनत सब भाष । प्रभु पूरल जन-मन-अभिलाष ॥ ११ ॥
सकल - लोक - कर्त्ता भगवान । साक्षी सकल देह विज्ञान ॥ १२ ॥
रावण सभक हरल धन धाम । तकरा अपने मारल राम ॥ १३ ॥

तेरहवाँ अध्याय

सभी देवों द्वारा राम की स्तुति; अग्निदेव द्वारा वास्तविक सीता का लौटाया जाना और राम का सदल-बल अयोध्या के लिए प्रस्थान

देवताओं के राजा हज़ार आँखों वाले इन्द्र सची-सहित और देवताओं के साथ राम का गुण गाते हुए ऐरावत पर चढ़कर वहाँ आये । १-२ यम, वरुण और कुबेर भी वहाँ आये जहाँ राम-रावण-युद्ध हुआ था । ३ बैल पर चढ़कर भगवान् शिव भी राम की स्तुति करने के उद्देश्य से वहाँ पधारे । ४ उनका शरीर चाँदी के पर्वत के समान चमकता था । चण्डी भी साथ में थीं जिनके साथ उन्हें अटूट प्रेम है । ५ उनके पाँचों श्रीमुख तीन-तीन आँखों से शोभायमान थे, और वे मुख सदा राम के चरित का कीर्तन करते थे । ६ सफ़ेद गंगा और हल्की पीली जटा दोनों का रंग खूब खुलता था । तरह-तरह के भूतों और प्रेतों के दल उनके साथ थे । ७ ब्रह्मा हंस पर सवार होकर आये । साथ ही उनकी गुणवती स्त्री शारदा भी वीणा, पुस्तक और स्फटिक माला लिये वहाँ आई जहाँ राजा राम थे । ८-९ ऋषि, मुनि, पितर, सिद्ध, गन्धर्व, नाग आदि सभी मिलकर आये । १० सभी हाथ जोड़े सर झुकाये हुए बोले— "हे प्रभु, आपने अपने भक्तों के मन की कामना पूरी की । ११ हे भगवान्, आप तीनों लोकों की सृष्टि करनेवाले हैं, सभी कर्मों के साक्षी हैं, और सभी शरीरों में विज्ञान के रूप में विद्यमान हैं । १२ रावण ने सबों की

भेलहुँ अकण्टक सुख सौं रहब। निज निज सदन सुयश-चय कहब ॥ १४ ॥
ब्रह्मास्तुति कयलनि अगुआय। आज कयल प्रभ समुचित न्याय ॥ १५ ॥

॥ अनुष्टुप् ॥

॥ देश ॥

स्तुवे कादम्बिनी-श्यामं धनुष्मन्तम्मुदा रामम् ॥ १६ ॥
युगान्ते सर्व्वलोकायामशोकानां हि विश्रामम् ॥ १७ ॥
खले मन्दोदरीकान्ते महच्चित्रं रणे शान्ते ॥ १८ ॥
हृताशेषावनीभारं रमादारं महोदारम् ॥ १९ ॥
मुनीनां दुःखशान्त्यर्थं मुदा सम्प्राप्तकान्तारम् ॥ २० ॥
सुमित्रानन्दनं वन्दे रणे शक्रारिहन्तारम् ॥ २१ ॥

॥ सवैया छन्द ॥

वाक अगोचर चित्त अगोचर, के कह केहन कान्ति कहाँ छी ॥ २२ ॥
सूक्ष्मसौं सूक्ष्म विशाल विशालसौं, ईश्वर छी विभु छी जे जहाँ छी ॥ २३ ॥
सृष्टिक हेतु अनादि अनामय, ध्यान सौं ध्येय-स्वरूप तहाँ छी ॥ २४ ॥
विष्णु अहाँ छी विरञ्चि अहाँ छी, महेश अहाँ छी कहाँ नै अहाँ छी ॥ २५ ॥
ज्ञान समाधि समग्र महातप, ध्येय सरूप जहाँ छी तहाँ छी ॥ २६ ॥
नाम विरञ्चि कहै छथि लोक से, गोचर ब्रह्म न देव कहाँ छी ॥ २७ ॥

धन-सम्पत्ति और घर-बार हर लिये थे। उसका आपने संहार किया। १३ हम लोग अकंटक हो गये। अब आराम से रहेंगे। अपने-अपने घर में आपके सुयश का बखान करते रहेंगे।" १४ फिर आगे होकर ब्रह्मा ने स्तुति की— "हे प्रभु, आपने रावण के प्रति उचित न्याय किया। १५ मैं बादल-से साँवले धनुषधारी राम की सानन्द स्तुति करता हूँ जिनमें युग के अन्त में सभी लोग शोक-रहित हो लीन हो जाते हैं। १६-१७ जिन्होंने मंदोदरी के पति दुष्ट रावण को आश्चर्यपूर्वक युद्ध में मारकर धरती का भार दूर किया उन परम उदार लक्ष्मीपति भगवान् की मैं स्तुति करता हूँ। १८-१९ जो मुनियों के कष्ट को दूर करने के लिए खुशी से बन गये, और जिन्होंने युद्ध में इन्द्रजित् मेघनाद को मारा उन सुमित्रानन्दन लक्ष्मण की मैं स्तुति करता हूँ। २०-२१ आप वाणी के परे हैं, चित्त के परे हैं, तब कौन कह सकता कि आपकी झलक कैसी है। २२ आप अणु से भी अणु और महान से भी महान हैं। आप ईश्वर हैं और विभु अर्थात् सर्वव्यापी हैं, जो हैं, जहाँ हैं। २३ आप सृष्टि के कारण अर्थात् कर्ता हैं। आप आदिहीन हैं, विकारों से रहित हैं। आपका स्वरूप केवल योग द्वारा ध्यान में दिखाई पड़ सकता है। २४ आप विष्णु हैं, आप ब्रह्मा हैं और आप ही महेश हैं। आप कहाँ नहीं हैं? २५ जहाँ कहीं भी आप ज्ञान, समाधि या उग्र तपस्या द्वारा ध्यान में आने योग्य हों; आपके

व्योम समीर तथानल ओ जल, देखल जाइछ सर्व्व-सहा छी ॥ २८ ॥
श्री रघुनन्दन दुष्ट-निकन्दन, सद्गुण ब्रह्म अनन्त अहाँ छी ॥ २९ ॥

॥ चौपाइ ॥

पावक प्रकट भेल तहिकाल । दिव्यरूप अति-दीप्ति विशाल ॥ ३० ॥
बैदेही आरोपित अङ्क । क्षीरोदधि जनु रमा निशङ्क ॥ ३१ ॥
अरुण वसन विमलारुण कान्ति । दिव्य विभूषण सुन्दरि शान्ति ॥ ३२ ॥
सकलदेव जय-जय धुनि करथि । गगन अवनि स्वेच्छा सञ्चरथि ॥ ३३ ॥
पावक कहल राम भगवान । करयति यशोराशि - गुणगान ॥ ३४ ॥
सीता काँ सोपल वन राम । लेल जाय प्रभु से एहि ठाम ॥ ३५ ॥
प्रमुदित राम कमल-कर धयल । वाम अङ्ग मे स्थापित कयल ॥ ३६ ॥
से शोभा देखथि अमरेश । कह जय-जय सीता-प्राणेश ॥ ३७ ॥
सहस्राक्ष फल पाओल आज । सीतासहित देखल रघुराज ॥ ३८ ॥
हम अमरेश्वर छल ई गर्व्व । से अभिमान रहित भेल सर्व्व ॥ ३९ ॥
श्रीप्रभु-चरणक हम लघु दास । रावणादि-कृत छूटल त्रास ॥ ४० ॥
रामचन्द्र नूतन - घन - रङ्ग । जनक-सुता-सौदामनि सङ्ग ॥ ४१ ॥

उस स्वरूप को लोग 'ब्रह्म' कहते हैं। किन्तु आप सबों की आँख में दीखने वाले कहाँ नहीं हैं ? २६-२७ आप तो आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी के रूप में सर्वत्र देखे जाते हैं। २८ हे दुष्टों का संहार करनेवाले रघुनंदन राम, आप अनन्त ब्रह्म होते हुए भी सगुण हैं।" २९ इसी समय अग्निदेव दिव्य रूप में प्रकट हुए। उनके शरीर में अद्भुत चमक थी। ३० उनकी गोद में सीता निःशंक विराजमान थीं जैसे समुद्र की गोद में लक्ष्मी। ३१ सीता लाल वस्त्र पहने थीं। उनके शरीर का रंग निर्मल लाल था। वे अलौकिक आभूषण पहने हुए थीं, सुन्दर और शान्त लगती थीं। ३२ सभी देवता लोग जय-जयकार कर रहे थे और रावण की मृत्यु से निर्भय हो स्वच्छन्दतापूर्वक धरती और आकाश में विचरण कर रहे थे। ३३ अग्निदेव ने राम के यश और गुणों का गान करते हुए कहा— ३४ "हे राम, वन में आपने सीता को जो मेरे ज़िम्मे सौंपा था सो उन्हें आज यहाँ वापस लीजिए।" ३५ राम ने प्रसन्न हो सीता का हाथ धर लिया और अपने बायें अंग में रख लिया। ३६ इन्द्र ने यह शोभा देखी और बोले— "जय हो, सीतापति रामचन्द्र की जय हो ! ३७ हज़ार आँखें मिलने का फल आज पाया। सीता-सहित राम का दर्शन पाया। ३८ मुझे घमंड था कि मैं देवताओं का राजा हूँ, पर वह सारा घमंड आज जाता रहा। ३९ मैं आपके चरण का तुच्छ दास हूँ। रावण आदि राक्षसों से होनेवाला आतंक आज दूर हुआ। ४० राम के शरीर का रंग नये बादल का-सा है और बिजली की

जहिलय योग ज्ञान तप करथि। गुहावास घन वन सञ्चरथि॥ ४२॥
जहिलय शङ्कर करथि समाधि। तनिकाँ देखल छूटल आधि॥ ४३॥
केओ कह कर्म्म काल केओ प्रकृति। केओ कह पुरुष सिद्धमुनि प्रभृति॥ ४४॥
कहयित शुनयित अन्त न पाब। केओ कह सृष्टिक सहज स्वभाव॥ ४५॥
कर्त्ता कर्म्मादिक जत भाष। देखि प्रभु-चरण पुरल अभिलाष॥ ४६॥
रहल न एको मन वंधम्य। सभहिक अपने केवल गम्य॥ ४७॥

॥ दण्डक ॥

जय सदोद्यत-धराधारे, हृत-धरित्री-विपुल-भारे॥ ४८॥
जगन्मातर्गुणागारे महोदारे हे ॥ ४९॥
जनक-महि-महनीय-कन्ये, शिव-विरञ्चि-प्रभृति-मान्ये॥५०॥
रमा-गौरी-जन-वदान्ये, यशोहारे हे ॥ ५१॥
सदानाहत-जलज-वासे, पाप-तूल-महा-हुताशे॥ ५२॥
पूरिताखिल-सुर-जनाशे, निराकारे हे ॥ ५३॥
राम-घन-चपले सुकामिनि जय चराचर-वर स्वामिनि॥५४॥
रूप जित-कन्दर्प-मानिनि, शक्तिसारे हे ॥ ५५॥

चमक जैसी कान्ति वाली सीता साथ में हैं। ४१ जिनके लिए ऋषि-मुनि लोग योग, ज्ञान और तप करते हैं; निर्जन गुहा और घने जंगलों में रहते हैं; जिनके लिए भगवान् शिव समाधि लगाते हैं, उनको मैंने आज अपनी आँखों से देखा। सारी चिन्ता दूर हो गई। ४२-४३ कोई आपको कर्म कहते हैं, कोई काल कहते हैं, कोई प्रकृति कहते हैं और कोई पुरुष कहते हैं। ऋद्धि-सिद्धि, ऋषि-मुनि लोग भी आपका बखान करते और सुनते अन्त नहीं पाते हैं। कोई कहते हैं कि आप विश्व का स्वाभाविक गुण हैं। ४४-४५ कर्ता, कर्म आदि अनेक रूपों में आप भासमान हैं। आपके चरण-कमल को देखकर मेरी अभिलाषा पूरी हुई। ४६ मन में कोई द्विविधा न रही। आप सभी साधकों के एक मात्र लक्ष्य हैं। ४७ हे सीता, आपकी जय हो। आप पृथ्वी को धारण करने में सदा उद्यत रहती हैं। आप पृथ्वी के विशाल भार को हरती हैं। आप संसार की माता अर्थात् मूल प्रकृति हैं। आप गुणों का खज़ाना हैं और परम उदार हैं। ४८-४९ जनक की भूमि मिथिला की पूज्य कन्या हैं। शिव, ब्रह्मा आदि आपकी पूजा करते हैं। ५० लक्ष्मी, गौरी आदि देवियाँ आपकी स्तुति करती हैं। आप यशोमालिका से विभूषित हैं। ५१ आप सदा अनाहत कमल में निवास करती हैं। आप पाप रूपी रुई के लिए दारुण आग हैं। ५२ आपने सभी देवताओं की आशा पूरी की। आप निराकार शक्तिस्वरूपा हैं। ५३ आप राम रूपी बादल में बिजली की तरह शोभती हैं। आप आदर्श नारी हैं। आप संसार की चल और अचल सभी वस्तुओं की स्वामिनी हैं। आपने अपने रूप से कामदेव की स्त्री रति को

॥ चौपाइ ॥

राम कहल शुनु शुनु सुरराज। एकगोट अपनँ सौं काज ॥ ५६ ॥
बानर रण मे मुइल बहूत। से सजीव करु प्रिय पुरहूत ॥ ५७ ॥
से शुनि तेहन कयल अमरेश। अमृत-वृष्टि सौं राम-निदेश ॥ ५८ ॥
प्राप्त जीव से लाखहि लाख। जय रघुनन्दन आनन्द भाष ॥ ५९ ॥

॥ सोरठा ॥

शुनु करुणानिधि राम, हाथ जोड़ि शङ्कर कहल ॥ ६० ॥
हम आयब ओहिठाम, अति उत्सव अभिषेक मे ॥ ६१ ॥

॥ जयकरी छन्द ॥

दशरथ नृप देखयित छथि ठाढ़। अहँ मे प्रेम जनिक अछि गाढ़ ॥ ६२ ॥
दशरथ काँ लगला प्रभु गोड़। लक्ष्मण सीता हर्ष न थोड़ ॥ ६३ ॥
दशरथ कहलनि पूरल आश। संशय आधि सर्व्व भेल नाश ॥ ६४ ॥
दशरथ गेला पाबि सन्मान। राग द्वेष गत पाओल ज्ञान ॥ ६५ ॥
तखन बिभीषण जोड़ल हाथ। एक विज्ञप्ति हमर रघुनाथ ॥ ६६ ॥
घर थिक अपन चलल प्रभु जाय। दिनेक रहब-शक के अटकाय ॥ ६७ ॥
स्नान अलङ्कृत मङ्गल वेष। सभ काँ मन प्रभु-छवि काँ देख ॥ ६८ ॥

जीता है। आप शक्ति की भी शक्ति हैं।" ५४-५५ राम ने कहा— "हे इंद्र, सुनिये। आपसे मुझे एक काम है। ५६ लड़ाई में बहुत-से कपि मरे हैं। हे मेरे प्यारे इंद्र, आप कृपा कर उन्हें जिला दें।" ५७ यह सुनकर देवराज इंद्र ने वैसा ही किया। राम के अनुरोध से उन्होंने अमृत की वर्षा की। ५८ लाख-लाख बन्दर जी उठे और आनन्द के साथ राम का जय-जयकार करने लगे। ५९ शिवजी ने हाथ जोड़कर कहा— "हे दयासागर राम, मैं आपके राज्याभिषेक के महान् उत्सव में वहाँ आऊँगा। ६०-६१ राजा दशरथ आपको देखते हुए खड़े हैं, जिन्हें आप में घना स्नेह है।" ६२ राम ने दशरथ को प्रणाम किया। लक्ष्मण और सीता को उनका दर्शन पाकर अपार हर्ष हुआ। ६३ दशरथ ने कहा— "मेरा मनोरथ पूरा हुआ। मन में जो संशय और चिन्ता थी वह सब दूर हुआ। ६४ राजा दशरथ सत्कार ग्रहण कर चले गये। वे राग और द्वेष की भावना से मुक्त हो गये। उन्हें ज्ञान मिल गया। ६५ तब विभीषण हाथ जोड़कर बोले— "हे राम, एक बिनती मेरी सुनिए। ६६ हे प्रभु, चलिये, आपका अपना घर है। एक-दो दिन रहियेगा। आपको अटका कौन सकता है। ६७ मेरे यहाँ सबों की इच्छा है कि स्नान करके वस्त्राभूषण लगाये आपकी मंगलमय छवि का दर्शन पावें।" ६८ राम ने कहा— "आपका घर मेरा अपना घर हुआ। आप-

अर भेल अपन अहँक सन भक्त । रघुवर कहलनि समय अशक्त ॥ ६९ ॥
अति सुकुमार भरत की हृयत । अवधि एको दिन जौँ बिति जयत ॥ ७० ॥
वल्कल वसन जटा धर माथ । हमरा बिनु शत्रुघ्न अनाथ ॥ ७१ ॥
तकइत हृयता हमरे बाट । अनतय न बनब छन सम्राट ॥ ७२ ॥
करब स्नान की तनि बिनु आज । जायब सत्वर तनिक समाज ॥ ७३ ॥
सुग्रीवादिक हो सत्कार । हम मानब अपने उपकार ॥ ७४ ॥
सुनल विभीषण रघुवर-उक्ति । अति प्रसन्न मन मानल युक्ति ॥ ७५ ॥
कनकाम्बर वररत्न बजार । निज निज रुचि पाहुन व्यवहार ॥ ७६ ॥
यूथप - गणक कयल सत्कार । मुदित विभीषण परमोदार ॥ ७७ ॥
मणि लय बानर सादर चाट । स्वाद न पाब पटक झट बाट ॥ ७८ ॥
कनकाम्बर नख वसनँ चीर । हसथि विनोद देखि रघुवीर ॥ ७९ ॥
पुष्पकरथ रवि-तेज विराज । लयल विभीषण रामक काज ॥ ८० ॥
तेहि रथ चढ़ला राम नरेश । अछि गन्तव्य शीघ्र निज देश ॥ ८१ ॥
सीता लक्ष्मण रथ चढ़लाह । मन उदास कपिगण पड़लाह ॥ ८२ ॥
सभ काँ राम वचन कहि वेश । भालु कीश काँ देल निदेश ॥ ८३ ॥

जैसे भक्त का आग्रह है। पर, ऐसे समय में यह सम्भव नहीं होगा। ६९ भरत बड़े सुकुमार हृदय के हैं; एक दिन भी यदि अवधि से अधिक हो जायेगा तो भरत का क्या हाल हो जायेगा ? ७० वल्कल पहने और जटा धारण किये हुए शत्रुघ्न मेरे बिना अशरण हो गया है। ७१ वह मेरी राह जोहता होगा। मैं और कहीं भी सम्राट् नहीं बनूँगा। ७२ उनके बिना मैं आज स्नान नहीं करूँगा। जल्द से जल्द उनके पास पहुँचूँगा। ७३ आप सुग्रीव आदि का आतिथ्य करें। मैं समझूंगा कि आपने मेरा ही सम्मान किया।" ७४ विभीषण राम की यह बात सुनकर प्रसन्न हुए। राम के तर्क को वे हृदय से मान गये। ७५ परम उदार विभीषण ने अतिथि के उपयोग के लिए उनकी अपनी-अपनी पसन्द के अनुरूप बाज़ार से जरीदार वस्त्र और अच्छे-अच्छे रत्न ले आये और आनन्दपूर्वक दलपतियों का स्वागत-सत्कार किया। ७६-७७ रत्नों को लेकर बन्दर आदर के साथ चाटते, कोई स्वाद न पाते और फिर माटी पर फेंक देते। ७८ जरीदार वस्त्र को दाँतों और नाखूनों से चीर-फाड़ देते। राम देख-देखकर कुतूहल से मुस्कुराते। ७९ विभीषण राम के वास्ते एक पुष्पक रथ ले आये जो सूरज के समान चमक रहा था। ८० राजा राम उस रथ पर सवार हुए। उन्हें जल्द अपने देश अयोध्यापुरी जाना है। ८१ सीता और लक्ष्मण भी रथ पर चढ़े। कपियों का मन उदास हो गया। ८२ सबों को राम ने उचित विदाई-संदेश कहा और भालुओं व बन्दरों को निर्देश दिया— ८३ "कपि और भालू लोग अब इच्छानुसार जा सकते हैं और

बानर भालु यथारुचि जाथु। स्वेच्छा बन उत्तम फल खाथु॥ ८४॥
कपि-पति अङ्गद नवलङ्केश। सभ काँ कहलनि चलइत देश॥ ८५॥
मित्र-काज अपने सभ कयल। ऋण उपकार सर्व्वदा धयल॥ ८६॥
आज्ञा दी तौँ चली सबेर। भेट घाट होयत कय बेर॥ ८७॥
किष्किन्धा लय सैन्य अपार। कपिपति जाउ सिद्ध उपकार॥ ८८॥
भक्त विभीषण करु गय राज। लङ्कापुर मे सहित समाज॥ ८९॥
बड़ अगुताइ कथा अछि ढेर। चलब अयोध्या होइछ अबेर॥ ९०॥
शुनि शुनि सभजन जोड़ल हाथ। मानल जाय देव रघुनाथ॥ ९१॥
देखितहुँ रामचन्द्र-अभिषेक। रहल लालसा मन मे एक॥ ९२॥
कौशल्या काँ करब प्रणाम। घुरि घुरि सभ जन अयबे गाम॥ ९३॥
प्रभु कह कथा देब नहि काटि। केओ न हमर भरत सौँ घाटि॥ ९४॥
चलु चलु पुष्पक होउ सबार। अतिशय कठिन प्रेम व्यवहार॥ ९५॥
लङ्केश्वर कपिवर हनुमान। वानर रथ पर चढ़ल प्रधान॥ ९६॥
राजराज-रथ अतिशय राज। चढ़ल सकल दल हलचल काज॥ ९७॥
आज्ञा देलनि विश्व-निवास। हंसयुक्त रथ उड़ल अकास॥ ९८॥

स्वच्छन्दतापूर्वक वन के उत्तम-उत्तम फल तोड़कर खा सकते हैं।" ८४ राम ने अयोध्या जाते समय सुग्रीव, अंगद और विभीषण से कहा— ८५ "आप लोगों ने अपने मित्र का काम सँभाला। इस उपकार का ऋण मैं सदा वहन करूँगा। ८६ अब आप लोगों की आज्ञा हो तो शीघ्र विदा होऊँ। फिर कई बार भेंट होगी। ८७ हे सुग्रीव, आप अपनी विशाल सेना लेकर किष्किन्धा जाइये। आप ने जो उपकार किया वह सफल हुआ। ८८ हे भक्त विभीषण, आप सपरिजन जाकर लंका-नगरी में राज कीजिए। ८९ बड़ी हड़बड़ी है; बातें बहुत हैं। अयोध्या जाना है। देर हो रही है।" सुनकर सबों ने हाथ जोड़कर कहा— "हे देव राम, हमारी एक बात मान लीजिए। ९०-९१ हमारे मन में एक लालसा रह गई है कि आपका राज्याभिषेक देखते। ९२ माता कौशल्या को प्रणाम करते और फिर अपने-अपने घर आते।" ९३ राम ने कहा— "आप लोगों का यह अनुरोध मैं टाल नहीं सकता। आप लोगों में कोई भी मेरे लिए भरत से कम नहीं हैं। ९४ चलते चलिये। सभी पुष्पक रथ पर सवार होइए। प्रेम का बरताव बड़ा कठिन होता है।" ९५ कुबेर का पुष्पक रथ अतिशय शोभा पा रहा था। हलचल के साथ सारा दल उस रथ पर चढ़ गया। ९६-९७ राम ने आज्ञा दी और वह हंसवाही रथ आकाश-मार्ग से उड़ चला। ९८ उस पर राम की शोभा

रघुनन्दन वर छवि काँ पाब। शोभा जेहन विरञ्चिक भाब ॥ ९९ ॥
दिनकर-बिम्ब सुछवि काँ धयल। धनपति-रथ नभ-पथ गति कयल ॥१००॥

॥ सोरठा ॥

जय जय श्याम-शरीर, जय जय पङ्कज-नयन प्रभु ॥ १०१ ॥
जय सानुज रघुवीर, जय सीतापति अमर कह ॥ १०२ ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे लङ्काकाण्डे त्रयोदशोऽध्यायः ॥

॥ अथ चतुर्दशोऽध्यायः ॥

॥ जयकरी छन्द ॥

क्रम क्रम सकल देखाबथि धाम। रथ पर सौँ सीता काँ राम ॥ १ ॥
गिरि त्रिकूट लङ्का रण-भूमि। काक गृद्ध मड़ड़ाइछ घूमि ॥ २ ॥
राक्षस बानर काँ एत मारि। मुइला एतहि दशानन हारि ॥ ३ ॥
कुम्भकर्ण घननादक झुण्ड। बहुतक एतहि खसल छल मुण्ड ॥ ४ ॥
ई बाँधल भेल सागर-सेतु। बानर-निकर उतरबा हेतु ॥ ५ ॥
परम पबित्र पाप सभ हरथि। सेतुबन्ध दर्शन जे करथि ॥ ६ ॥
हम रामेश्वर स्थापन कयल। शरण बिभीषण एहि थल धयल ॥ ७ ॥

वैसी ही थी जैसे ऐरावत पर इन्द्र की। ९९ जब कुबेर का रथ आकाश-मार्ग में चला तब उसकी शोभा सूरज-जैसी हो गई। १०० देवता लोग कहने लगे— "जय हो, श्यामल शरीर की जय हो, कमलनयन राम की जय हो, लक्ष्मण-सहित राम की जय हो, सीतापति राम की जय हो।" १०१-१०२

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में लंकाकाण्ड का तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥

चौदहवाँ अध्याय

पुष्पक रथ से राम का सदल-बल अयोध्या पहुँचना

ज्यों-ज्यों रथ बढ़ता जाता था, राम सीता को पुराने स्थान दिखाते जाते थे— १ "देखो, त्रिकूट पर्वत पर लंका का यह युद्धक्षेत्र है जहाँ कौवे और गीध जहाँ-तहाँ चक्कर काट रहे हैं। २ यहीं राक्षसों और कपियों के बीच लड़ाई हुई थी। यहीं रावण हारकर मरा। ३ कुम्भकर्ण, मेघनाद आदि बहुत-से वीरों के सिर यहीं गिरे थे। ४ यह कपियों के उतरने के लिए समुद्र में बनाया गया बाँध है। ५ जो इस सेतुबन्ध का दर्शन करते हैं वे अतिशय पवित्र हो जाते हैं और पापों से मुक्त होते हैं। ६ यहाँ मैंने रामेश्वर की स्थापना की। यहाँ विभीषण शरणागत हुए थे।" ७ जानकी ने और

दर्शन कयल जानकी जाय। जय शिव रटथि सैन्य-समुदाय॥ ८॥
किष्किन्धा ई कपिपति - ग्राम। कहि किछु काल कयल विश्राम॥ ९॥
तारादिक सुग्रीवक दार। चढ़ली पुन रथ उड़ल उदार॥ १०॥
सीता - प्रिय - कारण व्यवहार। करथि रघूत्तम विश्वाधार॥ ११॥
मुइला बालि बली एहिठाम। ऋष्यमूक गिरि हिनकर नाम॥ १२॥
पञ्चवटी अयलहुँ से ठाम। राक्षस सङ्ग जतय संग्राम॥ १३॥
भेला जे जे समर समक्ष। मारल गेला से से रक्ष॥ १४॥
मुनि सुतीक्ष्ण मुनि तथा अगस्त्य। आश्रम दूनू परम प्रशस्त॥ १५॥
तापसगण पड़इत छथि दृष्टि। धन्य धन्य थिक हिनकर सृष्टि॥ १६॥
चित्रकूट गिरि होइछ प्रकाश। बारह वर्ष जतय छल बास॥ १७॥
होउ प्रसन्न शरण हम धयल। भरत बहुत हठ एतहि कयल॥ १८॥
भारद्वाजाश्रम ई थीक। यमुनातट मे लगइछ नीक॥ १९॥
ई थिकि गङ्गा करू प्रणाम। परम पवित्रा कहलनि राम॥ २०॥
सरयू निकट अयोध्या धाम। थिक कर्त्तव्य नगर-विश्राम॥ २१॥

॥ सोरठा ॥

भरद्वाज-मुनि-धाम, अटकाओल कौवेर रथ॥ २२॥
अभिनत कयल प्रणाम, मुनि हर्षित पुछलनि कुशल॥ २३॥

सैनिकों ने वहाँ जाकर रामेश्वर का दर्शन किया और कपियों ने शिव की जयध्वनि की। ८ राम कहने लगे— "यह सुग्रीव की नगरी किष्किन्धा है।" यह कहकर कुछ देर वहाँ विश्राम किया। ९ सुग्रीव की तारा आदि स्त्रियाँ उस रथ पर चढ़ीं। फिर रथ स्वच्छन्द उड़ने लगा। १० विश्व के आधार राम सीता को प्रसन्न करने के लिए ये लीलाएँ करते। ११ फिर राम कहने लगे— "बलवान् वाली यहाँ मरे थे। इस पर्वत का नाम ऋष्यमूक है। १२ अब हम पंचवटी आये। यह वही स्थान है जहाँ राक्षसों से लड़ाई शुरू हुई। १३ यहाँ जो-जो राक्षस लड़ाई में सामने आये वे सभी मारे गये। १४ यह सुतीक्ष्ण मुनि का और यह अगस्त्य मुनि का आश्रम है। ये दोनों आश्रम परम श्रेष्ठ हैं। १५ देखो, ये तपस्वी लोग दिखाई दे रहे हैं। इन लोगों की दुनिया धन्य है, धन्य है। १६ वह चित्रकूट पर्वत दिखाई दे रहा है जहाँ हम बारह बरस रहे। १७ यह यमुना नदी के किनारे ऋषि भरद्वाज का आश्रम है। यह कैसा सुहावना लगता है? १८-१९ यह गंगा नदी हैं। इन्हें प्रणाम करो। यह परम पवित्र हैं।" —राम ने कहा— २० "यह सरयू नदी के पास अयोध्यापुरी है। यहाँ हमें नगर-विश्राम करना उचित है।" २१ यह कहकर राम ने भरद्वाज मुनि के आश्रम में कुबेर के पुष्पक रथ को रोका। २२ झुककर मुनि को प्रणाम किया। हर्ष के साथ मुनि भरद्वाज ने

पूर्ण चतुर्दश वर्ष, तिथि भल आइलि पञ्चमी ॥ २४ ॥
मन मे बाढ़ल हर्ष, वार्त्ता पुर पहिलहि उचित ॥ २५ ॥
जिबइत छथि सभ माय, भरद्वाज मुनि शुनल अछि ॥ २६ ॥
कुशल क्षेम दुहु भाय, पुरी सुभिक्षा अछि कहू ॥ २७ ॥
अति प्रसन्न सभ लोक, भरद्वाज हर्षित कहल ॥ २८ ॥
अपनेँक केवल शोक, आबि गेलहुँ देखबे करब ॥ २९ ॥
कन्द मूल फल खाथि, माथ जटा वल्कल वसन ॥ ३० ॥
अनतय कतहु न जाथि, भरत खरौं सेवा करथि ॥ ३१ ॥

॥ चौपाइ ॥

तप-प्रताप अपनेक पद ध्यान। रामचन्द्र हमरा सभ ज्ञान ॥ ३२ ॥
जे जे चरित कयल प्रभु जाय। आज्ञा पायब देब शुनाय ॥ ३३ ॥
नहि अछि आदि मध्य नहि अन्त। परब्रह्म छी देव अनन्त ॥ ३४ ॥
अपनेक नाभिकमल - उत्पन्न। ब्रह्मा करथि सृष्टि सम्पन्न ॥ ३५ ॥
निर्गुण ब्रह्म सगुण अवतार। हरण करैछी पृथिवी-भार ॥ ३६ ॥
करु पवित्र प्रभु हमरो गेह। सेवक-विषय विशेष सिनेह ॥ ३७ ॥

कुशल-समाचार पूछा और कहा— २३ "चौदह बरस की अवधि पूरी हो गई। पंचमी शुभ तिथि आई। २४ हर्ष की लहर छा गई। नगर में पहले ही खबर कर देना उचित होगा।" २५ राम ने पूछा— "हे भरद्वाज मुनि, कृपया बताइए कि क्या हमारी सभी माताएँ जीती हैं? क्या भरत और शत्रुघ्न दोनों भाई कुशल से हैं?" २६-२७ भरद्वाज ने मुस्कुराते हुए कहा— "सभी लोग परम प्रसन्न हैं। २८ केवल आपके बारे में चिन्ता थी। अब तो आप आ गये हैं, स्वयं देखेंगे ही। २९ भरत केवल कन्द, मूल और फल खाते हैं, माथे में जटा और तन में वल्कल धारण किये हुए हैं। ३० अन्यत्र कहीं नहीं निकलते। निरन्तर आपके खड़ाऊँ की सेवा करते रहते हैं। ३१ हे रामचंद्र, आपके चरणों में ध्यान लगाकर की गई तपस्या के प्रभाव से मुझे सभी बातें मालूम हैं। ३२ आपने जो-जो चरित किया है, यदि आज्ञा हो तो मैं सब कुछ सुना दूँ। ३३ आपका न आदि है और न अन्त। आप अनंत परब्रह्म हैं। ३४ आप ही के नाभिकमल से उत्पन्न ब्रह्मा सारी दुनिया की सृष्टि करते हैं। ३५ आप निर्गुण ब्रह्म होते हुए भी सद्गुण रूप में अवतार लेते हैं और पृथ्वी का भार दूर करते हैं। ३६ हे प्रभु, आप मेरे घर को भी पधारकर पवित्र कीजिए। आपको अपने सेवकों पर विशेष अनुग्रह रहता है।" ३७ राम ने भरद्वाज के अनुरोध को स्वीकार किया। मुनि ने सुन्दर भोजन की

अङ्गीकार कयल भगवान। अति आतिथ्य सुभोज्य विधान ॥ ३८ ॥
भेटय तीर्थ तहाँ तहाँ जाथि। तीर्थ-कृत्य-विधि तहाँ नहाथि ॥ ३९ ॥

॥ बरवा छन्द ॥

कहलनि श्रीरघुनन्दन, शुनु हनुमान ॥ ४० ॥
अयलहुँ से वार्त्ता पड़, भरतक कान ॥ ४१ ॥

॥ प्रज्झटिति छन्द ॥

पुर झटिति पवन-सुत अहाँ जाउ। सभ कुशलक्षेम जनकाँ शुनाउ ॥ ४२ ॥
गृह शृङ्गवेरपुर हमर मित्र। तनिकहु कहि देबक सभ चरित्र ॥ ४३ ॥
छथि नन्दिग्राम मे भरत भाय। आगमन कुशल तनिकाँ शुनाय ॥ ४४ ॥
पुन हमर निकट अहुँ शीघ्र आउ। कहुँ किछु विलम्ब नहि अहुँ लगाउ ॥ ४५ ॥
मानुष - तन धयलय हनूमान। चलला उड़ि नभ जनु गरुत्मान ॥ ४६ ॥
से शृङ्गवेरपुर प्रथम जाय। अयला रघुनन्दन से शुनाय ॥ ४७ ॥
चौदह वर्षोत्तर अहँक मित्र। सभटा कहि देलनि तनि चरित्र ॥ ४८ ॥
अतिशय मन हर्षित गुह निषाद। छुटि गेल सकल संशय-विषाद ॥ ४९ ॥

॥ चौपाइ ॥

कहि हनुमान चलल उड़ि गगन। रामतीर्थ सरयू देखि मगन ॥ ५० ॥
सरयू लाँघि गेला तहिठाम। भरत छला जहाँ नन्दिग्राम ॥ ५१ ॥

तैयारी करके खूब आतिथ्य किया। ३८ आश्रम के पास जहाँ-जहाँ तीर्थ थे, वहाँ-वहाँ जाकर राम ने तार्थ में अनुपालनीय विधि से स्नान किया। ३९ तब राम ने कहा— "हे हनुमान, सुनिये। ४० हम लोग आ गये, इसकी खबर भरत का मिलनी चाहिए। ४१ हे हनुमान, आप जल्द अयोध्यापुरी जाइए और वहाँ लोगों को सारा कुशल-समाचार सुनाइए। ४२ शृंगवेरपुर के निवासी, जो मेरे मित्र हैं, उन्हें भी सारा समाचार सुनाना है। ४३ नन्दिग्राम में मेरा भाई भरत रहता है, उसे मेरे आने का समाचार सुनाकर जल्द ही मेरे पास लौट आइये, और कहीं भी तनिक भी देर मत लगाइये।" ४४-४५ यह सुनकर हनुमान मनुष्य का रूप धारण करके आकाश में गरुड़ के समान उड़ चले। ४६ पहले वे शृंगवेरपुर गये। वहाँ राम के मित्र गुह को बताया— "चौदह वर्षों के बाद आपके मित्र राम आ गये।" फिर राम का सारा इतिवृत्त कह सुनाया। ४७-४८ निषादराज गुह का मन यह सुनकर अतिशय आनन्दित हो उठा। उनका सारा अदेशा दूर हो गया। ४९ गुह को हाल बताकर हनुमान फिर आकाश में उड़े। आगे सरयू नदी में रामतीर्थ देख उनका मन आनदमग्न हो गया। ५० सरयू को पार करके उस नन्दिग्राम पहुँचे जहाँ भरत थे। ५१ उन्हें राम के चरणों में असीम प्रेम था। नंदिग्राम

रामचरण - पङ्कज अनुराग । डेढ़ कोश निजपुर सौं लाग ॥ ५२ ॥
अति कृश देखल भरत-शरीर । नहि सुखाय पल नयनक नीर ॥ ५३ ॥
जटामुकुट बलकल भल चीर । दीन मीन संक्षीण सुनीर ॥ ५४ ॥
कन्द मूल फल भक्ष्य-विधान । रामचन्द्र-पद केवल ध्यान ॥ ५५ ॥
पुर-प्रधान काँ शोक अभङ्ग । बसन पहिर से गेरुक रङ्ग ॥ ५६ ॥
चौदहवर्ष जानि अवसान । पलपल हर्ष विषाद समान ॥ ५७ ॥
धर्ममूर्ति जनु देखल ठाढ़ । हर्ष हनूमानक मन बाढ़ ॥ ५८ ॥
कहलनि बिनत हाथ दुनु जोड़ि । चिन्ता भरत अहाँ दिय छ ड़ि ॥ ५९ ॥
त्यागु त्यागु नज हृदय - महाधि । राम - बियोगज - शोक - समाधि ॥ ६० ॥
गाछ सुखायल लता समूल । भेल सपल्लव नव फल फूल ॥ ६१ ॥
नाच मयूर पूरस्वर गाब । षड्ज सु - मूर्तिमान बनि आब ॥ ६२ ॥
कोकिल-कुल कल करइछ गान । स्वर पञ्चम शुनि पड़इछ कान ॥ ६३ ॥
केकयि-नन्दन करु अनुमान । अयला रामचन्द्र भगवान ॥ ६४ ॥
राजराज रथपर रघुराज । राजा बनल क्षबै छथि आज ॥ ६५ ॥

अयोध्यापुरी से डढ़ कोस दूर था । ५२ हनुमान ने देखा कि भरत का शरीर एकदम दुबला-पतला हो गया है । उनकी आँखों में आँसू पल भर भी सूखते नहीं । ५३ जटाओं को सिमटकर मुकुट बनाया हुआ है । सुन्दर बल्कल के वस्त्र पहने हैं । उनकी हालत वैसी है जसे पानी घट जाने पर मछली की होती है । ५४ वे केवल कन्द, मूल और फल खाकर रहते थे और केवल रामचन्द्र के चरणों में ध्यान लगा रहता था । ५५ नगर के प्रधान को भारी शोक था । वे गेरुआ वस्त्र पहने थे । ५६ चौदह बरस की अव धि का अन्त देखकर भरत के चित्त मे पल-पल में कभी हर्ष और कभी विषाद होता था । ५७ हनुमान ने भरत को खड़े देखा जैसे मूर्तिमान धर्म खड़ा हो । हनुमान को हर्ष का ठिकाना न रहा । ५८ उन्होने दोनों हाथ जोड़कर कहा— "हे भरत, अब आप चिन्ता त्यागिये । ५९ अपने हृदय की भारी व्यथा को हटाइये और राम के बिछोह से होनेवाले दुःख में लीन रहना छोड़िये । ६० जो लता जड़-सहित सूख चुकी थी उसमें नये-नये पत्ते, फूल और फल लग गये । ६१ मोर नाच रहे हैं और पूरे स्वर में गा रहे हैं, लगता था जैसे षड्ज स्वर मूर्तिमान बनकर सामने आ गया हो । ६२ कोयल कलरव कर रही हैं । उनका पंचम स्वर सुनाई दे रहा है । ६३ हे भरत, इन लक्षणों से आप अनुमान लगाइए । भगवान रामचन्द्र आ गये हैं । ६४ राम आज कुबेर के पुष्पक रथ पर राजा बने आ रहे हैं । ६५ उन्होंने लड़ाई में रावण को मार डाला । उन्होंने ऐसा

रावण कौं मारल संग्राम। कर्म्म अमानुष कयलनि राम ॥ ६६ ॥
क्रम क्रम चरित कहल सभ गोट। नहि कर्त्तव्य भरत मन छोट ॥ ६७ ॥
सीता लक्ष्मण चित्त प्रसन्न। प्रभु सङ्ग मित्र सुगुण-सम्पन्न ॥ ६८ ॥
हर्षक कथा शुनाओल कान। करु उद्योग मिलन सन्मान ॥ ६९ ॥

॥ आर्या दोहा ॥

॥ जाज तिरहुति ॥

पवन-तनय-मुखवाणी, शुनल भरत हित कान ॥ ७० ॥
सकल-कला-कल्याणी, ब्रह्मानन्द-समान ॥ ७१ ॥
फरकै छल अछि दहिना, भुज ओ दहिना आँखि ॥ ७२ ॥
सत्य-वचन प्रभु तहिना, मरइत लेलनि राखि ॥ ७३ ॥

॥ मिथिला सङ्गीतानुसारेण कोडार छन्दः ॥

अयला भ्राता नरेश ॥ ७४ ॥
केकयी-कुमंत्रणा सौं वनी मुनिबेश ॥ ७५ ॥
बिष्णु को बिरञ्चि अहाँ को स्वयं महेश ॥ ७६ ॥
मानव कि कारुणिक लयलहुँ सन्देश ॥ ७७ ॥
हर्षकथा बराबरि वित्त नै विशेष ॥ ७८ ॥
रघुनाथ-सभ्य अहाँ लोभक न लेश ॥ ७९ ॥

करतब दिखाया जो मनुष्य नहीं कर सकता।" ६६ इस प्रकार क्रमशः राम के सारे चरित्र का वर्णन कर गये। फिर बोले— "हे भरत, अब आप अपना चित्त ओछा मत कीजिए। ६७ सीता और लक्ष्मण दोनों हृदय से खुश हैं। राम के साथ उनके भले मित्र भी हैं। ६८ अब आदर के साथ मिलन की तैयारी कीजिए।" इस प्रकार हनुमान ने भरत को खुशखबरी सुनाई। ६९ भरत ने हनुमान के मुँह से यह हर्ष की वार्ता सुनी। ७० उन्हें सुनकर वैसा आनन्द हुआ जैसा ब्रह्म के साक्षात्कार से होता है। वे बोले— ७१ "मेरी दाहिनी बाँह और दाहिनी आँखें फड़क रही थीं। ७२ मेरे प्रभु राम बड़े सत्यव्रती हैं। उन्होंने मरते हुए मुझे बचा लिया। ७३ मेरे भाई राजा राम आ गये। ७४ वे कैकेयी के कुविचार से मुनि का वेष बनाकर वनवासी हो गये थे। ७५ आप कौन हैं ? आप साक्षात् ब्रह्मा या विष्णु हैं या महेश हैं, या आप कोई परम कारुणिक मानव हैं जो यह सन्देश लेकर आये हैं ? ७६-७७ आपने जितने बड़े हर्ष की बात सुनाई है उसके अनुरूप इनाम देने के लिए मेरे धन-सम्पत्ति नहीं है। ७८ आप राम की मंडली के हैं, इसलिए आपको नाम मात्र भी लोभ नहीं होगा। ७९ आइये, मेरे साथ इस खुशी

आउ मिलि पाउ सुख कहू कि निवेश ॥ ८० ॥
धन्य धन्य आज हम छूटल कलेश ॥ ८१ ॥

॥ दोहा ॥

ग्राम देब शय गोट हम, शय हजार देब गाय ॥ ८२ ॥
मुग्धा षोड़श कन्यका, मरयित लेल जिआय ॥ ८३ ॥

॥ चौपाइ ॥

भरत एक मन करु जनु शोक । कुशलक्षेम अबइत छथि लोक ॥ ८४ ॥
जनिक हेतु चिन्ता बिस्तारि । अयला से रण रावण मारि ॥ ८५ ॥
अपनेँक कुशल बुझक छल काज । आगु पठाओल श्रीरघुराज ॥ ८६ ॥
दारुण शोक करू परित्याग । जागल भरत इष्टजन-भाग ॥ ८७ ॥
देखब भाय मनोरथ पूर्त । किछु विलम्ब नहि एक मुहूर्त ॥ ८८ ॥
लक्ष्मण सङ्ग राम कृत-कार्य्य । आबि गेला अछि कुशल-समार्य्य ॥ ८९ ॥
हरषनोर - सौं गेला नहाय । रघुनन्दन सन अयला भाय ॥ ९० ॥
खसि पड़ला महि हर्ष अपार । अति आनन्द कि तन सम्भार ॥ ९१ ॥
मारुत-सुत काँ हृदय लगाब । उजड़ल नगर बसाओल आब ॥ ९२ ॥
बहुत वर्ष शोचहिँ गेल बीति । बार्त्ता आइ प्राप्ति भल रीति ॥ ९३ ॥
जौँ जिब रह तौँ सहज स्वभाव । शय वर्षहु पर आनन्द आब ॥ ९४ ॥

में शरीक होइये। कहिये, आपके लिए क्या किया जाय ? ८० आज मैं धन्य, धन्य हूँ। मेरे सारे दुःख-दर्द दूर हो गये। ८१ मैं आपको सौ गाँव दूँगा। सौ हज़ार गायें दूँगा; ८२ सौलह नवयौवना कन्याएँ दूँगा। आपने मरते हुए मुझे जिला लिया।" ८३ हनुमान ने कहा— "हे भरत, आप मन में कोई शोक मत कीजिए। आपके वे लोग सकुशल आ रहे हैं। ८४ जिनके लिए आप इतनी बड़ी चिन्ता करते हैं वे लड़ाई में रावण को मारकर आ गये हैं। ८५ आप ही के कुशल जानने के वास्ते राम ने मुझे आगे भेजा है। ८६ अब उस दारुण शोक को त्यागिये। हे भरत, अब आपके अपने लोगों का भाग्य जाग उठा। ८७ आपकी कामना पूरी होगी। आप अपने भाई राम को देखियेगा। इसमें अब कुछ देर नहीं है, एक घड़ी भी नहीं। ८८ अपने भाई लक्ष्मण और पत्नी सीता के साथ राम सारे कर्तव्यों को पूरा कर सकुशल वापस आ गये हैं।" ८९ राम जैसे भाई आ गये, यह जानकर भरत आनन्द के आँसू से नहा गये। ९० इतना हर्ष हुआ कि उछलकर धरती पर गिर पड़े। आनन्द-विह्वल हो जाने से अपने शरीर का भी होश न रहा। ९१ हनुमान को छाती से लगाते बोले— "आपने आज मेरे उजड़े हुए नगर को फिर से बसा लिया। ९२ शोक में ही बहुत वर्ष बीत गये। आज शुभ वार्ता प्राप्त हुई। ९३ यदि जियें तो स्वाभाविक है कि सौ साल के बाद भी

कहु बानर रघुबर सतसङ्ग । कोन गत बाढ़ल प्रीति अभङ्ग ॥ ९५ ॥
क्रम क्रम सकल चरित हनुमान । कहल मगन मन शेष समान ॥ ९६ ॥
भरत कहल शत्रुघन बजाय । अयला अरि जिति बड़का भाय ॥ ९७ ॥
देबी देव जते छथि गाम । तनिक समर्च्चन हो तहिठाम ॥ ९८ ॥
बन्दी मागध प्रभृति जे लोक । आबथि शीघ्र रोक नहि टोक ॥ ९९ ॥
गणिकागण काँ शीघ्र बजाब । मङ्गलदायिनि गाइनि आब ॥ १०० ॥

॥ गीत तिरहुति ॥

भरत निकट मे एक जन, बड़ परसन ॥ १०१ ॥
कहलनि शुभ सन्देश, आब प्रभु यहिखन ॥ १०२ ॥
जनिक बियोग सकल जन, अति अनमन ॥ १०३ ॥
देखब जनक-दुलारि, राम ओ लछमन ॥ १०४ ॥
हर्ष-नीर दृग बहयित, ई कहयित ॥ १०५ ॥
बीतल चौदह वर्ष, बिषम दुख सहयित ॥ १०६ ॥
गीत सुन्दरी गाबथि, हरि आबथि ॥ १०७ ॥
रामचन्द्र घनश्याम, चातकी पाबथि ॥ १०८ ॥

॥ जयकरी छन्द ॥

हाथी घोड़ा रथ पथ लागु । रानिक चलय सबारी आगु ॥ १०९ ॥
चलल सकल पुरजन अगुआय । देखब राम इ नयन जुड़ाय ॥ ११० ॥

आनन्द का दिन अवश्य आयेगा । ९४ हे हनुमान, कहिये राम के वानरों से संगत किस तरह हुई और अटूट प्रेम कैसे बढ़ा ?" ९५ हनुमान ने क्रमशः सारा वृत्तान्त अनुराग के साथ सुनाया, जैसे शेषनाग सुना रहे हों । ९६ भरत ने शत्रुघ्न को बुलाकर कहा— "बड़े भाई राम शत्रु को जीतकर आ गये हैं । ९७ गाँव भर में जितने देवी-देवता हैं, सबों की पूजा अपने-अपने स्थान में कराई जाय । ९८ बन्दी, मागध, चारण आदि जितने भी लोग हैं सबों को आज बेरोक-टोक आने दिया जाय । ९९ नाचनेवाली वेश्याओं को तुरत बुलाया जाय । मंगलगीत गानेवाली ललनायें आवें ।" १०० एक आदमी ने बड़ी खुशी के साथ भरत के पास आकर शुभ संवाद सुनाया कि राम अभी आ रहे हैं । १०१-१०२ जिनके बिछोह से सभी लोग व्याकुल थे उन राम, लक्ष्मण और जानकी को अभी देखेंगे । १०३-१०४ घोर वेदना सहते हुए चौदह बरस बीत गये —ऐसा कहते हुए उसकी आँखों से आनन्द के आँसू बहने लगे । १०५-१०६ ललनाएँ गीत गाती हैं— भगवान् राम आ रहे हैं । आज चातकियाँ राम रूपी श्याम घन का दर्शन पायेंगी । १०७-१०८ हाथी, घोड़े, रथ सड़क पर चल पड़े । रानियों की सवारियाँ आगे-आगे चलीं । १०९ नगर के लोग बढ़-बढ़कर चल पड़े ताकि जल्द से जल्द राम को

ब्राह्मण वृद्ध कहथि सभ लोक। आज छुटत मानस जत शोक॥ १११॥
मुक्तारत्नमयोज्वल गाम। तोरण विविध पताका धाम॥ ११२॥
घर बाहर छवि तेहन बनाब। वासव-मानस विस्मय आब॥ ११३॥
वृन्दो वृन्द चललो पुर-नारि। रम्भा रतिक गर्व्व देल टारि॥ ११४॥
लाय हजार घोड़ा रथ सङ्ग। एक अयुत तत मद मातङ्ग॥ ११५॥
कनक-अलङ्कृत रथ पथ राज। स्वागत रामचन्द्र महराज॥ ११६॥
शिबिका चढ़लि चललि सभ माय। बाल तरुण कि रहय पछुआय॥ ११७॥
रामक खरौं भरत धय माँथ। हाथ जोड़ि कह भेटता नाथ॥ ११८॥
पयरहि चलल सङ्ग लघु भाय। गगन निहारथि दृष्टि उठाय॥ ११९॥

॥ सोरठा ॥

आब कि अछि कहबाक, भुज उठाय हनुमान कह॥ १२०॥
सभ जन ऊपर ताक, रथ अबइछ जनु चन्द्ररवि॥ १२१॥
सीता लक्ष्मण राम, ओ सुग्रीव कपीश छथि॥ १२२॥
भक्त बिभीषण भास, मंत्री मान्य अनेक जन॥ १२३॥

॥ मिथिला-सङ्गीतानुसारेण कामोद छन्दः॥

मन बड़ हरष बरष दृग-बारि
सीता राम लक्ष्मण बदन निहारि॥ १२४॥

देख नयन तृप्त हों। ११० वृद्ध ब्राह्मण लोग कहते— आज हमारे मन के सारे दुःख दूर हो जाएँगे। १११ गाँव लटकाये गये मोतियों और रत्नों से जगमग हो गये। तरह-तरह की ध्वजाओं से बन्दनवार और घर सजाये गये। ११२ घर और बाहर हर जगह ऐसी सजावट की गई कि देखकर इन्द्र के मन में भी अचंभा लगता। ११३ झुण्ड के झुण्ड नगर की ललनाएँ चलीं। ये अपनी सुन्दरता से रम्भा और रति का भी गुमान तोड़ती थीं। ११४ साथ में एक लाख घोड़े और रथ चले। दश लाख मतवाले हाथी चले। ११५ राजा रामचन्द्र की अगवानी करके लाने के लिए सोने से मढ़ा रथ सड़क पर चला। ११६ डोलियों पर चढ़कर सभी माताएँ चलीं। बच्चे और जवान क्यों पीछे रहते? ११७ राम के खड़ाऊँ को माथे पर रखकर भरत कहते— "आज प्रभु मिलेंगे।" ११८ छोटे भाई लक्ष्मण पैदल ही चले। वे आनन्दमग्न हो नज़र उठा-उठाकर देखते थे। ११९ बाँह उठाकर हनुमान ने कहा— अब क्या कहना है! सभी लोग आकाश की ओर देखने लगे— जैसे चाँद या सूरज हो उसी तरह आकाश-मार्ग से रथ आ रहा था। १२०-१२१ उस रथ पर राम, लक्ष्मण, सीता, कपिराज सुग्रीव और भक्त विभीषण हैं; और भी अनेक मान्य मंत्री हैं। १२२-१२३ मन में बड़ा हर्ष है। सीता, राम और लक्ष्मण के मुँह देखकर आँखों से आनन्द के आँसू बह रहे हैं। १२४ वे चौदह बरस

गेला वनवास ओ वरष दश चारि
अयला अवधि - दिन रावण कें मारि ॥ १२५ ॥
आनन्द - सुधासगाह सब नरनारि
मनोरथ - द्रुम कुसुमित सभ डारि ॥ १२६ ॥
त्रिदश आनन्दमग्न नररूप धारि
मर्त्य देवलोकक टुटल जनु आरि ॥ १२७ ॥

॥ नयकरी छन्द ॥

देखि कयल जन हर्षक सोर । अयला राम सुदिन भेल मोर ॥ १२८ ॥
लक्ष्मण सीता रथपर राज । भल भल हित जन तनिक समाज ॥१२९॥
वृद्ध बाल बनितागण भाष । देखल राम पुरल अभिलाष ॥ १३० ॥
उतरि बाजि गज रथ असवार । रामचन्द्र दिश गगन निहार ॥ १३१ ॥
भरत ऊर्द्ध्वमुख जोड़ल हाथ । सानुज सजन देखल रघुनाथ ॥ १३२ ॥
स्यन्दनस्थ रघुनन्दन केहन । गिरि सुमेरु पर दिनकर जेहन ॥ १३३ ॥
वन्दन करथि भरत अनुराग । बद्धाञ्जलि दृगपल नहि लाग ॥ १३४ ॥
रथ लय चलु एहि महि निज ठाम । अयलहुँ गाम कहल प्रभु राम ॥ १३५ ॥
भरत कयल वन्दन कय बेरि । पुष्पक महिपर रघुबर हेरि ॥ १३६ ॥
भरत उठाय अङ्क आरोप । चिर-वियोग दुःखक भेल लोप ॥ १३७ ॥

वनवास के लिए गये। अवधि बीतने के दिन रावण को मारकर लौटे। १२५ पुरुष और स्त्री सभी लोग आनन्द के अमृत-सिन्धु में गोते लगा रहे हैं। उनके मनोरथ का पेड़ डाल-डाल पर खिल उठा है। १२६ मनुष्य का रूप धारण कर देवता लोग भी इस आनन्द में शामिल हो गये हैं, मानो देवलोक और मर्त्यलोक के बीच दीवार टूट गई। १२७ देखते ही लोग हर्षित हो शोर मचाने लगे— "राम आ गये! मेरा भाग्योदय हुआ! १२८ लक्ष्मण और सीता रथ पर बिराजते हैं। उनके साथ में उनके भले-भले इष्ट-मित्र हैं।" १२९ बूढ़े, बच्चे और स्त्रियाँ सभी बोलने लगे— "राम को देखा। मेरा मनोरथ पूरा हुआ।" १३० सभी लोग घोड़ों, हाथियों और रथों से उतर-उतरकर आकाश में आते राम की ओर निहारने लगे। १३१ भरत ने हाथ जोड़े मुँह उठाकर भाई और परिजन-सहित राम को देखा। १३२ रथ पर कैसे लगते हैं जैसे सुमेरु पर्वत पर सूर्य। १३३ भरत प्रेम में पगे वन्दना कर रहे हैं; दोनों हाथ जोड़े हैं और पलक नहीं गिराते हैं। १३४ तब राम ने अपने रथ से कहा— "हे रथ, अब मुझे अपने स्थान की इस धरती पर उतारिये। मैं अपना नगर आ गया।" १३५ भरत ने पुष्पक रथ को धरती पर उतरे और उस पर राम को आसीन देख बार-बार राम की वन्दना की। १३६ राम ने भरत को उठाकर गोद में ले लिया। बहुत दिनों के बिछोह का दुःख जाता रहा। १३७

लक्ष्मण सौँ मिलि मिलिकेँ भरत। कहथि धन्य प्रभु-सेवा-निरत ॥ १३८ ॥
बंदेहीक उचारल नाम। चरण-सरोरुह करथि प्रणाम ॥ १३९ ॥
भरतक भक्ति-दशा सभ देख। धर्म्म देहधारी मन लेख ॥ १४० ॥
हनूमान जन देथि चिन्हाय। सानुज भरत मिलथि तत जाय ॥ १४१ ॥
कपिपति जाम्बवान युवराज। मैन्द द्विविद ओ ऋषभ समाज ॥ १४२ ॥
मुदित विभीषण सौँ मिललाह। क्रम क्रम जे जन मुख्य छलाह ॥ १४३ ॥

॥ रूपमाला छन्द ॥

नल गवाक्ष सुषेण आदिक गन्धमादन नाम ॥ १४४ ॥
शरभ पनश मनुष्य-तन सभ बनल छल तहि ठाम ॥ १४५ ॥
सकल जन सौँ भरत मिलला कुशल पुछलनि सर्व ॥ १४६ ॥
सकल जन मिलि कर प्रशंसा भ्रातृ-भक्ति अखर्व्व ॥ १४७ ॥
कहल मिलि सुग्रीव केँ पुन अहाँ मुख्य सहाय ॥ १४८ ॥
राम रण दशवदन जीतल अहाँ पाँचम भाय ॥ १४९ ॥
तखन पुन शत्रुघ्न रामक चरण कयल प्रणाम ॥ १५० ॥
लक्ष्मणक सीताक वन्दन कयल से तहिठाम ॥ १५१ ॥

॥ चौपाइ ॥

शोक-विकल जननी काँ जानि। राम प्रणाम कयल सन्मानि ॥ १५२ ॥
कैकयि तथा सुमित्रा माय। लगला गोड़ सभहि काँ न्याय ॥ १५३ ॥

भरत लक्ष्मण से बार-बार मिले और उन्हें कहने लगे— "निरन्तर राम की सेवा में लगे आप धन्य हैं। १३८ फिर जानकी का नाम लेकर उनके चरण-कमलों में प्रणाम किया। १३९ भक्तिवश भरत की जो दशा थी उसे देख सबों को ऐसा लगा जैसे शरीर धारण कर साक्षात् धर्म विराजमान हो। १४० हनुमान राम के सेवकों का परिचय देते और छोटे भाई शत्रुघ्न-सहित भरत उन सबों के पास जा-जाकर उनसे मिलते। १४१ मुख्यता के क्रम से भरत सुग्रीव, जाम्बवान, अंगद, मैन्द, द्विविद, ऋषभ और विभीषण इन सबों से बड़ी खुशी के साथ मिले। १४२-१४३ नल, गवाक्ष, सुषेण, गन्धमादन, शरभ, पनश आदि सभी वहाँ मनुष्य का रूप धारण कर पधारे थे। १४४-१४५ भरत राम के हरेक सेवक से मिले और हरेक से कुशल पूछा। १४६ सभी मिलकर एक स्वर से भरत की अपार भ्रातृभक्ति सराहने लगे। १४७ फिर भरत ने सुग्रीव से मिलकर कहा— "आप ही राम के मुख्य सहायक थे। १४८ आप ही की सहायता से राम ने रावण को जीता। आप हमारे पाँचवें भाई हुए। १४९ तब शत्रुघ्न ने राम के चरणों में प्रणाम किया। १५० फिर सीता का और लक्ष्मण का चरण-वन्दन किया। १५१ राम ने माता कौशल्या को शोक से व्याकुल समझकर सम्मानपूर्वक उन्हें प्रणाम किया। १५२ फिर

तखनुक कहल कि जाइछ रीति। हरषेँ कनयित गबयित गीत ॥ १५४ ।
भरत खरौं से रघुवर-चरण। पहिराओल सभ सङ्कट-हरण ॥ १५५ ।
आइ सुफल भेल जीवन मोर। अयश मेटायल सञ्चित घोर ॥ १५६ ।
सञ्चित द्रव्य सैन्य बल कोश। दश-गुण अछि प्रभु-चरण-भरोश ॥१५७।
लेल जाय निज राज्यक भार। किङ्कर हम कि करब उपकार ॥ १५८ ।
शुनि कपिवर-लोचन बहु वारि। अकपट भरतक विनय विचारि ॥ १५९ ।
उतरलाह रथपर सौं, राम। कहलनि अयलहुँ अपना गाम ॥ १६० ।
पुष्पक-रथ अहँ धनपति-धाम। जाउ कुशल सौं रहु तहिठाम ॥ १६१ ।

॥ दोहा ॥

गुरु वसिष्ठ पद-कमल मे, रघुवर कयल प्रणाम ॥ १६२ ॥
गुरु-आज्ञा आसन निकट, कयल राम विश्राम ॥ १६३ ॥

॥ कवित्त ॥

रामचन्द्र-जननि पसारि आँखि देखु अहाँ, ॥ १६४ ॥
जानकीसहित राम लछन किशोर कें ॥ १६५ ॥
भूमि नाचै सुन्दरी गगन किन्नरी ई नाचै, ॥ १६६ ॥
बाट बाट भाट सुकवित्त पढ़ै शोर कें ॥ १६७ ॥

माता कैकेयी और सुमित्रा को भी यथोचित रीति से प्रणाम किया। १५
उस समय जो दशा थी उसका वर्णन क्या किया जाय? सभी माताएँ हर्ष
रोती और गीत गाती थीं। १५४ भरत ने सभी संकटों को दूर करनेवा
राम के चरणों में वे खड़ाऊँ पहनाये। १५५ फिर भरत बोले— "आज मे
जीवन सफल हुआ। मेरी जो भारी बदनामी जमा हो गई थी वह आ
मिटी। १५६ धन-धान्य, सेना और खज़ाना सभी आपके चरणों की कृपा
आज दस गुने हो गये हैं। १५७ हे प्रभु, अब आप अपने राज्य का भा
सँभालें। मैं सेवक आपका क्या उपकार कर पाऊँगा?" १५८ भरत
निश्छल विनय देखकर सुग्रीव की आँखों से हर्ष के आँसू बहने लगे। १५९ त
राम पुष्पक रथ से उतरे और बोले— "हम घर पहुँच गये। १६० हे पुष्पकरा
अब आप कुशलपूर्वक कुबेर के पास चले जाइये और वहाँ रहिए।" १
फिर राम ने गुरु वसिष्ठ के चरणों में प्रणाम किया। १६२ गुरु की आज्ञा
उनके आसन के पास कुछ देर विश्राम किया। १६३ हे राम की मा
कौशल्या, आँख फैलाकर देखो, ये हैं तुम्हारे सीता-सहित राम और किश
लक्ष्मण। १६४-१६५ धरती पर सुन्दरियाँ नाच रही हैं; आकाश में किन्नरि
नाच रही हैं; रास्ते-रास्ते पर भाट ऊँचे स्वरों में कवित्त पढ़ते हैं। १६६-१

राग नाचे रागिनी भवानीपति नाचि कहै, ॥ १६८ ॥
भल कैल मारल जे दशकण्ठ चोर कें ॥ १६९ ॥
जननी प्रणाम राम करथि जानकीपुत, ॥ १७० ॥
कौसल्या हरषि लेल मुख चुमि कोर कें ॥ १७१ ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे लङ्काकाण्डे चतुर्दशोऽध्यायः ॥

॥ अथ पञ्चदशोऽध्यायः ॥

॥ चौपाइ ॥

कैकयि - तनय विनय - सम्पन्न । किछु नहि मानस छल प्रच्छन्न ॥ १ ॥
भरत कहल शुनु बड़का भाय । अपनें नृपति दुखी वन जाय ॥ २ ॥
चौदह वरष छलहुँ वनवास । अयलहुँ अवधि पुराओल आस ॥ ३ ॥
जे कृति कयलनि कैकयि माय । से प्रभु नहि मन पाड़ल जाय ॥ ४ ॥
प्रभु - आज्ञा मानल सभ गोट । सेवक थिकहुँ भाय हम छोट ॥ ५ ॥
राज्य - भार करु अपन अधीन । रविकुल शुद्ध रीति प्राचीन ॥ ६ ॥
ई कहि चरण पड़ल लपटाय । देल जाय प्रभु आधि घटाय ॥ ७ ॥

संगीत के राग नाचते हैं, रागिनियाँ नाचती हैं, और नटराज शिव नाच-नाचकर कहते हैं— अच्छा किया कि चोर रावण को मारा । १६८-१६९ सीता-सहित राम माता को प्रणाम करते हैं । कौशल्या ने हर्षपूर्वक उनका मुँह चूमकर उन्हें गोद में ले लिया । १७०-१७१

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिलाभाषा रामायण में लंकाकाण्ड का चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

राम का राज्याभिषेक और देव-गन्धर्व आदि द्वारा उनकी स्तुति

कैकेयी के पुत्र भरत ने, जो विनीत हैं और जिनके मन में कुछ भी छिपा नहीं रहता, राम से कहा— "हे बड़े भाई सुनिये । आप दुःख उठाकर वन गये । १-२ चौदह बरसों तक वनवास करते रहे और अवधि का अन्त होते ही आकर हम लोगों की आशा पूरी की । ३ हे प्रभु, माता कैकेयी ने जो कुछ करनी की उसे मत याद कीजिए । ४ मैंने आपकी सभी आज्ञाओं का पालन किया । मैं छोटा भाई आपका सेवक हूँ । ५ अब राज्य का भार अपने हाथ में लीजिए । यही सूर्यवंशियों की शुद्ध परम्परागत रीति है ।" ६ इतना कहकर भरत राम के चरणों में लिपट गये और बोले— "हे राम, मेरे मन की व्यथा को दूर कीजिए ।" ७ कैकेयी ने कहा— मैंने बड़ी बदनामी

केकयि कहल सहल उपहास। हरल हमहिँ प्रभु राज्य-विलास॥ ८॥
कहल नीक नहि विश्वक लोक। चौदह वरष सहल मन शोक॥ ९॥
भेल से भेल गेल दिन बीति। एखनहुँ राखक थिक कुलरीति॥ १०॥
हमहुँ अशक्य अहाँ काँ भाय। देल कुमतिवश विपिन पठाय॥ ११॥
आज्ञा हमर यहन लिय मानि। रीति सनातन करु जनु हानि॥ १२॥
कहल वसिष्ठ कहै छथि माय। भरतक कथा कयल प्रभु जाय॥ १३॥
राम कयल राज्यक स्वीकार। भेल सकल थल जय-जयकार॥ १४॥
परमात्मा की करता राज। सभटा होइछ माया-व्याज॥ १५॥
समय जानि लक्ष्मण लघु भाय। नापित निपुण देल बजबाय॥ १६॥
तनिकर कृत्य भेल सम्पन्न। सकल लोक मन होथि प्रसन्न॥ १७॥
अभिषेकक आयल सम्भार। रघुवर हेतु वृत्त सभ द्वार॥ १८॥
प्रथमहिँ कयल भरत असनान। लक्ष्मण तखना स्नान-विधान॥ १९॥
सविधि सनान कयल कपिराज। तथा विभीषण सभ्य समाज॥ २०॥
भरतक जटा केश फुटकाब। चित्र-माल्य अनुलेप लगाब॥ २१॥
वसन महोत्तम पहिरल भरत। छवि-तुलना त्रिभुवन के करत॥ २२॥

झेली। आपके राज्य-सुख का अपहरण करनेवाली मैं ही हूं। ८ दुनिया भर के लोगों ने मेरी निन्दा की। चौदह बरसों तक मैं मन में दुःख सहती रही। ९ जो हुआ सो हुआ। वे दिन अब बीत गये। अब भी सूर्यवंश की परम्परा को बचाना है। १० मेरा कोई वश न चला। आपको माता ने दुर्बुद्धि के कारण वन भेज दिया। ११ अब मेरी यह आज्ञा स्वीकार करो और सदा से चली आई परम्परा को टूटने मत दो।" १२ गुरु वसिष्ठ ने कहा— "माता आपको आज्ञा देती हैं कि भरत ने जैसा कहा वैसा किया जाय।" १३ राम ने राज्य लेना स्वीकार कर लिया। सभी जगह जय-जयकार होने लगा। १४ राम तो परमात्मा हैं, वे राज्य क्या करेंगे। यह सब माया का खेल हो रहा है। १५ अवसर देखकर छोटे भाई लक्ष्मण ने एक कुशल नाऊ को बुलवाया। उसने अपना काम तमाम किया। सभी लोग खुश हुए। १६-१७ तब राज्यतिलक की सामग्री जुटाई जाने लगी। राम के लिए सभी साधन मौजूद थे। १८-१९ पहले भरत ने स्नान किया। तब लक्ष्मण विधिपूर्वक नहाये। तब सुग्रीव ने भी यथाविधि स्नान किया। फिर विभीषण आदि राम की मण्डली के लोग नहाये। २० राम ने भरत की जटाओं के बालों को बिलगाया, रंग-बिरंगे फूलों की माला पहनाई और चन्दन लगाये। २१ फिर भरत ने उत्तम से उत्तम वस्त्र पहने। उनकी शोभा की तुलना तीनों लोकों में कौन कर सकेगा? २२ इसी तरह सारे कर्म भरत ने राम

भरत कराओल प्रभु प्रतिकर्म्म । मन मे मानल सेवक-धर्म्म ॥ २३ ॥
रुचिशुचिमय - युत शोभाधाम । दिव्य - अलंकृति - धृत प्रभुराम ॥ २४ ॥

॥ कवित्त ॥

कौशल्या कुशलमति हरषि शृङ्गार कर, ॥ २५ ॥
अपनहि कर सौं पुतोहु विधुवदना ॥ २६ ॥
वदन निहार ओ उचार शिवगौरीगीत, ॥ २७ ॥
हृदय लगाव वारवार शोभासदना ॥ २८ ॥
सकल शाशुक सीता करथि प्रणाम आशु, ॥ २९ ॥
आशिष ओ देथि कहि कहि कुन्दरदना ॥ ३० ॥
जनकक कन्यका कनीनिका मे राखै योगि, ॥ ३१ ॥
अयोध्या-मिथिलालोक आधिक निकन्दना ॥ ३२ ॥

॥ सोरठा ॥

सभ रानी सीताक, कय शिंगार आनन्द कह ॥ ३३ ॥
शिरोरत्न वनिताक, त्रिभुवन मे सीता अहाँ ॥ ३४ ॥

॥ दोधय छन्द ॥

आगत छली जते उत्सव मे, वानर-लोकक दारा ॥ ३५ ॥
सभक शिंगार कयल कौशल्या, धृतशोभा विस्तारा ॥ ३६ ॥
कहलनि धर्म्म-पुतोहु थिकहुँ अहाँ, हमरा प्राणाधारा ॥ ३७ ॥
लक्ष्मण रामचन्द्र हित युवती, लोचनतारा तारा ॥ ३८ ॥

से कराये। मन में सोचा कि सेवक का यही धर्म है। २३ इस प्रकार सफाई और प्रसाधन करके तथा अपूर्व अलंकरण लगाकर प्रभु राम शोभा की खान हो गये। २४ सद्बुद्धि वाली माता कौशल्या ने हर्ष के साथ अपनी पतोहू चन्द्रमुखी सीता को अपने ही हाथों से सँवारा-सजाया। २५-२६ वे सीता के चेहरे को देखतीं, शिव और गौरी के गीत नचारी गातीं, और शोभा की खान अपनी बहू को बार-बार छाती से लगातीं। २७-२८ सीता ने इस प्रकार बन-ठनकर सभी सासों को प्रणाम किया और सासें उन्हें कुन्द की कली के सरीखे दाँतों वाली अर्थात् बच्ची कह-कहकर आशीर्वाद दिया। २९-३० राजा जनक की यह बेटी तो आँखों की पुतली में रखने लायक हैं और अयोध्या एवं मिथिला दोनों देशों के लोगों के दुःख को दूर करनेवाली हैं। ३१-३२ सभी रानियाँ सीता को सँवारकर बोलीं— "हे सीता, तुम तीनों लोकों में नारियों के सिर का रत्न हो।" ३३-३४ इस उत्सव में बन्दरों के साथ जो-जो बन्दरियाँ मनुष्य का रूप धर आई थीं, कौशल्या ने उन सबों को भी सँवारा और उनकी शोभा बढ़ गई। ३५-३६ कौशल्या ने कहा— "आप सभी मेरी धर्मपतोहू हुईं और मुझे प्राण से भी प्यारी हैं। लक्ष्मण और

॥ जयकरी छन्द ॥

आज्ञा शत्रुघनक शुनि कान । रथ सुमन्त रवि-रुचि शुचि आन ॥ ३९ ॥
तेहिपर चढ़ला राम नरेश । देखितहिँ सभ जन विगत-कलेश ॥ ४० ॥
कपिपति अङ्गद ओ हनुमान । तथा विभीषण वरमति-मान ॥ ४१ ॥
कयलनि स्नान अलंकृत अङ्ग । गज बाजी चढ़ि चल प्रभु सङ्ग ॥ ४२ ॥
कपिपति वनिता काँ अतिमान । सीतासङ्ग चललि चढ़ि यान ॥ ४३ ॥
जेहन हरित - हय - रथ त्रिदशेश । चलल महत्तुर प्रभु रुचिवेश ॥ ४४ ॥
रत्नदण्ड - कर सारथि भरत । छविमय के समता जग करत ॥ ४५ ॥
शत्रुघनक कर छत्र सु - धवल । पंखा लक्ष्मण कर लस नवल ॥ ४६ ॥
एक चामर शत्रुघनक हाथ । दोसर कर धर असुरक नाथ ॥ ४७ ॥
सिद्धसंघ कर जय-जय-कार । मधुर मनोहर वचन उचार ॥ ४८ ॥
वानर सुन्दर मनुज - स्वरूप । गजवर चढ़ल चढ़ल जनु भूप ॥ ४९ ॥
बाजन नानातरहक बाज । रामचन्द्र पाओल निज राज ॥ ५० ॥
पुरवासी जन सकल निहार । दुर्व्वादल-श्यामल सुकुमार ॥ ५१ ॥
रत्नकिरीटालङ्कृत अङ्ग । शोणकमलदल लोचन-रङ्ग ॥ ५२ ॥

राम के लिए युवती तारा तो मानो आँखों की तारा है।" ३७-३८ शत्रुघ्न की आज्ञा सुनकर सुमन्त्र ने सूरज-सा चमकीला एक पवित्र रथ ला दिया। ३९ उस पर राजा राम चढ़े। देखते ही सबों का दुःख दूर हो गया। ४० सुग्रीव, अंगद, हनुमान और परम बुद्धिमान विभीषण सबों ने स्नान किया, अलंकरण लगाये तथा हाथियों और घोड़ों पर सवार हो राम के साथ चले। ४१-४२ सुग्रीव की स्त्रियों को बड़ा सम्मान मिला। वे रथ पर चढ़कर सीता के साथ चलीं। ४३ जिस प्रकार हरे रंग के घोड़ों वाले रथ पर देवताओं के राजा इन्द्र चलते हैं उसी तरह राम सुन्दर वेश बनाए अयोध्या पुरी चले। ४४ सारथि का काम करते भरत रत्नों से बना राजदंड हाथ में लिये हुए हैं। उनकी शोभा की बराबरी दुनिया में कौन कर सकेगा? ४५ शत्रुघ्न के हाथ में श्वेत छत्र है और लक्ष्मण के हाथ में नया पंखा शोभा पा रहा है। ४६ एक चँवर शत्रुघ्न के हाथ में है और दूसरा असुरराज विभीषण अपने हाथ में लिये हुए हैं। ४७ सिद्धों का दल जय-जयकार कर रहा है और मीठे स्वर में गुणकीर्तन कर रहा है। ४८ कपि लोग मनुष्यों का कमनीय रूप धारण कर अच्छे हाथियों पर चढ़े, लगते हैं जैसे राजा हों। ४९ तरह-तरह के बाजे बज रहे हैं। राम ने अपना राज पाया। ५० नगर के सारे लोग दूब की पत्ती जैसे साँवले सुकुमार राम को देख रहे हैं, ५१ जिनका अंग रत्नमय किरीट से भूषित है; आँखों का रंग लाल कमल की पंखुड़ियों-सा है; ५२ जो पीले वस्त्र और उत्कृष्ट मोतियों का हार पहने हुए हैं। राम

पीताम्बर वरमुक्ता - हार । भाग्य अपन मन प्रजा विचार ॥ ५३ ॥
सुग्रीवादिक कपि - प्रधान । सभ सौँ सेवित श्री भगवान ॥ ५४ ॥
कस्तूरी चन्दन घनसार । कल्पमहीरुह-सुमनक हार ॥ ५५ ॥
उच्च अटापर चढ़ि वरनारि । एकटक रघुवर-रूप निहारि ॥ ५६ ॥
निज गृहकाज देल परित्यागि । शान्ति कयल मन आधिक आगि ॥ ५७ ॥
हसि हसि करथि प्रसूनक वृष्टि । गेल पुरी सौँ शोकक सृष्टि ॥ ५८ ॥
ईषत-हसित-मुख राम निहार । प्रजाचित्त छूटल दुख भार ॥ ५९ ॥

॥ रूपमाला ॥

अमरपति-पुर तुल्य शोभा, लसित दशरथ-धाम ॥ ६० ॥
सकल लोक कृतार्थ करयित, पहुँचला श्रीराम ॥ ६१ ॥
देवतामति मातृलोकक, कयल चरण प्रणाम ॥ ६२ ॥
प्रभु-चुमाओन विविध उत्सव, भेल विधि तहिठाम ॥ ६३ ॥
भरत काँ रघुनाथ कहलनि, हमर जे छल धाम ॥ ६४ ॥
सर्व्वसम्पति-युक्त समुचित, वास हो ओहिठाम ॥ ६५ ॥
मित्र कपिपति ओ विभीषण, राक्षसेन्द्रक नीक ॥ ६६ ॥
सुख-निवास कपि-प्रधानक, आज देबक थीक ॥ ६७ ॥

की यह झाँकी देख प्रजा अपने को भाग्यवान् समझने लगी। ५३ सुग्रीव आदि कपियों के सभी दलपति राम की सेवा कर रहे हैं। ५४ राम कस्तूरी, चन्दन और कर्पूर लगाये हुए हैं और पारिजात के फूलों का हार पहने हुए हैं। ५५ ऊँची-ऊँची अटारियों पर चढ़-चढ़कर ललनाएँ अपलक आँखों से राम के रूप को देख रही हैं। ५६ उन्होंने इसके पीछे अपने घर के कामों को छोड़ दिया है। इस प्रकार राम के दर्शन करके उन्होंने अपने मन की व्यथा को दूर किया। ५७ वे हर्ष से हँस-हँसकर पुष्पवृष्टि कर रही हैं। नगर से मातमी समा जाती रही। ५८ मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए राम सब देख रहे हैं। प्रजा के मन से सारे दुःख-दर्द दूर हो गये। ५९ राजा दशरथ की राजधानी में, जिसकी शोभा इन्द्रपुरी के बराबर है, राम पहुँचे। ६१ उन्होंने देवी समझकर माताओं के चरणों में प्रणाम किया। ६२ वहाँ तरह-तरह के उत्सवों के साथ राम का 'चुमावन' नाम का रस्म अदा किया गया। ६३ राम ने भरत से कहा— "मेरे मित्र कपियों के राजा सुग्रीव और राक्षसों के राजा विभीषण को वहाँ आवास देना अच्छा होगा जहाँ मैं रहता था; और ६४-६६ अन्याय कपियों के दलपतियों को भी आज सुखद आवास मिलना चाहिए।" ६७ राम की आज्ञा के अनुसार भरत ने सबों को सुखद आवास

॥ सोरठा ॥

लभक देल सुख-वास, भरत जेहन आज्ञा प्रभुक ॥ ६८ ॥
भेल चित्त निस्त्रास, दिन जाइत जानथि न से ॥ ६९ ॥
थिक विचार इक एक, भरत कहल कपिनाथ सौं ॥ ७० ॥
करब प्रभुक अभिषेक, आबय सात-समुद्र-जल ॥ ७१ ॥

॥ कवित्त ॥

कहल कनक-घट सातहु समुद्र-जल ॥ ७२ ॥
आनु गय झट दय कपीन्द्र प्रधान काँ ॥ ७३ ॥
अङ्गद सुषेण शुनि बहुत हर्षित चित्त ॥ ७४ ॥
प्रभुक निमित्त वेग मारुतसमान काँ ॥ ७५ ॥
आनल सकल जन जल सातो समुद्रक ॥ ७६ ॥
दूर पथ कत जाम्बवान हनुमान काँ ॥ ७७ ॥
आयल सकल तीर्थ-जल से कहल जाय ॥ ७८ ॥
मन्त्रिसङ्ग शत्रुघ्न वसिष्ठ वर-ज्ञान काँ ॥ ७९ ॥

॥ सवैया चकोर छन्द ॥

रत्न-सिंहासन शुद्ध मनोहर, संस्थित जानकि-संयुत राम ॥ ८० ॥
उत्सव-मध्य त्रिलोकिक लोक, प्रधान प्रधान छला सहिठाम ॥ ८१ ॥
रावण-गर्व्व-विनाशन सर्व्व, स्वरूपसौं निर्ज्जित कोटिक काम ॥ ८२ ॥
स्वस्ति-समस्त प्रशस्त विलक्षण, गाब-विरञ्चि मनोहर साम ॥ ८३ ॥

दिया। ६८ मन निःशंक हुआ। दिन कैसे बीतते गये, यह भी भरत को लक्षित न हुआ। ६९ एक दिन भरत ने सुग्रीव से कहा— "यहाँ एक विचार करना है। ७० अब राम का राज्याभिषेक करें। सातों समुद्रों से जल आना चाहिए।" ७१ सुग्रीव ने दलपतियों से कहा— "सोने के घड़े ले-लेकर सातों समुद्रों से शीघ्र जल लेते आइये।" ७२-७३ यह सुनकर अंगद और सुषेण को बड़ी प्रसन्नता हुई। राम के काम के लिए तो उनकी तेजी वायु के समान हो जाती है। ७४-७५ सब कोई सातों समुद्रों के जल ले आये। जाम्बवान और हनुमान के लिए रास्ता कोई दूर नहीं था। ७६-७७ तब मन्त्रियों के साथ शत्रुघ्न ने ज्ञानियों में श्रेष्ठ गुरु वसिष्ठ से जाकर कहा— "सभी तीर्थ-जल आ गये।" ७८-७९ रत्नमय शुद्ध और सुन्दर सिंहासन पर राम और सीता दोनों बैठाये गये। ८० तीनों लोकों के सभी प्रधान-प्रधान लोग वहाँ उस उत्सव में उपस्थित हुए। ८१ ब्रह्मा स्वयं राम की प्रशंसा में सुन्दर साम गाने लगे— "रावण के तमाम घमंडों को दूर करनेवाले, रूप से करोड़ों कामदेव को जीतनेवाले, पूर्ण रूप से मंगलमय, विलक्षण प्रशस्तियों से युक्त राम की जय हो!" ८२-८३ गौतम, जाबालि, वसिष्ठ तथा अन्याय बहुत से

॥ कवित्त ॥

गौतम जाबालि ओ वसिष्ठ वाल्मीकि वृद्ध, ॥ ८४ ॥
ब्राह्मण बहूत वेद-विद्या-निधान सौं ॥ ८५ ॥
ऋत्विज अनेक ओ कुमारी तथा मन्त्रिगण, ॥ ८६ ॥
औषधि समस्त रस देल सन्मान सौं ॥ ८७ ॥
लोकप सगण मन मगन समस्त लोक, ॥ ८८ ॥
पाओल अभीष्ट फल राम भगवान सौं ॥ ८९ ॥
तुलसी गन्ध पुष्प जल कोमल कुशाग्र-हस्त, ॥ ९० ॥
राम-अभिषेक भेल वेदक विधान सौं ॥ ९१ ॥

॥ चौपाइ ॥

तत शत्रुघ्न छत्र कर धयल । श्वेतरङ्ग प्रभु - सेवा कयल ॥ ९२ ॥
चामर धयल धवल तहँ हाथ । वानरेन्द्र ओ राक्षस - नाथ ॥ ९३ ॥
स्तुति कर सकल देव तहिठाम । जय - जय वैदेहीपति राम ॥ ९४ ॥
जगत्प्राण देल हेमक माल । इन्द्रक अनुमति कान्ति विशाल ॥ ९५ ॥
सर्व्व-रत्न मणि कञ्चन हार । इन्द्र देल भक्तिक व्यवहार ॥ ९६ ॥
स्तुति कर पुन पुन सुरगन्धर्व्व । नाचथि किन्नर अप्सर-सर्व्व ॥ ९७ ॥
देव दुन्दुभी गगन बजाब । पुष्प-वृष्टि नभ सौं भल आब ॥ ९८ ॥
नव - दूर्व्वादल - सुन्दर श्याम । पङ्कजलोचन श्रीयुत राम ॥ ९९ ॥

वृद्ध ब्राह्मण उपस्थित थे जो वेद-शास्त्र में पारंगत थे । ८४-८५ अनेक ऋत्विक्, कुमारियाँ तथा मंत्री उपस्थित थे, जिन्होंने राम और सीता को सम्मान के साथ यथाविहित औषधि और रस दिये । ८६-८७ सदल-बल सभी दिक्पाल और सभी लोग बड़े प्रसन्न थे । सबों ने भगवान् राम से वांछित फल पाये । ८८-८९ तुलसी, चन्दन, फूल, जल और कुश ये सभी हाथ में लेकर वेद में बताई गई रीति से राम का राज्याभिषेक किया गया । ९०-९१ इस अभिषेकोत्सव में शत्रुघ्न ने श्वेत रंग का छत्र अपने हाथ में लिये राम की सेवा की । ९२ सुग्रीव और विभीषण अपने हाथों में चँवर लिये हुए थे । ९३ सभी देवता लोग वहाँ उपस्थित हो गुणगान कर रहे थे— 'सीतापति राम की जय हो !' ९४ वायु ने सोने का हार उपहार दिया । इन्द्र ने उज्ज्वल कान्ति दी । ९५ फिर अपनी भक्ति के अनुरूप इन्द्र ने सभी रत्नों और मणियों से खचित सोने का हार दिया । ९६ देवता लोग और गन्धर्व लोग बारम्बार स्तुति करते । किन्नर लोग और सभी अप्सरायें नाचतीं । ९७ देवता लोग आकाश में नगाड़े बजाते । आकाश से फूल बरसाते । ९८ राम के शरीर का रंग नई दूब के पत्ते के समान साँवला-सुहावना है । उनकी आँखें कमल-सी हैं । ९९ उनके अंग में करोड़ों सूरज की

कोटि - प्रभाकर - छवियुत - अङ्ग । नव-किरीटि छवि-विजित-अनङ्ग ॥ १०० ॥
पीताम्बर धर दिव्याभरण । सकल-लोक आनन्दित-करण ॥ १०१ ॥
सीता शोभित वामा भाग । श्री देवी काँ अति-श्री लाग ॥ १०२ ॥
अतिशय शोभा धृत-कर-कमल । सर्व्वाभरण - विभूषित बनल ॥ १०३ ॥
उमा-सहित सम्प्राप्त महेश । स्तुति कर अति आनन्दित देश ॥ १०४ ॥

॥ वर्णाक्षरी छन्द ॥

नमो नमो रामाय सशक्तिकाय निर्गुणाय, ॥ १०५ ॥
नीलोत्पलसुप्रभातिकोमलाय विष्णवे ॥ १०६ ॥
मीनकमठादिरूपधारिणे धरित्रीधृजे, ॥ १०७ ॥
देव-महि-कण्टक-समस्त-खल - जिष्णवे ॥ १०८ ॥
किरिट - हाराङ्गदविभूषण - विभूषिताय, ॥ १०९ ॥
सिंहासनस्थाय रामचन्द्र-भूप-वेधसे ॥ ११० ॥
लीलारूपधारकाय सर्व्वविश्वकारकाय, ॥ १११ ॥
सकलमहसामपि वेदपूर्णतेजसे ॥ ११२ ॥

॥ सोरठा ॥

स्तुति करयित अमरेश, बद्धाञ्जलि प्रभु सौँ कहल ॥ ११३ ॥
जय-जय राम नरेश, वेश कयल सुरकार्य्य प्रभु ॥ ११४ ॥

चमक है। वे नये किरीट भूषण पहने हुए हैं और अपने सौन्दर्य से कामदेव को जीते हुए हैं। १०० पीले वस्त्र पहने हुए हैं, दिव्य भूषण लगाये हुए है। सभी लोगों को प्रसन्न करनेवाले हैं। १०१ बाईं ओर सीता विराजमान हैं। महारानी सीता की शोभा लक्ष्मी की शोभा से भी बढ़ी-चढ़ी है। १०२ हाथ में कमल लिये हुए हैं, सभी गहने लगाये अतिशय शोभामयी बनी हुई हैं। १०३ पार्वती-सहित महेश पहुँचे हुए हैं और आनन्द के अवसर पर उनकी स्तुति कर रहे हैं— १०४ "नमस्कार है, उन राम को नमस्कार है जो शक्ति से युक्त होते हुए भी निर्गुण हैं। १०५ नीलकमल की सी छवि वाले हैं और बड़े कोमल हृदय विष्णुस्वरूप हैं। १०६ मत्स्य, कच्छप आदि के रूप में अवतार लेकर धरती की रक्षा करनेवाले हैं। १०७ देवताओं और मानवों को सताने वाले सभी दुष्टों को हरानेवाले हैं। १०८ किरीट, हार, अंगद आदि आभूषणों से अलंकृत हैं। १०९ सिंहासन पर विराजमान हैं। ऐसे राजा रामचन्द्र ब्रह्मस्वरूप हैं। ११० ये लीलावश सगुण रूप धारण करते हैं, सारे जगत् की रचना करते हैं, सभी तेजों से अधिक तेज देवता हैं।" १११ इन्द्र ने हाथ जोड़े स्तुति करते हुए राम से कहा— ११२ "हे राजा राम, आपकी जय हो, जय हो! आपने देवताओं का बहुत बड़ा उपकार किया। ११३-११४ रावण ने ब्रह्मा से वरदान पा करके देवताओं के सारे सुख

प्राप्त महोरग किन्नर-लोक । स्तुति कर कह हम भेलहुँ अशोक ॥१२८॥
वसु मुनि यक्षक पक्षी सकल । सहित प्रजापति छल छथि विकल॥१२९॥
बड़ गोट उत्सव देखल नयन । दुःखँ रहित सकल मन चयन ॥ १३० ॥
पृथक पृथक स्तुति सब जन कयल । रामचरण-पङ्कज मन धयल ॥ १३१ ॥
लक्ष्मण - सीता - सय्युँत राम । विधि-अभिषिक्त विराज सुधाम॥१३२॥
ब्रह्मादिक निज पद प्रस्थान । कयल कयल प्रभु बड़ सन्मान ॥ १३३ ॥

॥ दण्डक छन्द ॥

नवघन-रङ्ग हे ॥ १३४ ॥
राम भूपति थित-सिंहासन, अवनिगत जनु पाकशासन ॥ १३५ ॥
कान्ति-कोटि-दिनेश-भासन, कृत-दशानन-भङ्ग ॥ १३६ ॥
जानकी-लक्ष्मण-मरुत्सुत, मुनि-निवह हरिगणसँ-संयुत ॥ १३७ ॥
रामचन्द्र-समीप बसि नित, भजन भाव प्रसङ्ग ॥ १३८ ॥
गगन-सङ्कुल त्रिदश बाजल, पुष्प वर्षण कर मुदित-मन ॥ १३९ ॥
करथि प्रभु-गुण-गान परसन, विपुल-पुलक सुअङ्ग ॥ १४० ॥

तब नाग और किन्नर लोग आये और स्तुति करने लगे— "अब हम शोक-रहित हुए। १२८ वसु, ऋषि-मुनि, यक्ष, पक्षी आदि सभी जीव और प्रजापति ब्रह्मा भी विकल थे। १२९ आज हमने बहुत भारी उत्सव अपनी आँखों से देखा। सबों के दुःख दूर हुए। सबों के मन निश्चिन्त हुए।" १३० हरेक ने अलग-अलग भी स्तुति की और राम के चरण का ध्यान अपने हृदय में सँजोया। १३१ लक्ष्मण और सीता-सहित राम विधिवत् अभिषेक पाकर सिंहासन पर विराजमान हैं। १३२ ब्रह्मा आदि अपनी-अपनी जगह लौट गये। राम ने सबों का पूर्ण सत्कार किया। १३३ अहा, राम नये बादल के समान साँवले हैं। १३४ राजा राम सिंहासन पर विराजमान हैं जैसे इन्द्र धरती पर उतर आये हों। १३५ वे करोड़ों सूर्य के समान प्रभा से देदीप्यमान हैं। उन्होंने रावण का संहार किया है। १३६ सीता, लक्ष्मण, हनुमान, मुनिगण तथा कपिगण ये सभी राम के समीप में बैठे नित्य भजन-भाव कर रहे हैं। १३७-१३८ आकाश में देवताओं की भीड़ लगी हुई है। वे बाजा बजा रहे हैं और प्रसन्न हृदय से फूल बरसा रहे हैं। १३९ आनन्दमग्न हो राम का गुण गा रहे हैं। उनके अंग अतिशय रोमांचित हैं। १४० भगवान् राम मुस्कुरा रहे हैं। वे सभी गुणों का खज़ाना हैं, भक्तों को सदा सुख

रावण विधि-वर पाबि, देवताक सुख हरल छल ॥ ११५ ॥
मारल खल काँ आबि, पाओल प्रभुक प्रसाद से ॥ ११६ ॥

॥ चौपाइ ॥

सकल देव कह निज कर जोड़ि । सङ्कट-बन्ध देल प्रभु तोड़ि ॥ ११७ ॥
रावण-कृत कि नियत छल त्रास । गमहि गमहि सहि अतिशय त्रास॥११८॥
रावण हरि लेल यज्ञक भाग । ब्रह्म-दत्त-वर सौँ के लाग ॥ ११९ ॥
रावण काँ मारल प्रभु जाय । सर्वसहापर भेलहुँ सहाय ॥ १२० ॥
पितरलोक कहलनि कलजोड़ि । शरण न आन चरण ई छाड़ि ॥ १२१ ॥
रावण-वध सौँ सुख बड़ गोट । खायब पिण्ड प्रमोद सँ मोट ॥ १२२ ॥
रावण मख सभ हरि लय जाय । भाग गयादिक अपनहि खाय ॥ १२३ ॥
यज्ञ न रहल सहल बड़ कष्ट । रावण मुइल भेल दुख नष्ट ॥ १२४ ॥
गबइत गीत प्रीति सौँ सर्व्व । कहल राम सौँ गण गन्धर्व्व ॥ १२५ ॥
सहल बहुत दशकन्ध-अनीति । प्रभु-गुणगान छुटल सब भीति ॥ १२६ ॥
तनि गुण गाबि बचाओल प्राण । आज कयल सब सङ्कट त्राण ॥ १२७ ॥

हर लिये थे । ११५ आपने अवतार लेकर उस दुष्ट को मारा । यह फल हमें आपकी कृपा से ही प्राप्त हुआ ।" ११६ सभी देव लोग हाथ जोड़कर कहते हैं— "हे राम, आपने हम लोगों को संकट के फन्दे से मुक्त किया । ११७ रावण ने तो हमारे घरबार का भी ठिकाना न रहने दिया । हमारा आतंक क्रमशः बढ़ता ही जा रहा था । ११८ रावण ने यज्ञ में मिलनेवाले हमारे अंशों को हर लिया । उसे ब्रह्मा का वर प्राप्त था, अतः उसका सामना हम नहीं कर सकते थे । ११९ हे प्रभु, आपने जाकर रावण का संहार किया । धरती के उद्धारक हुए ।" १२० तब पितर लोगों ने हाथ जोड़कर कहा— "हमें आपके चरण के सिवा कोई दूसरा सहारा नहीं है । १२१ रावण के मरने से हमें बड़ी प्रसन्नता हुई । अब हम खुशी से मोटा-मोटा पिंड खायेंगे । १२२ रावण यज्ञ में मिलनेवाला हमारा सारा अंश खा जाता था । गया आदि में मिलनेवाला हमारा अंश भी स्वयं खा लेता था । १२३ यज्ञ का नामोनिशान न रहा । हमें बड़ी तकलीफ़ होने लगी । रावण के मरने से हमारी यह तकलीफ़ दूर हो गई ।" १२४ फिर सारे गन्धर्व लोग खुशी से गीत गाते हुए राम की स्तुति करने लगे— १२५ हम ने रावण के बहुत दुराचार सहे । आपकी स्तुति के प्रसाद से हमारा सारा डर दूर हुआ । १२६ डर से उस रावण का गुणगान कर-करके ही हम अपने प्राण बचाते रहे । आज आपने हमें सभी संकटों से छुटकारा दिलाया ।" १२७

अङ्गद काँ अङ्गद देल राम। लगला करय सुयश सभ ठाम ॥ १० ॥
चन्द्रकोटि मणि-रत्न सुहार। वैदेही काँ देल उदार ॥ ११ ॥
पहिरि हार निज कर मे धयल। दृष्टि पवन-नन्दन दिश कयल ॥ १२ ॥
प्रभु-मुख वारहिँ वार निहार। हार-दान मे केहन विचार ॥ १३ ॥

॥ दोहा ॥

जतय तुष्ट मन अहँक अछि, दिय तनि जन काँ हार ॥ १४ ॥
वैदेही काँ कहल प्रभु, हमरो सँह विचार ॥ १५ ॥
हार देल हनुमान काँ, लेल से कण्ठ लगाय ॥ १६ ॥
बद्धाञ्जलि नत ठाढ़ तहँ, भक्ति कहल को जाय ॥ १७ ॥

॥ चौपाइ ॥

वर अभिलषित माँगु हनुमान। कहलनि रघुनन्दन भगवान ॥ १८ ॥
त्रिभुवन सुर-दुर्लभ वरदान। देब अहाँक समान न आन ॥ १९ ॥
कहि नहि हो हनुमानक हर्ष। गद गद कण्ठ नयन जल वर्ष ॥ २० ॥
यावत अपनैँक रह जह नाम। तावत हमहुँ रही तहि ठाम ॥ २१ ॥
रहय निरन्तर नामस्मरण। प्रभुक चरण-वश अन्तष्करण ॥ २२ ॥
ई वर छोड़ि न माँगब आन। छल सौँ रहित कहल हनुमान ॥ २३ ॥

वे सर्वत्र अपना यश फैलाने लगे। १० दानी राम ने चन्द्रकान्त मणि का एक अच्छा हार सीता को दिया। ११ सीता ने वह हार पहना और उसे उतार हाथ में ले अपनी नजर हनुमान पर डाली। १२ फिर बार-बार राम का मुँह जोहने लगीं कि उनकी क्या प्रतिक्रिया होती है। १३ राम ने कहा— "जहाँ तुम्हारा मन चाहे, उसे तुम हार दे सकती हो। मेरी भी इसमें सहमति है।" १४-१५ सीता ने वह हार हनुमान को दिया। हनुमान ने उसे अपने गले में लगा लिया। १६ फिर हाथ जोड़े, सर झुकाये खड़े हो गये। उनकी भक्ति का क्या कहना। १७ भगवान् राम ने कहा— "हे हनुमान, आपको जो भी अभिलाषा हो, वर माँगिये। १८ आपको ऐसा वरदान दूँगा जो तीनों लोकों में देवताओं के लिए भी दुर्लभ है। मुझे आपके बराबर कोई नहीं है।" १९ हनुमान को असीम आनन्द हुआ। उनका गला रुँध गया। और आँखों से आँसू बरसने लगे। २० हनुमान ने कहा— "जहाँ कहीं जब तक आपका नाम लिया जाता रहे, तब तक मैं वहाँ रहूँ। २१ मुझे सदा आपका नाम-स्मरण होता रहे। मेरा चित्त सदा आपके चरणों के वश में रहे। २२ यह छोड़कर और कोई वर नहीं माँगूगा" हनुमान ने शुद्ध हृदय से ऐसा कहा। २३ राम ने वही कहा— "ऐसा ही हो।

॥ राम प्रभु गुण-धाम स्मित-सुख, सदा दायक भक्त जन सुख ॥ १४१ ॥
॥ कयल अर्दित दनुज-गण तुख, कान्ति-विजित-अनङ्ग ॥ १४२ ॥
॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे लङ्काकाण्डे पञ्चदशोऽध्यायः ॥

॥ अथ षोढ़शोऽध्यायः ॥

॥ चौपाइ ॥

रामक भेल जखन अभिषेक । महाराज काँ नीति विवेक ॥ १ ॥
सकल लोक काँ अति सुख प्राप्त । सकल शस्य सौँ धरणी व्याप्त ॥ २ ॥
भल भल सुफल महीरुह लाग । राम नृपति प्रकृतिक बड़ भाग ॥ ३ ॥
जे छल सुमन गन्ध सौँ रहित । भेल अपूर्व्व सुगन्धिक सहित ॥ ४ ॥
घोड़ा दान हजार हजार । धेनु दान कर परमोदार ॥ ५ ॥
शत शत वृषभ विप्र काँ देथि । आशिष शिष्ट लोक सौँ लेथि ॥ ६ ॥
तीस कोटि पाओल भल दान । बर सुवर्ण ब्राह्मण गुणवान ॥ ७ ॥
वस्त्राभरण रत्न वसु आन । नित नित ब्राह्मण जन काँ दान ॥ ८ ॥
सूर्य्यकान्ति सम रत्न उदार । देल सुग्रीव - गरा मे हार ॥ ९ ॥

देनेवाले हैं । १४१ उन्होंने राक्षसों के दल को भूंसे की भाँति मसल दिया । वे अपनी शोभा से कामदेव को भी जीते हुए हैं । १४२

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में लंकाकाण्ड का पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥

सोलहवाँ अध्याय

राज्याभिषेक के उपलक्ष में इनाम बाँटा जाना; विभीषण आदि को विदा करना; रामायण का माहात्म्य

जब राम का राज्याभिषेक हुआ, और नीति और विवेक से युक्त महाराज हुए, १ तब सभी लोग सुखी हो गये । धरती फ़सलों से भरी-पूरी हो गयी । २ पेड़ों में अच्छे-अच्छे फल लगने लगे । राम राजा हैं । प्रजा का भाग्य जगा है । ३ जो फूल सौरभ से हीन होते थे उनमें भी अजब सुगन्ध आ गई । ४ हज़ार-हज़ार घोड़ों और हज़ार-हज़ार दुधारू गायों का दान उदारता के साथ किया गया । ५ सौ-सौ बैल ब्राह्मणों को देते और शिष्ट जनों से आशीर्वाद लेते थे । ६ गुणवान् ब्राह्मणों को तीस करोड़ सुवर्णमुद्राएँ मिलीं । ७ रोज़-रोज़ ब्राह्मणों को वस्त्र, गहने, रत्न और अन्यान्य धन दान में दिये जाते । ८ उदार राम ने सूर्यकान्त जैसे दुर्लभ रत्नों का हार सुग्रीव के गले में दिया । ९ राम ने अंगद को अंगद नामक बाँह का गहना दिया ।

दिव्याभरण राज्य कय देश। देल मित्र काँ राम नरेश॥ ३८॥
नयन सजल मिलि मिलि चललाह। राम-नियोग न किछु बजलाह॥ ३९॥
सुग्रीवादिक सकल प्रधान। सभ जन पाओल बर सन्मान॥ ४०॥
वानर-निकरक कय सन्मान। वसनाभरण अमूल्य अमान॥ ४१॥
सन्मानित सभ भेल विदाय। गदगद कण्ठ नयन जल जाय॥ ४२॥
सभजन अपन अपन गेल गेह। अचल रहल रामक पद नेह॥ ४३॥
किष्किन्धा कपि-पति सह-दार। चलल सैन्य सह भरिया भार॥ ४४॥
लङ्का गेला निज जन सहित। भक्त विभीषण कण्टक-रहित॥ ४५॥
रघुवर कयल बहुत सत्कार। जे पवित्र मित्रक व्यवहार॥ ४६॥
लक्ष्मण काँ बल सौँ युवराज। कयल रघूत्तम सहित समाज॥ ४७॥
कर्म्माध्यक्ष तदपि नहि बन्ध। परमात्मा मन सौँ निर्द्वन्ध॥ ४८॥
स्वात्मानन्दहिँ प्रभु सन्तुष्ट। जन उपदेश करथि मन तुष्ट॥ ४९॥
हयमेधादिक यज्ञ अनेक। कयल यथाविधि विमल-विवेक॥ ५०॥
विपुल दक्षिणा जन सन्तुष्ट। त्रिभुवन जन मन रहल न रुष्ट॥ ५१॥

नहीं जाइबेगा।" ३७ अपूर्व भूषण और कई प्रदेशों का राज्य राम ने अपने मित्र गुह को दिया। ३८ उनकी आँखों में आँसू भर आये और वे राम से बार-बार मिले; राम के बिछोह के दुख से कुछ बोल न पाये। ३९ सुग्रीव आदि जो-जो सेनापति थे सबों ने खूब सम्मान पाया। ४० अमूल्य और अनगिनत वस्त्र और भूषण देकर कपियों का सम्मान किया। ४१ सभी सम्मानित होकर विदा हुए। सबों के गले रुँधे थे और आँखों में आँसू थे। ४२ सभी अपने-अपने घर चले गये। सबों के मन में राम के चरणों में अटल भक्ति थी। ४३ कपियों के राजा सुग्रीव पत्नी तारा-सहित किष्किन्धा चले और उनके पीछे उनकी सेना थी और साथ में भारिक भारों में सामान लिये थे। ४४ विभीषण अपने परिजनों-सहित लंका को चले जहाँ उनका कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं था। ४५ राम ने सच्चे मित्र के साथ जैसा व्यवहार होना चाहिए, अपने मित्रों का खूब सम्मान किया। ४६ राम ने अपने इष्टमित्रों के साथ विचार-विमर्श कर आग्रहपूर्वक लक्ष्मण को युवराज बनाया। ४७ सभी राज-काज के प्रधान होते हुए भी राम कर्म के बन्धन में नहीं रहे क्योंकि वे परमात्मा थे और उनके मन में द्वन्द्व (भेदबोध) नहीं था। ४८ वे आत्म-साक्षात्कार से होनेवाले आनन्द से ही तृप्त रहते थे और सेवकों को प्रसन्न मन से उपदेश देते थे। ४९ उन्होंने शास्त्रों में बताई गई रीति से शुद्ध भाव से अश्वमेध आदि अनेक यज्ञ किये। ५० प्रचुर दक्षिणा पाकर सभी सम्बद्ध लोग खुश हुए। तीनों भुवनों में किसी के भी मन में कोई शिकायत न रही। ५१ वहाँ कोई महिला विधवा नहीं होती थी। साँप के काटने का डर न था।

राम तथास्तु कहल तहि ठाम। जीवन्मुक्त अहाँ गुणधाम॥ २४॥
कल्पान्तहु हमरे सायुज्य। सतत सुखी रहु तन नैरुज्य॥ २५॥
वैदेही देलनि वरदान। जतय ततय बसु गय हनुमान॥ २६॥
ततहि मनोभिलषित फल पयब। आशिष हमर न चिन्तित हयब॥ २७॥

॥ सोरठा ॥

धरणी धय निज माथ, कयल प्रणाम समीर-सुत॥ २८॥
वैदेही - रघुनाथ, सानुकूल रहु की कहब॥ २९॥

॥ किरीट छन्द ॥

वृक्षक पत्र जकाँ रघुनायक, जाय कहूँ अपनैंक कहायब॥ ३०॥
वानर छी वन मे बसि कैं, झरना-जल पान ततै फल खायब॥ ३१॥
जीवन मुक्त निरन्तर ध्यान, विदेह-सुता प्रभु-गान शुनायब॥ ३२॥
जाइतछी हिमवान मे हे प्रभु, ई सुख-पुञ्ज कतै हम पायब॥ ३३॥

॥ चौपाइ ॥

हाथ जोड़ि कहि कयल विदाय। गुह निषाद काँ हृदय लगाय॥ ३४॥
घर थिक अपन निरन्तर आउ। मित्र अपन पुर सम्प्रति जाउ॥ ३५॥
चिन्ता हमर चित्त मे धरब। विपुल भोग-सुख सुख सौं करब॥ ३६॥
मित्र हमर सारूप्ये पयब। अन्त समय नहि दुर्गति जयब॥ ३७॥

हे परम गुणवान हनुमान, आपने जीते ही मोक्ष पा लिया। २४ चार युगों का कल्प बीत जाने के बाद मुझमें पूर्णतः लीन हो जायेंगे। आप सदा सुखी रहें और आपका शरीर नीरोग रहे। २५ सीता ने वरदान दिया— "हे हनुमान, आप जहाँ कहीं भी रहेंगे आपके मन की अभिलाषा पूरी होती रहेगी। मेरा आशीर्वाद है। आपको कहीं कोई चिन्ता न होगी।" २६-२७ हनुमान ने धरती में माथा टेककर प्रणाम किया और कहा— "हे सीता, हे राम, आप मुझ पर अनुग्रह बनाये रखें; और क्या कहूँ। २८-२९ हे रघुनाथ, पेड़ के पत्ते की तरह जहाँ भी जाऊँगा, आप ही का कहलाऊँगा। ३० मैं बन्दर हूँ, वन में रहकर झरना का जल पियूँगा और फल खाऊँगा। ३१ मैं जीते ही मुक्त हो चुका हूँ। सदा आपका ध्यान करता रहूँगा और सीता-राम का गुन गाता रहूँगा। ३२ हे प्रभु, मैं अब हिमालय के जंगल में जाता हूँ। यह सुख और कहाँ पाऊँगा? ३३ तब राम ने निषादराज गुह को गले लगाया और हाथ जोड़कर यह कहते हुए विदा किया— ३४ "यह आपका अपना घर है, सदा आते रहिये। हे मित्र, अब आप अपने नगर जा सकते हैं। ३५ मेरी याद रखियेगा। सुख के साथ खब भोग कीजियेगा। ३६ हे मित्र, आप जीवन का अन्त होने पर मेरा सारूप्य पाइयेगा, और नरक

श्रद्धायुत जे पढ़ इ पुराण। ईश्वर तनिकाँ देथिनि ज्ञान॥ ६८॥
करथि उमेश तनिक प्रतिपाल। निकट न आबै तनिका काल॥ ६९॥

॥ इति चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे लङ्काकाण्डे षोडशोऽध्यायः॥

॥ इति लंकाकाण्ड ॥

ग्रहों की प्रतिकूलता समाप्त हो जायेगी। ६७ जो इस पुराण रूपी रामकथा को पढ़ेगा उन्हें भगवान् ज्ञान देंगे। ६८ शिव उनकी रक्षा करेंगे और काल भी उनके पास नहीं भटकेगा। ६९

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में लंकाकाण्ड का सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥

॥ लंकाकाण्ड समाप्त ॥

प्राप्त सतय नहि विधवा योग। नहि सर्प्पादिक भय नहि रोग॥ ५२॥
तस्करादि नास्तिक नहि लोक। प्राप्त न ककरहु पुत्रक शोक॥ ५३॥
रामाचरित प्रजा समस्त। वस्तु प्रशस्त सतत सभ सस्त॥ ५४॥
सकल प्रजाकेँ धर्म्महिँ प्रीति। बड़ मन धृति नहि ईतिक भीति॥ ५५॥
बरष बलाहक समय सुबेरि। ओहि ओहि मय महि भे ढेरि॥ ५६॥
वर्णाश्रम-गुणयुत जन सर्व्व। ककरो नहि मन अंकुर गर्व्व॥ ५७॥
प्रजा पुत्र सम कर प्रतिपाल। रामचन्द्र उत्तम महिपाल॥ ५८॥
दशसहस्त्र वर्षाधि राज। कयल राम बसि अवनि-समाज॥ ५९॥
चिरतर जीवन तन आरोग्य। धन-धान्यादिक उत्तम भोग्य॥ ६०॥
अतिपुण्यद श्रीरघुवर-चरित। पाठक श्रोता काँ नहि दुरित॥ ६१॥
श्रीरामक अभिषेक चरित्र। श्रवण पठन धन-करण पवित्र॥ ६२॥
पढ़थि रामायण शुनथि समग्र। प्राप्ति सुपुत्र न मन हो व्यग्र॥ ६३॥
समर-शूर रण निकट न आब। रामचरित काँ सहज स्वभाव॥ ६४॥
बन्ध्या रामायण मन लाब। रजस्वला उत्तम सुत पाब॥ ६५॥
रामायण जे पढ़थि विचारि। सुलभ तनिक कर-गत फल चारि॥ ६६॥
रोग न रहय पाप क्षय जाय। ग्रह-विघ्नादिक दूर पड़ाय॥ ६७॥

रोग का भी डर नहीं था। ५२ न चोर थे, न नास्तिक। किसी को पुत्र-शोक नहीं होता। ५३ सारी प्रजा राम की अर्चना में लगी रहती। सदा उत्तम-उत्तम वस्तुएँ उचित मूल्य में सुलभ थीं। ५४ प्रजा में सभी लोग धर्मानुरागी थे। सबों के मन में सन्तोष था। अकाल का भय नहीं था। ५५ बादल अपेक्षानुसार समय पर बरसता था। धरती पर अनाज-ही-अनाज छा जाता था। ५६ सभी लोग अपने-अपने वर्ण और अपने-अपने आश्रम के कर्तव्यों में लगे थे। किसी के भी मन में अभिमान पैदा नहीं होता था। ५७ राजा राम अपनी प्रजा का पालन पुत्र के समान करते थे। ५८ राम ने धरती पर रहकर दस हज़ार वर्ष राज किया। ५९ राम का चरित सुनने से लम्बी आयु मिलती है, शरीर रोगहीन रहता है, धन-धान्य आदि सभी उत्तम वस्तुएँ भोग के लिए मिलती हैं तथा पढ़नेवाले और सुननेवाले भी सभी पापों से मुक्त होते हैं। ६०-६१ जो राम के अभिषेक की कथा सुनेगा या पढ़ेगा वह धनवान होगा। ६२ जो सारी रामायण पढ़ेगा या सुनेगा उसे अच्छा बेटा होगा, और मन निश्चिन्त रहेगा। ६३ युद्ध-भूमि में उसके सामने कोई वीर आने की हिम्मत नहीं करेगा। रामायण का यह स्वाभाविक माहात्म्य है। ६४ जो बाँझ स्त्री रामायण में चित्त लगायेगी वह रजस्वला होकर अच्छा बेटा पायेगी। ६५ जो ध्यानपूर्वक रामायण पढ़ेगा उसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों फल अनायास प्राप्त होंगे। ६६ उनसे रोग दूर रहेंगे, पाप हट जाएंगे,

मुनि-मण्डली शिष्यसौँ परिवृत, अयला तथा अगस्त्य ॥ ११ ॥
द्वारपाल काँ कहलनि सभ मुनि, कोमल वचन प्रशस्त्य ॥ १२ ॥

॥ जयकरी छन्द ॥

प्रतीहार बुझि सभ मुनि नाम । कहलनि आयल छथि एहिठाम ॥ १३ ॥
नृप काँ आशिष देबक काज । आगत छी मुनि-मण्डलि आज ॥ १४ ॥
द्वारपाल से बुद्धि - विशाल । गेला जतय राम महिपाल ॥ १५ ॥
बद्धाञ्जलि ओ कयल प्रणाम । मुनि-आगमन कहल तहिठाम ॥ १६ ॥
मुनि अगस्ति छथि बहुत चिन्हार । आशिष देता वृत्त छथि द्वार ॥ १७ ॥
द्वारपाल काँ कहलनि राम । आदर सौँ आनू एहि ठाम ॥ १८ ॥
नानारत्न - विभूषित धाम । पूजित मुनि गेला तहि ठाम ॥ १९ ॥
मुनि-अभिमुख प्रभु जोड़ल हाथ । पूजा सविधि कयल रघुनाथ ॥ २० ॥
अर्घ्यादिक उत्तर गोदान । पृथक पृथक मुनिजन सन्मान ॥ २१ ॥
सभ काँ कयलनि राम प्रणाम । दिव्यासन देलनि तहि ठाम ॥ २२ ॥
सभ काँ कुशल पुछल रघुवीर । दिनमणि-वंश-शिरोमणि धीर ॥ २३ ॥
सभ मुनि कहल कुशल सभ ठाम । रावणादि मारल संग्राम ॥ २४ ॥
नहि आश्चर्य धनुष धय हाथ । सकल-लोक-जित श्री रघुनाथ ॥ २५ ॥
अति अद्भुत घननादक मरण । तनिक विजय रण साहस करण ॥ २६ ॥

सर्वज्ञ थे। शिष्यों से घिरे मुनियों का दल आया, ९-११ और प्रशसनीय मीठी बोली में सभी मुनियों ने द्वारपाल से कहा— १२ "हे द्वारपाल, सभी मुनियों का नाम जानकर आप राजा से कहिये कि आज राजा को आशीर्वाद देने के लिए मुनियों का एक दल यहाँ आया हुआ है।" १३-१४ वह समझदार द्वारपाल वहाँ गया जहाँ राजा राम थे। १५ उसने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और मुनियों के आने की बात सुनाई। फिर द्वारपाल ने कहा— १६ "अगस्त्य मुनि जो आपके परम परिचित हैं वे आशीर्वाद देने के लिए द्वार पर उपस्थित हैं।" १७ राम ने द्वारपाल से कहा— "उन सबों को आदर के साथ यहाँ ले आओ।" १८ राजभवन तरह-तरह के रत्नों से सजा हुआ था। सत्कार के साथ मुनि लोग वहाँ आये। १९ राम ने मुनियों के सामने हाथ जोड़ खड़े हुए और उचित रीति से उनकी पूजा की। २० अलग-अलग हरेक मुनि को पहले आदरपूर्वक अर्घ्य आदि दिये, और अन्त में गोदान दिया। २१ फिर सबों को प्रणाम किया और वहाँ उन्हें बैठने के लिए दिव्य आसन दिये। २२ तब सूर्यवंशियों में श्रेष्ठ धीर राम ने सबों से कुशल पूछी। २३ सभी मुनियों ने कहा— "सभी जगह कुशल है। आपने युद्ध में रावण आदि राक्षसों का संहार किया, २४ यह अचरज की बात नहीं है कि आपने हाथ में धनुष लेकर तीनों भुवनों को जीता। २५ मेघनाद मारा गया, यह एक

उत्तरकाण्ड

॥ अथ प्रथमोऽध्यायः ॥

॥ दोहय छन्द ॥

जय रघुवंश-तिलक कौशल्या-नन्दन-दशरथ-बालक ॥ १ ॥
दशमुख-नाशक पङ्कज-लोचन, जय मुनिजन-प्रतिपालक ॥ २ ॥

॥ चौपाइ ॥

एक समय गिरिराज-कुमारि । शिव कां पूछल समय विचारि ॥ ३ ॥
रावणादि कां मारल राम । राजा भेला अयोध्या-धाम ॥ ४ ॥
भूतल रहला ओ कति वर्ष । श्रीसीता सह वास सहर्ष ॥ ५ ॥
से कयलनि महि-मण्डल त्याग । तृप्ति न कथा सुधा-सम लाग ॥ ६ ॥
शिव कहलनि शुनु प्रिया महेशि । कथा पुछल अछि अपनै बेसि ॥ ७ ॥
राम अकण्टक महि-सुरराज । मुनिगण अयला आशिष काज ॥ ८ ॥

॥ दोहय छन्द ॥

विश्वामित्र कण्व दुर्व्वासा, सित भृगु शिष्य अनेक ॥ ९ ॥
अत्रि अङ्गिरा वामदेव सभ, निर्मल सकल विवेक ॥ १० ॥

पहला अध्याय

रावण के जन्म की कथा

रघु के कुल में श्रेष्ठ, कौशल्या और दशरथ के पुत्र, रावण का संहार करनेवाले, ऋषि-मुनियों की रक्षा करनेवाले कमलनयन राम की जय हो । १-२ एक समय उचित अवसर पाकर हिमालय की बेटी गिरिजा ने शिव से पूछा— ३ "राम ने रावण को मारा । अयोध्या में राजा हुए । ४ सीता के साथ आनन्दपूर्वक रहते हुए धरती पर कई बरस बिताये । ५ फिर वे पृथ्वी को छोड़ चले गये । यह कथा तो मुझे अमृत के समान भाई । सुनते-सुनते तृप्ति ही नहीं हो रही है ।" ६ शिव ने कहा— "हे प्रिये गिरिजा, तुमने अच्छा प्रसंग चलाया है, सुनो । ७ राजा राम निष्कंटक हो धरती पर इन्द्र के समान राज करते थे । एक दिन उन्हें आशीर्वाद देने के लिए मुनियों की एक मण्डली आई । ८ इस मण्डली में विश्वामित्र, कण्व, दुर्वासा, सित, भृगु, अत्रि, अंगिरा, वामदेव, अगस्त्य और उनके शिष्य थे । ये सभी निष्कलुष और

तृणविन्दुक कन्या अज्ञात । मुनि-दृग-गोचर भेली प्रात ॥ ४१ ॥
भेलि गर्भिणी मन सन्ताप । गेलि तहाँ जहाँ छलथिनि बाप ॥ ४२ ॥
से राजर्षि बुझल वृत्तान्त । ज्ञान-नयन सौं मुनिक नितान्त ॥ ४३ ॥
कन्या लय तृणविन्दु उवार । मुनि पुलस्त्य काँ कयल सदार ॥ ४४ ॥
मुनिसेवा मे लागलि रहथि । करथि टहल से मुनि जे कहथि ॥ ४५ ॥
सेवा - तुष्ट देल वरदान । कन्या काँ से मुनि भगवान ॥ ४६ ॥
उभयवंश-वर्द्धन एक तनय । हयतौ सदाचार सद्विनय ॥ ४७ ॥
विश्रुत - लोक विश्रवा नाम । तनिकाँ पुत्र भेला गुणधाम ॥ ४८ ॥
पिता - तुल्य तप ब्रह्मज्ञान । ख्यात महामुनि तपोनिधान ॥ ४९ ॥
देखल शीलादिक समुदाय । भरद्वाज तनि कयल जमाय ॥ ५० ॥
तहि कन्या मे तनय धनेश । जनिकाँ अति प्रिय मित्र महेश ॥ ५१ ॥
विदित विरञ्चिक बहुत दुलार । पितातुल्य तप कयलअपार ॥ ५२ ॥
तनिकाँ विधि देलनि वरदान । वित्त अखण्डित वर विज्ञान ॥ ५३ ॥

कभी न आई । ४० पर ऋषि तृणविन्दु की लड़की, जो यह बात नहीं जानती थी, सुबह ही मुनि पुलस्त्य की नजर के सामने आ गई । ४१ वह गर्भवती हो गई, यह जान बड़ी चिन्तित हुई और वहाँ गई जहाँ उसके पिता थे । ४२ राजर्षि तृणविन्दु अपनी सर्वज्ञ दृष्टि से मुनि पुलस्त्य का सारा हाल जान गये । ४३ फिर उदार विचार वाले ऋषि तृणविन्दु ने अपनी कन्या को ले जाकर मुनि पुलस्त्य के हाथ सौंप दिया । पुलस्त्य ने उससे विवाह कर लिया । ४४ तब से वह लड़की मुनि पुलस्त्य की सेवा में लग गई, और मुनि जो कुछ कहते वह सारा काम पूरा कर देती । ४५ सेवा से प्रसन्न हो मुनि पुलस्त्य ने उसे वरदान दिया— ४६ "तुम्हें एक पुत्र होगा जो माता और पिता दोनों के वंशों को बढ़ाएगा, अच्छे आचरणवाला तथा विनीत होगा । ४७ उस कन्या से विश्रवा नाम का पुत्र हुआ । वह तीनों भुवनों में विख्यात और परम गुणवान् हुआ । ४८ वह अपने पिता के समान ही तपस्वी और ब्रह्मज्ञानी निकला । वह अपने तप के कारण महामुनि के रूप में विख्यात हो गया । ४९ भरद्वाज मुनि ने उस विश्रवा में शील आदि सभी वांछित गुण देखकर उसे अपना जमाई बना लिया । ५० विश्रवा को उस कन्या में एक पुत्र धनेश हुआ, जिसके शिव प्यारे मित्र थे । ५१ उसे ब्रह्मा का स्नेह बहुत मिलता । उसने भी अपने पिता के समान भारी तपस्या की । ५२ तपस्या से प्रसन्न हो ब्रह्मा ने उसे वर दिया— "तुम अक्षय सम्पत्ति वाले होओगे, और तुम्हें उत्तम ज्ञान प्राप्त होगा ।" ५३ ब्रह्मा से यह वर पाकर वह लड़का

सुनि मुनि-बचन कहल श्रीराम। मेघनाद छल की बलधाम॥ २७॥
कुम्भकर्ण रावण अति घोर। कालहु काँ मन जनय न थोर॥ २८॥
काँपथि थर थर निकट न जाथि। देखयित तनिकाँ गमहि पड़ाथि॥ २९॥
मेघनाद तनिकहु सौँ शूर। कहल जाइ अछि नहि किछु फूर॥ ३०॥

॥ दोहा ॥

कहलनि तखन अगस्ति मुनि, शुनु ईश्वर रघुनाथ॥ ३१॥
जन्म कर्म्म वरदान विधि, जे पाओल दशमाथ॥ ३२॥

॥ चौपाइ ॥

मुनि पुलस्त्य विधि-तनय महान। मेरु निकट तप कर विद्वान॥ ३३॥
तृणविन्दुक आश्रम मे जाय। कृतयुग मे एक धर्म्म सहाय॥ ३४॥
सुर-गन्धर्व्व-कन्यका आब। अति रमजोयक आश्रम पाब॥ ३५॥
गाबय नाचय वाद्य बजाय। हसय बहुत नहि एक लजाय॥ ३६॥
बढ़ि निरहटि सटि मुनि लग जाय। अतिशय उनमति युवता पाय॥ ३७॥
मुनि मन बाढ़ल अतिशय कोप। करति तपोविधि अनु ई लोप॥ ३८॥
हमर दृष्टिपथ अयोती नारि। गभवती हयतीह कुमारि॥ ३९॥
बड़ दुःप्रथा कथा जे शून। केओ हुनि मुनि लग आब न पून॥ ४०॥

अद्भुत घटना है। युद्ध में उसे जीतना साहस की बात है।" २६ मुनियों की यह बात सुनकर राम ने कहा— "मेघनाद अद्भुत बलवान था। २७ कुम्भकर्ण और रावण भी बहुत वीर थे। उसके सामने काल भी घबरा जाता था। २८ डर से काँपता रहता था। उसके पास न जा सकता था। उसे देखते ही चुपके से भाग जाता। २९ पर मेघनाद तो उनसे भी अधिक बहादुर कहा जाता है, जो यथार्थ बात है।" ३० तब अगस्त्य मुनि ने कहा— "हे भगवान् राम, सुनिए। ३१ मैं बताता हूँ कि रावण का जन्म कैसे हुआ, उसने क्या काम किया और कैसे वरदान प्राप्त किया। ३२ ब्रह्मा के पुत्र पुलस्त्य नाम के एक मुनि, जो बड़े विद्वान् थे, मेरु पर्वत के पास तृणबिन्दु के आश्रम में जाकर तपस्या करने लगे, क्योंकि कलियुग में तो धर्म ही सहारा है। ३३-३४ देवों और गन्धर्वों की लड़कियाँ उस आश्रम को परम आकर्षक पाकर वहाँ आतीं, ३५ बाजे बजा-बजाकर नाचतीं, गातीं और खिलखिला-खिलखिलाकर हँसतीं। एक भी लजाती नहीं। ३६ वे बहुत ही ढीठ हो मुनि के एकदम निकट चली जातीं। वे जवानी पाकर उद्धत-सी हो गई थीं। ३७ मुनि पुलस्त्य के मन में बड़ा क्रोध हुआ। उन्हें लगा कि ये लड़कियाँ उनकी तपस्या को भंग कर देंगी। ३८ उन्होंने शाप दिया— "जो लड़की मेरी नजर के सामने आएगी वह क्वाँरी ही गर्भवती हो जाएगी।" ३९ जिस-जिस लड़की के कान में यह कुशीति की बात पड़ी, वह फिर उन मुनि के सामने

कन्या कहल कहू हे तात। करब न बचनक प्रत्याख्यात ॥ ६९ ॥
ब्रह्म-कुलोद्भव वर करु वरण। तनय हयत सभ सङ्कट-हरण ॥ ७० ॥
धनदक सदृश रूप-सम्पन्न। करु गय पुत्रि पुत्र उत्पन्न ॥ ७१ ॥
विश्ववाक से आश्रम जाय। ठाढ़ि भेलि चिर समय लजाय ॥ ७२ ॥
धरणी लिखथि चरण सौं ठाढ़ि। चिन्ता एकाकिनि मन बाढ़ि ॥ ७३ ॥
अये के अहँ मुनि पुछल कि काज। कर जोड़ि कहल रहल नहि व्याज ॥ ७४ ॥
ध्यानहिँ बिदित हयत वृत्तान्त। आइलि छी एकसरि एकान्त ॥ ७५ ॥
मुनि कहलनि कयलह उत्पात। पुत्रार्थिनि मानल हो जात ॥ ७६ ॥
अयिलिह आश्रम दारुण काल। दारुण दुइ सुत लाभ विशाल ॥ ७७ ॥
कहल केकसी अति अन्याय। लोह सुवर्ण परशमणि पाय ॥ ७८ ॥
अपनहुँ सौं जौं एहने हयत। मर्य्यादा धर्मक उठि जयत ॥ ७९ ॥
मुनि पुन कहलनि सभहिक छोट। महा-भागवत से सुत गोट ॥ ८० ॥
करथि केकसी निज निर्व्वाह। बितल कतो दिन चलल प्रवाह ॥ ८१ ॥
रावण लेल प्रथम अवतार। बीस बाहु दश गोट कपार ॥ ८२ ॥
धरणी-कम्प बहुत उतपात। कुम्भकर्ण दोसर सुत जात ॥ ८३ ॥

"तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ।" ६७-६८ लड़की ने कहा— "हे पिताजी, जो कहना चाहें, कहिये। आपकी बात मैं कभी न टालूँगी।" ६९ पिता ने कहा— "ब्रह्मा के कुल में पैदा हुए महानुभाव को तुम अपना पति बनाओ। उनसे तुम्हें सभी संकटों को दूर करनेवाला बेटा होगा। ७० हे बेटी, तुम इन्हीं धनेश के समान रूपवान् पुत्र जनो।" ७१ यह सुनकर वह लड़की विश्रवा के आश्रम में गई और बहुत देर तक खड़ी रही। ७२ वह पाँव के नाखून से धरती पर लकीरें बनाती। अकेली में उसके मन में चिन्ता की बाढ़ आ गई थी। ७३ मुनि विश्रवा ने पूछा— "अरी, तुम कौन हो? तुम्हें क्या काम है?" लड़की ने हाथ जोड़कर खुलकर सारी बात कह दी— ७४ "आपको तो सारा हाल योगबल से मालूम ही होगा। मैं यहाँ अकेली एकान्त में आई हूँ।" ७५ मुनि ने कहा— "तुमने तो झंझट पैदा कर दिया। लगता है तुम्हारे मन में पुत्र पाने की कामना है। ७६ तुम दारुण समय में आश्रम में आई हो, इसलिए तुम्हें दो बड़े दारुण पुत्र होंगे।" ७७ उस लड़की केकसी ने कहा— "अजीब बात है। पारस पाकर भी लोहा सोना नहीं होगा? ७८ यदि आपका संग करने से भी ऐसा ही होगा तो धर्म की प्रतिष्ठा क्या रह जाएगी।" ७९ यह सुनकर मुनि ने आगे कहा— "हाँ, जो सबसे छोटा लड़का होगा वह परम भागवत (भगवद्भक्त) होगा।" ८० इसके बाद वह केकसी अपना गुजर करने लगी। कुछ दिन बीते। फिर सन्तान होना शुरू हुआ। ८१ सबसे पहले रावण पैदा हुआ जिसके दस सिर और बीस बाँहें थीं। ८२ उसके जनमते ही धरती काँप उठी तथा और भी

॥ सोरठा ॥

वर विरञ्चि सौं पाबि, ब्रह्म-दत्त पुष्पक चढ़ल ॥ ५४ ॥
विश्रवाक लग आबि, कहल तपस्या-फल सकल ॥ ५५ ॥

॥ चौपाइ ॥

ब्रह्मा देल अखण्डित बित्त । वासस्थान न हमर निमित्त ॥ ५६ ॥
हिंसा-शून्य रहो जत जाय । देल जाय सुखवास देखाय ॥ ५७ ॥
अछि सुत थल भल अहँइक योग । लङ्का बसू करू धन भोग ॥ ५८ ॥
विश्वकर्म्म - निर्म्मित ओ वास । परक कदापि परत नहि त्रास ॥ ५९ ॥
कहइत छी लङ्का वृत्तान्त । भेल सुरासुर-समर नितान्त ॥ ६० ॥
विष्णुक त्रासित असुर पड़ाय । रहल रसातल जाय नुकाय ॥ ६१ ॥
सागरमध्य पुरी मे वास । कयल धनद सुखमय निस्त्रास ॥ ६२ ॥
भेला बहुत दिन ततहि धनेश । दिन दिन उज्वल भेल सुदेश ॥ ६३ ॥
राक्षस एक सुमाली नाम । अयला एक समय तहिठाम ॥ ६४ ॥
युवती कन्या तनिकाँ सङ्ग । जनु तनु प्रथम निवास अनङ्ग ॥ ६५ ॥
लोदेवी सम तनिकर रूप । चिन्तातुर राक्षस चुपचूप ॥ ६६ ॥
पुष्पक चढ़ल धनेश निहारि । राक्षस अपना चित्त बिचारि ॥ ६७ ॥
कन्या काँ राक्षस से कहल । तोहरा समय कहय किछु रहल ॥ ६८ ॥

ब्रह्मा के दिये हुए पुष्पक रथ पर चढ़कर अपने पिता विश्रवा के पास आया और अपनी तपस्या का परिणाम उसे बताया। वह बोला— ५४-५५ "ब्रह्मा ने मुझे अक्षय सम्पत्ति तो दे दी, पर मेरे लिए कोई वासस्थान नहीं दिया। ५६ जहाँ जाकर मैं निष्कंटक रहूँ, ऐसा सुखद वासस्थान कृपया बता दीजिए।" ५७ विश्रवा ने कहा— "हे पुत्र, तुम्हारे ही योग्य एक अच्छा स्थान है लंका। वहाँ जाकर बसो और वर में मिली सम्पत्ति का भोग करो। ५८ वह नगर विश्वकर्मा का बनाया हुआ है। वहाँ कभी शत्रु से डर नहीं है। ५९ सुनो, मैं लंका का इतिहास बताता हूँ। एक समय देवों और दानवों में भारी लड़ाई हुई। ६० विष्णु से डरकर दानव भाग गये और रसातल में जा छुपे। ६१ कुबेर ने समुद्र में एक वासस्थल बनाया जो सुखद भी था और निरापद भी। ६२ कुबेर बहुत दिनों तक वहीं रहे। वह स्थान दिन-पर-दिन उजागर होता गया। ६३ एक दिन सुमाली नाम का एक राक्षस वहाँ आया। ६४ उसके पास एक सयानी लड़की थी। वह बड़ी सुन्दरी थी, मानो कामदेव ने प्रथम-प्रथम उसी के शरीर में निवास किया हो। ६५ उसका रूप भगवती लक्ष्मी के समान था। और वह सुमाली राक्षस चिन्ता में मग्न गुमसुम वहाँ बैठा था। ६६ उसने पुष्पक विमान पर कुबेर को देखा और अपने मन में कुछ सोचकर अपनी लड़की से कहा—

॥ अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

॥ जयकरी छन्द ॥

अथ एक समय तहाँ वित्तेश । राजित पिता वास जहि देश ॥ १ ॥
पुष्पक चढ़ल भानु-सम राज । राज-राज सम्राज विराज ॥ २ ॥
तनिकर विभव देखल सतमाय । नाम केकसी अवसर पाय ॥ ३ ॥
रावण काँ से देल देखाय । कतय अहाँ कहाँ धनपति भाय ॥ ४ ॥
करु गय सुत अहँ तेहन उपाय । होउ हुनक सन कर्म्म बढ़ाय ॥ ५ ॥
शुनि रावण मन बाढ़ल कोप । कयल प्रतिज्ञा मन आरोप ॥ ६ ॥
तनि सन होयब हम की बाढ़ि । करब तपस्या साहस गाढ़ि ॥ ७ ॥
माता मन नहि चिन्ता करब । मनस्ताप समटा हम हरब ॥ ८ ॥
रावण सानुज अनि मुनिवर्ण । फल सिध्यर्थ गेला गोकर्ण ॥ ९ ॥
तप दुष्कर मे दृढ़ मन धयल । निज निज नियम तिनू जन धयल ॥ १० ॥
दश हजार गत भय गेल वर्ष । कुम्भकर्ण तप कयल सहर्ष ॥ ११ ॥
कयल विभीषण तप बड़ गाढ़ । एक चरण-भर रहला ठाढ़ ॥ १२ ॥
पाँच बीति गेल पाँच हजार । सत्य-धर्म्म-रत सद्व्यवहार ॥ १३ ॥

दूसरा अध्याय

रावण आदि की तपस्या, वर पाना तथा विवाहादि वृत्तान्त

एक समय धनेश पुष्पकविमान पर चढ़कर सूरज के समान चमकते हुए वहाँ विराजमान थे जहाँ पिता ने उन्हें वास दिया था। १-२ मौका पाकर उनकी सौतेली माता केकसी ने उनका वैभव देखा। ३ उसने अपने पुत्र रावण को दिखाया और कहा— "कहाँ तुम और कहाँ तुम्हारा भाई धनेश। ४ हे पुत्र, तुम भी ऐसा उपाय करो जिससे तुम अपने कर्म के बल पर उनकी बराबरी कर सको।" ५ यह सुनकर रावण का मन आन से भर गया। उसने मन में दृढ़ संकल्प किया— ६ "मैं उनके समान क्या, गाढ़ी तपस्या और साहस करके उनसे अधिक उन्नति कर दिखाऊँगा। ७ हे माता, तुम मन में चिन्ता मत करना। मैं तुम्हारे मन का सारा सन्ताप दूर करूँगा।" ८ छोटे भाई कुम्भकर्ण और विभीषण के साथ रावण मुनि का वेश धारणकर अपनी कामना पूरी करने के लिए गोकर्ण नामक तीर्थ गया। ९ तीनों अपने-अपने नियमों का पालन करते हुए कठोर तपस्या में लग गये। १० दस हज़ार वर्ष बीत गये, कुम्भकर्ण अथक रूप से तप करता रहा। ११ विभीषण ने तो उससे भी कड़ी तपस्या की। वे एक ही टाँग पर खड़े रह गये। १२ पाँच हज़ार वर्ष बीत गये। वे सच्चे धर्म में लगे और अच्छा व्यवहार करते

पर्व्वत सन तन कहल न जाय। देखितहिँ के नहि लोक डराय॥ ८४॥
सूर्प्पनखा भेली उतपन्नि। जेहने भाय तेहनि अनमन्नि॥ ८५॥
लेल विभीषण वर अवतार। अतिसुन्दर सुन्दर व्यवहार॥ ८६॥
कर्म्म - परायण नियताहार। स्वाध्यायी से परमोदार॥ ८७॥
जन - भय - कर रावण तन बाढ़। कुम्भकर्ण पर्व्वत सन ठाढ़॥ ८८॥
सञ्चर ऋषिगण काँ धय खाथि। कुम्भकर्ण नहि कतहु अघाथि॥ ८९॥
कहल राम काँ गत वृत्तान्त। कि कहब अपने लक्ष्मीकान्त॥ ९०॥
साक्षी सर्व्व हृदय मे वास। नित्योदित निर्म्मल निस्त्रास॥ ९१॥
प्रभु सर्वज्ञ कहल किछु आबि। अपनेँक दयादृष्टि केँ पाबि॥ ९२॥

॥ सोरठा ॥

अति प्रसन्न-मन राम, कुम्भज मुनि सौँ से कहल॥ ९३॥
अपनहुँ छी निष्काम, हमर कृपा निर्भय सदा॥ ९४॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे उत्तरकाण्डे प्रथमोऽध्यायः ॥

बहुत-सारे अपशकुन हुए। दूसरा बेटा कुम्भकर्ण हुआ। ८३ उसका शरीर पर्वत-जैसा विशाल था; कौन ऐसा होगा जो देखते ही डर न जाए। ८४ उसके बाद सूर्पनखा पैदा हुई, जो भयंकरता में हू-ब-हू वैसी ही थी जैसा उसका भाई। ८५ उसके बाद विभीषण ने जन्म लिया जो देखने में भी परम सुन्दर थे और व्यवहार में भी। ८६ वे धर्म में रत रहते, आहार-विहार में संयम बरतते, शास्त्रों का अध्ययन करते रहते और बड़े उदार हृदय के थे। ८७ लोगों को देखते ही डरा देनेवाला रावण का शरीर बढ़ता गया और कुम्भकर्ण पहाड़ के समान खड़ा हो गया। ८८ जहाँ-तहाँ घूमता-फिरता और ऋषियों को पकड़-पकड़कर खाता। कुम्भकर्ण कहीं भी अघाता नहीं।" ८९ अगस्ति रावण की इतनी पूर्वकथा सुनाकर बोले— "क्या सुनाऊं, आप तो भगवान् विष्णु के अवतार हैं। ९० सबों के हृदय में साक्षी के रूप में वास करते हैं। सदा प्रकट रहते हैं, निष्कलुष हैं, और निर्भय हैं। ९१ हे प्रभु, आप तो सर्वज्ञ हैं। फिर भी आपकी दयादृष्टि पाकर मैंने आकर कुछ कहा।" ९२ अगस्ति मुनि से यह सुनकर राम परम प्रसन्न हुए और कहा— ९३ "आप भी तो साधना द्वारा कामना से रहित हो गये हैं। आप सदा मेरी कृपा से निःशंक रहेंगे।" ९४

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में उत्तरकाण्ड का पहला अध्याय समाप्त ॥

विधि सन्तुष्ट अमरता देल। सज्जन वचन सत्य शुनि लेल ॥ २८ ॥
कुम्भकर्ण - तट गेला जखन। सुरपति काँ वार्त्ता भेल तखन ॥ २९ ॥
थर थर सकल देव-गण काँप। कुम्भकर्ण बुझि उग्र-प्रताप ॥ ३० ॥
जौं विधि हिनकाँ देल वरदान। एक मुनिक नहि बाँचत प्राण ॥ ३१ ॥
जयता सभ काँ सत्वर खाय। चलु चलु जतय शारदा माय ॥ ३२ ॥
विधि करइत छथि बड़ अन्याय। देवि शारदा होउ सहाय ॥ ३३ ॥
कुम्भकर्ण काँ कण्ठ समाउ। हमरा सभहिक प्राण बचाउ ॥ ३४ ॥

॥ सोरठा ॥

कहल विधाता आबि, कुम्भकर्ण वर माँगु अहँ ॥ ३५ ॥
मन-वाञ्छित फल पाबि, जाउ छोड़ि घर कठिन तप ॥ ३६ ॥
कण्ठ शारदा-वास, कुम्भकर्ण माँगल तखन ॥ ३७ ॥
सभ सुर-मन हो त्रास, की मँगताह विरञ्चि सौं ॥ ३८ ॥

॥ जयकरी छन्द ॥

निद्रा मे बीतय षट मास। एक दिन भोजन विषय-विलास ॥ ३९ ॥
विधि देलनि वर से तहिठाम। हृष्ट देव जपि देवी नाम ॥ ४० ॥

प्रसन्न होकर उन्हें अमर होने का वर दिया। सज्जन विभीषण ने अमर होने की सच्ची बात सुन ली। २८ ज्यों ही ब्रह्मा कुम्भकर्ण के पास पहुँचे त्यों ही इन्द्र को खबर हो गई। २९ सभी देवता लोग भय से काँपने लगे। वे जानते थे कि कुम्भकर्ण का प्रताप बड़ा उग्र है। ३० वे सोचने लगे— 'यदि ब्रह्मा ने इसे वरदान दे दिया तो एक भी मुनि के प्राण न बचेंगे। ३१ यह तो सबको झटपट खा जाएगा। चलिये, अब हम लोग माँ सरस्वती के पास चलें।' ३२ वे सरस्वती के पास जाकर बोले— "ब्रह्मा बड़ा अनर्थ करने जा रहे हैं। हे देवी सरस्वती, आप हमारी मदद कीजिए। ३३ आप कुम्भकर्ण की वाणी में समा जाइए और हम लोगों के प्राण बचाइए।" ३४ ब्रह्मा ने आकर कहा— "हे कुम्भकर्ण, आप वर माँगिये; ३५ मन में जो कामना हो वह पाकर कठोर तपस्या को छोड़ घर चले जाइयें।" ३६ गले में जब सरस्वती आकर बैठ गई थी, तब कुम्भकर्ण ने वर माँगा। ३७ सभी देवताओं के मन में आतंक था कि यह ब्रह्मा से क्या न क्या वर माँग लेगा। ३८ उसने यह वर माँगा— "यही वर दीजिए कि मैं छः महीने निद्रा में बिताऊँ, केवल एक दिन भोजन और विषय-भोग करूं।" ३९ ब्रह्मा ने ऐसा वर तुरत दे दिया। देवता लोग प्रसन्न हो भगवती सरस्वती का नाम जपने लगे। ४० सरस्वती मुँह से निकल गई कि कुम्भकर्ण पछताने लगा। ४१

दिव्य सहस्र वर्ष हठ ठानि। कर तप रावण अन्न न पानि ॥ १४ ॥
एक सहस्र पूर्ण हो वर्ष। होम करथि शिर अनल सहर्ष ॥ १५ ॥
नव सहस्र वत्सर गत काल। नव शिर होम करथि दशभाल ॥ १६ ॥
काटय लगला निज कर माथ। दौड़ि द्रुहिण तनिकर धर हाथ ॥ १७ ॥
वर माँगू रावण हम वृत्त। तप दुष्कर सौँ होउ निवृत्त ॥ १८ ॥
होइ अमर वर समरहु मारि। देवासुर सौँ कहल विचारि ॥ १९ ॥
नाग सुपर्ण आदि जे यक्ष। समर न हारब हुनक समक्ष ॥ २० ॥
मानव तृण-सम हेतु कि लड़त। बिउटी गजक पाव-तल पड़त ॥ २१ ॥
कहल तथास्तु कयल ततकाल। वत्स सुमुनि अहँ छी दशभाल ॥ २२ ॥
जय गोट कयल होम शिर आगि। सभटा नव नव जायत लागि ॥ २३ ॥
अक्षय हयत जाउ सुख वास। अहँ काँ समक मिटायत त्रास ॥ २४ ॥
गेला विभीषण भक्त समाज। कहल विरञ्चि माँगु वर आज ॥ २५ ॥
विनत विभीषण जोड़ल हाथ। धर्म्महिँ बुद्धि रहय नित नाथ ॥ २६ ॥
कहल विरञ्चि तथास्तु उदार। रावण - अनुजक सत्याचार ॥ २७ ॥

रहे। १३ रावण तो अन्न और जल को भी त्यागकर देवताओं के वर्ष के हिसाब से हज़ार वर्ष साहसपूर्वक तप करता रहा। १४ हर एक हज़ार वर्ष पूरा होने पर रावण हर्ष के साथ अपना एक सिर काटकर आग में हवन कर देता था। १५ इस तरह नौ हज़ार वर्ष बीत गये और रावण ने अपने नौ सिरों को हवन कर दिया। १६ जब दसवाँ सिर भी इस तरह काटने लगा तब ब्रह्मा दौड़कर आये और उसका हाथ पकड़ लिया। १७ उन्होंने कहा— "हे रावण, आप वर माँगिये। मैं देने के लिए तैयार हूँ। अब आगे कठिन तपस्या छोड़िये।" १८ रावण ने सोच-विचार कर कहा— "ऐसा वर दीजिए कि युद्ध में मुझे न देव मार सकें और न दानव। १९ नाग, सपर्ण, यक्ष आदि जो प्राणी हैं उनके सामने तो मैं लड़ाई में कभी हार सकता नहीं। २० मनुष्य तो मेरे सामने तिनके के बराबर है। वह मुझसे क्या लड़ेगा। उसे तो उसी तरह मसल दूँगा जिस तरह हाथी के पाँव के नीचे चींटी।" २१ ब्रह्मा ने कहा— "ऐसा ही होगा।" और तुरत वैसा कर दिया। फिर बोले— "हे वत्स रावण, आप वास्तव में मुनि हैं। २२ जितने सिरों का आपने हवन किया वे सभी फिर नये सिरे से लग जायेंगे। २३ आप जाइए और अक्षय हो सुखपूर्वक रहिय। आपको किसी का भी डर न रहेगा।" २४ तब ब्रह्मा भक्त विभीषण के पास गये और कहा— "आप वर माँगिये।" २५ विभीषण ने झुककर हाथ जोड़े और कहा— "हे प्रभु, मुझे यही वर दीजिए कि चित्त सदा धर्म में लगा रहे।" २६ दयालु ब्रह्मा ने कहा— "वैसा ही हो।" रावण के छोटे भाई विभीषण की यह सच्चाई है। २७ ब्रह्मा ने

॥ चौपाइ ॥

तखन प्रहस्त कहल तहिठाम। शुनु प्रभु रावण अहँ गुण-धाम ॥ ५६ ॥
शुनल शूर काँ नहि सौभ्रात्र। अतिशय कठिन धर्म्म थिक क्षात्र ॥ ५७ ॥
सुर राक्षस थिक कश्यप-तनय। तनिकाँ एक घड़ी नहि बनय ॥ ५८ ॥
अर्थी काँ किछु अर्थे सूझ। शूर सहोदर काँ नहि बूझ ॥ ५९ ॥
कहइतछी नहि वचन अशुद्ध। देव असुर काँ हेतु कि युद्ध ॥ ६० ॥
रावण वचन गेला पतिआय। मानल मन कहइत अछि न्याय ॥ ६१ ॥
रावण कोप नयन बड़ लाल। कहलनि करब असुर प्रतिपाल ॥ ६२ ॥
ई वृत्तान्त कहल नहि माय। ज्ञात भेल हम करब उपाय ॥ ६३ ॥
गिरि त्रिकूट पर रावण जाय। देलनि दूत प्रहस्त पठाय ॥ ६४ ॥
कहब धनाधिप निकट समाद। हमरा हुनका कोन बिवाद ॥ ६५ ॥
हमरा मातामहक निवास। त्यागथु लङ्का जौँ मन त्रास ॥ ६६ ॥
कहलनि धनपति आबथु बेश। कतहु बसब गय बड़ गोट देश ॥ ६७ ॥
स्वस्ति स्वस्ति रावण लङ्केश। आबथु पुर मे करथु प्रवेश ॥ ६८ ॥
धनपति छोड़ल लङ्कागाम। रावण आबि गेला तहि ठाम ॥ ६९ ॥

मन्त्री प्रहस्त ने तुरत कहा— "हे प्रभु रावण, सुनिए। आप परम गुणवान् हैं। ५६ सुना है कि वीर पुरुष को भाईचारा नहीं होता है। राजा का कर्तव्य क्षात्र-धर्म बड़ा कठिन होता है। ५७ देव और दानव दोनों कश्यप की सन्तति हैं, उनमें आपस में एक घड़ी भी मेल नहीं होता है। ५८ जो अर्थ (सांसारिक अभ्युदय) चाहनेवाला है उसे केवल अर्थ दिखाई देता है। वीर पुरुष ऐसा नहीं सोचते कि यह मेरा सगा भाई है।" ५९ रावण ने कहा— "आपका कहना ग़लत नहीं है। देवों और दानवों में लड़ाई का और कारण क्या है?" ६० रावण प्रहस्त की बात का कायल हो गया। मन में सोचा कि यह ठीक कहता है। ६१ बस क्या था, रावण का क्रोध जगा। उसकी आँखें लाल हो गईं। उसने कहा— "मैं असुरों की रक्षा अवश्य करूँगा। ६२ ऐसी बात तो माँ ने कभी नहीं कही। अब मालूम हुआ। मैं प्रतिकार करूँगा।" ६३ ऐसा कहकर रावण त्रिकूट पर्वत पर गया और प्रहस्त को दूत बनाकर भेजा और कहा— ६४ "धनेश के पास मेरा यह संवाद पहुँचाना कि मुझमें और उनमें कोई विवाद तो नहीं है। ६५ लंका मेरे नाना का निवास है। उन्हें यदि मन में मेरा कुछ डर हो तो वे लंका को छोड़ दें।" ६६ ऐसा सुनकर धनेश ने कहा— "अच्छा है, वे आना चाहें तो आवें। देश बहुत बड़ा है। मैं कहीं जाकर बस जाऊँगा। ६७ कल्याण के साथ रावण आवें, लंका के राजा बनें। नगर में प्रवेश करें।" ६८ यह कहकर धनेश ने लंका को छोड़ दिया और रावण वहाँ आ गया। ६९ रावण मन्त्रियों-सहित

गेलि सरस्वति मुख बहराय। कुम्भकर्ण लगला पछताय ॥ ४१ ॥
शुनल सुमाली विधि-वरदान। पलटल हमर भाग्य भगवान ॥ ४२ ॥
प्रहस्तादि काँ सङ्ग लगाय। भय सौं रहित चलल बहराय ॥ ४३ ॥
मिलि मिलि रावण परिचय कहल। वत्स बहुत दिन दुख हम सहल ॥ ४४ ॥
आज पुरल अछि मन-अभिलाष। हरषें कनयित गदगद भाष ॥ ४५ ॥
लङ्कहि छल छी गेलहुँ पड़ाय। अहँक माय काँ एतहि नड़ाय ॥ ४६ ॥
हम दुख सहब अहँक सन नाति। रक्षा करु राखू निज जाति ॥ ४७ ॥
क्रम क्रम सकल चरित से कहल। बड़ सम्पति छल किछु नहि रहल ॥ ४८ ॥
हमरा सबहिं रसातल रहब। अहँक विभव पाबि दुख सहब ॥ ४९ ॥
धनदक ओतय समाद पठाउ। अथवा बल सौं हुनि उपटाउ ॥ ५० ॥
राजा काँ सम्बन्ध कि भाय। राजा दैवक दोसर न्याय ॥ ५१ ॥

॥ रूपमाला छन्द ॥

कहल दशमुख कथा शुनि शुनि, थिकथि धनपति भाय ॥ ५२ ॥
ज्येष्ठ गुरुतर बड़ तपस्वी, करब नहि अन्याय ॥ ५३ ॥
हुनक सन के भाय हमरा, देखू आँखि पसारि ॥ ५४ ॥
अछि बनल घर विश्व भरि, अरि कर समर के भारि ॥ ५५ ॥

सुमाली ने सुना कि ब्रह्मा ने अमुक-अमुक वरदान दिये, वह प्रसन्न हो बोला— "भगवान् ने मेरा भाग्य पलट दिया।" ४२ प्रहस्त आदि को साथ लेकर वह बिना किसी डर के निकलकर चल पड़ा। ४३ रावण से बार-बार मिलकर उसने अपना परिचय दिया— "हे वत्स, मैंने बहुत दिनों तक दुख झेला। ४४ आज मेरे मन की कामना पूरी हुई।"— हर्ष से रोते हुए रुँधे गले से वह बोला— ४५ "मैं लंका में ही था। तुम्हारी माता को वहीं छोड़ मैं भाग गया। ४६ तुम-जैसे नाती के रहते मैं दुख झेलूँ यह ठीक नहीं है। तुम हमारी रक्षा करो और अपने कुल की प्रतिष्ठा बचाओ।" ४७ धीरे-धीरे उसने अपनी सारी कहानी सुनाई— "बहुत धन-सम्पत्ति थी, पर अब तो कुछ नहीं रही। क्या हम लोग रसातल में ही रहेंगे और तुम्हारे विभव को पाकर भी हम लोग दुख झेलते रहेंगे? ४८-४९ धनेश को सवाद दो कि वह हट जाय, अथवा उसे यहाँ से बलपूर्वक हटा दो। ५० राजा का भाईचारा नहीं होता। राजा और देव का अलग रास्ता होता है।" ५१ यह सुनकर रावण ने कहा— "धनेश मेरे भाई हैं। ५२ वे मुझसे बड़े हैं, बड़े तपस्वी हैं। उनके प्रति मैं अन्याय नहीं करूँगा। ५३ आंख खोलकर देखिये, उनके समान मेरा कौन भाई है? ५४ संसार भर में घर बहुत जगह बने हुए हैं। इसके लिए शत्रु से लड़ाई में युद्ध करना ठीक न होगा।" ५५ तब

धर्म्मराज शैलूष महान। तनिकाँ कन्या देल भगवान ॥ ८५ ॥
सरमा नाम विभीषण-दार। सकल सुलक्षण शोभागार ॥ ८६ ॥

॥ सोरठा ॥

पुत्र भेल बलवान, मन हर्षित मन्दोदरी ॥ ८७ ॥
गर्ज्जल मेघ-समान, मेघनाद तें नाम छल ॥ ८८ ॥

॥ चौपाइ ॥

कुम्भकर्ण कह बड़का भाय। निद्रा सौं ताकल नहि जाय ॥ ८९ ॥
रावण देल गुहा बनबाय। कुम्भकर्ण सुख सुतला जाय ॥ ९० ॥
रावण भ्रमण करय लगलाह। सभटा करथि कर्म्म अधलाह ॥ ९१ ॥
मुनि सज्जन काँ मारथि जाय। रावण करथि बहुत अन्याय ॥ ९२ ॥
धनपति शुनल दशानन कर्म्म। शिव शिव रावण करथि अधर्म्म ॥ ९३ ॥
कहा पठाओल दूत देआय। कह जनु रावण अहँ अन्याय ॥ ९४ ॥
शुनि रावण धनपति दिश टूटि। लेल जीति कत सम्पति लूटि ॥ ९५ ॥
पुष्पक रथक कयल से हरण। खल उपदेश करब थिक मरण ॥ ९६ ॥
यम ओ वरुण पुरी निर्भीति। रावण लेलनि सभ कें जीति ॥ ९७ ॥
स्वर्ग लोक रावण गेलाह। मघवा युद्धोद्यत भेलाह ॥ ९८ ॥
सकल देव सुरपति संग्राम। रावण काँ बाँधल तेँहिठाम ॥ ९९ ॥
से शुनि मेघनाद तत जाय। देल पिताक बाँध कटबाय ॥१००॥

थी ८४ धर्मराज शैलूष के भगवान् की कृपा से एक लड़की हुई थी। उसका नाम सरमा था। वह सभी शुभ लक्षणों से युक्त और सुन्दरी थी। उसका विवाह विभीषण से हुआ। ८५-८६ मन्दोदरी के एक बेटा हुआ। वह प्रसन्न हुई। वह बच्चा बड़ा बलवान था। ८७ जनमते ही वह मेघ की तरह गरजा, इस लिए उसका नाम मेघनाद पड़ा। ८८ कुम्भकर्ण ने कहा—"हे बड़े भाई, मुझे तो नींद से आँखें खुलती ही नहीं हैं।" ८९ रावण ने एक गुफा बनवा दी और कुम्भकर्ण वहाँ जाकर सुख से सो गया। ९० रावण घूमने लगा और सारे कुकर्म करने लगा। ९१ मुनियों और भले लोगों को जा-जाकर मारता और अन्याय करता। ९२ धनेश ने रावण की करनी सुनी कि वह बड़ा पापकर्म कर रहा है। ९३ उसने दूत के द्वारा कहला भेजा—"हे रावण, इस तरह अन्याय मत करो।" ९४ सुनते ही रावण आग-बबूला हो, हमला कर, उसकी सम्पत्ति और पुष्पकविमान छीन लिया। दुष्ट को उपदेश देना मानो मौत को बुलाना है। ९५-९६ उसने यम और वरुण की नगरी में घुसकर सबको जीत लिया। फिर रावण स्वर्गलोक पहुँचा और इन्द्र से भी लड़ने को तैयार हो गया। ९७-९८ इन्द्र के साथ उस लड़ाई में देवों ने मिलकर रावण को वहीं बाँध रखा। ९९ खबर पाकर मेघनाद वहाँ

दशमुख कयलनि लङ्का-वास। मन्त्री सहित रहित-मन-त्रास ॥ ७० ॥
पुछलनि धनद पिता काँ जाय। लङ्का सौँ अयलहुँ बहराय ॥ ७१ ॥
छोड़ि देल रावण काँ धाम। कयल न एक वचन संग्राम ॥ ७२ ॥
जाउ कहाँ से भेद निदेश। कहल पिता जत देव महेश ॥ ७३ ॥
आज्ञा सुनि गेला कैलाश। कयल तपस्या कत दिन बास ॥ ७४ ॥
तुष्ट महेश देल वरदान। अलका तनिकाँ बासस्थान ॥ ७५ ॥
शिव - पालित भेला दिक्पाल। मित्र महेशक भाग्य विशाल ॥ ७६ ॥

॥ सोरठा ॥

सकल लोक सन्ताप, कर रावण निज-गण-सहित ॥ ७७ ॥
दिन दिन बाढ़ प्रताप, निश्शंसय मन नहि मरण ॥ ७८ ॥

॥ चौपाइ ॥

सूर्पनखा काँ भेल विवाह। कालखञ्ज सौँ बड़ उत्साह ॥ ७९ ॥
विद्युज्जिह्व तनिक छल नाम। मायाधिनि बड़ लङ्कागाम ॥ ८० ॥
मय देल रावण कन्या दान। मन्दोदरी नाम सविधान ॥ ८१ ॥
देलनि अमोघ शक्ति कर जाय। दितिसुत रावण जानि जमाय ॥ ८२ ॥
वैरोचन दौहित्री आनि। कुम्भकर्ण काँ देल सन्मानि ॥ ८३ ॥
वृत्रज्वाला कन्या नाम। लोक विदित छल अछि सभ ठाम ॥ ८४ ॥

निःशंक हो लंका में रहने लगा। ७० उधर धनेश ने पिता से जाकर पूछा— "मैं तो लंका को छोड़ चला आया। ७१ वह स्थान रावण के लिए छोड़ दिया। एक शब्द भी विवाद नहीं किया। ७२ अब आज्ञा दीजिए कि मैं कहाँ जाऊँ ?" पिता ने कहा— "वहाँ जाओ जहाँ भगवान् शिव हैं।" ७३ पिता की आज्ञा सुनकर वे कैलास चले गये। बहुत दिनों तक वहाँ रहते हुए तपस्या की। ७४ शिव ने प्रसन्न हो उन्हें वरदान दिया कि उन्हें निवास के लिये अलकापुरी मिलेगी। ७५ शिव का संरक्षण पाकर वे दिक्पाल बन गये शिव के मित्र हुए और उनका भाग्य चमक गया। ७६ इधर अपने दल-बल सहित रावण सभी लोगों को सताने लगा। ७७ उसका पराक्रम दिन-पर-दिन बढ़ता गया। उसके मन में मरण की कोई आशंका न रही। ७८ सूर्पनखा का विवाह बड़ी धूमधाम के साथ कालखंज से हुआ। ७९ उस कालखंज का नाम विद्युज्जिह्व (बिजली-सी जीभ वाला) था। लंका जादू की नगरी थी। ८० मय ने मन्दोदरी नाम की अपनी बेटी विधानपूर्वक रावण को दी। ८१ दिति के पुत्र मय ने जमाई समझकर रावण को अपनी अमोघ शक्ति (कभी न चूकनेवाली बरछी) दी। ८२ वैरोचन ने अपनी दौहित्री (नातिन) को सम्मानपूर्वक कुम्भकर्ण के साथ ब्याह दिया। ८३ उस कन्या का नाम वृत्रज्वाला था। वह इस नाम से सब जगह विख्यात

कुम्भकर्ण गिरि-सन्निभ जोति । राखल विश्व चिरन्तन रीति ॥ ११६ ॥
अपनैं नारायण भगवान । विभु विश्वम्भर सर्व्वनिदान ॥ ११७ ॥
नाभिकमल ब्रह्मा उत्पन्न । मुख सौं अग्नि वचन सम्पन्न ॥ ११८ ॥
बाहुयुगल सौं सभ जन-पाल । नयनैं रवि शशि भेला विशाल ॥ ११९ ॥
दिशा विदिश कर्णहि सौं जात । घ्राण सौं प्राण वायु विख्यात ॥ १२० ॥
तथा अश्विनी युगल कुमार । जङ्घादिक सौं लोकप्रचार ॥ १२१ ॥
भेल उदर सौं सागर चारि । स्तन सौं वरुण तथा पाकारि ॥ १२२ ॥
बालखिल्य - गण भेल उत्पन्न । ऊर्द्धरेत सद्गुण - सम्पन्न ॥ १२३ ॥
भेल मेढ्र सौं यम-उतपत्ति । गुद सौं मरणक सर्व्व विपत्ति ॥ १२४ ॥
अहँक कोप रुद्रक अवतार । अस्थि सौं पर्व्वत अति विस्तार ॥ १२५ ॥
कच सौं जलद रोम सौं सर्व्व । औषधि भेल अनन्त निखर्व्व ॥ १२६ ॥
नख - संजात स्वरादिक भेल । अपनै विश्वरूपता लेल ॥ १२७ ॥
स्थावर जङ्गम जत संसार । सभ अपनहिं बाहर व्यवहार ॥ १२८ ॥

॥ दोहा ॥

अपनैक बल पिब अमृत सुर, सकल यज्ञ मे जाय ॥ १२९ ॥
भासमान रवि चन्द्रमा, अपनैंक भा काँ पाय ॥ १३० ॥

को लक्ष्मण ने मारा । ११५ पर्वत के समान विशालकाय कुम्भकर्ण को जीतकर राम ने विश्व में सनातन परम्परा की रक्षा की । ११६ आप भगवान् नारायण हैं । आप सर्वव्यापी हैं, सारे विश्व का पालन करनेवाले हैं, और सबों का मूल-कारण हैं । ११७ आपके नाभि-कमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए हैं, मुँह से अग्नि उत्पन्न हुए हैं, और वाणी उत्पन्न हुई हैं । ११८ आपकी दोनों बाँहों से इन्द्र आदि लोकपाल उत्पन्न हुए हैं, आँख से सूर्य और चन्द्र उत्पन्न हुए हैं । ११९ आपके कान से आठों दिशाएँ उत्पन्न हुई हैं और नाक से प्राणवायु उत्पन्न हुए । १२० आपकी जाँघ से अश्विनीकुमार उत्पन्न हुए हैं, यह सर्व-विदित है । १२१ आपके पेट से चार समुद्र हुए, स्तन से वरुण और इन्द्र हुए १२२ सभी बालखिल्य उत्पन्न हुए जो अखंड ब्रह्मचारी हैं और सभी सद्गुणों से युक्त हैं । १२३ आपके लिंग से यम उत्पन्न हुए तथा गुद से मृत्यु की सभी उपाधियाँ पैदा हुईं । १२४ आपके क्रोध से रुद्र का अवतार हुआ, और आपकी हड्डी से विशाल पर्वत हुए । १२५ आपके बाल से बादल हुआ और आपके रोम से अनगिनत अरबों-खरबों वनस्पति । १२६ आपके नख से स्वर्ग आदि हुए । इस प्रकार आप विश्वरूप हुए । १२७ संसार में जो भी चल और अचल वस्तुएँ हैं, सभी आप ही की बाह्य व्यावहारिक सत्ता है । १२८ देवगण आप ही के बल पर सभी यज्ञों में जाकर अमृत पीते हैं । १२९ आप ही की चमक पाकर सूरज और चाँद प्रकाश देते हैं । १३० आप सर्वत्र

गञ्जन बन्धन बापक हेरि। देवराज काँ बाँधल फेरि॥ १०१॥
सुरपति बान्धल सङ्ग लगाय। पिता सहित हर्षित पुर जाय॥ १०२॥
ब्रह्मा अयला बुझि अन्याय। सुरपति काँ देल बाँध फोआय॥ १०३॥
वर दय ब्रह्मा अपना धाम। गेला जखना हे प्रभु राम॥ १०४॥
रावण बहुत लोक काँ जीति। रण साहस से कयल अनीति॥ १०५॥
भुज उठाय लेल गिरि कैलास। सकल लोक काँ बाढ़ल त्रास॥ १०६॥
नन्दीश्वर तत देलथिनि शाप। रावण तोहरा बाढ़ल पाप॥ १०७॥
हयतौ नर-वानर-कर मरण। काज न अयतौ दुष्टाचरण॥ १०८॥
अति उन्मत्त गेला एक काल। हैहयपट्टन गर्व्व विशाल॥ १०९॥
रावण काँ से बाँधल ततय। बहु अन्याय फलित हो कतय॥ ११०॥
तत पुलस्त्य मुनि तहि थल जाय। कहि शुनि के देल बाँध कटाय॥ १११॥
बालिक ओतय कयल बल लाभ। ओ धय राखल अपना काँख॥ ११२॥
चारु समुद्र समुद्र घुमाय। षन्मासाबधि देल अटकाय॥ ११३॥
बड़ दुख काटल धयले धयल। बहरयला मिलि मैत्री कयल॥ ११४॥
मारल रावण काँ प्रभु राम। राबणि काँ लक्ष्मण संग्राम॥ ११५॥

दौड़ा और पिता को बन्धन से मुक्त किया। १०० अपने पिता को गंजन करने और बाँधने का बदला चुकाने के लिए उसने इन्द्र को बाँध दिया। १०१ बँधे हुए इन्द्र को साथ लगाये पिता-सहित सहर्ष लंकापुरी आया। १०२ रावण ने ऐसा अन्याय किया। यह खबर पाकर ब्रह्मा वहाँ आये और इन्द्र को बन्धन से छुड़ाकर ले गये। १०३ हे राम, जबसे ब्रह्मा रावण को वर देकर ब्रह्मलोक गये, तबसे उसने साहस के साथ लड़ाई ठानकर बहुतों को जीतता और अन्याय करता रहा। १०४-१०५ कैलास पर्वत को अपनी बाँहों पर उठा लिया और उस पर रहनेवाले सभी त्रस्त हो उठे। १०६ वहाँ शिव के वृषभ नन्दीश्वर ने रावण को शाप दिया—"अरे रावण, तुम्हारा पाप बढ़ता जा रहा है। १०७ नरों और वानरों से तुम्हारी मौत होगी। कोई भी दुष्टतापूर्ण कुकर्म काम नहीं देगा।" १०८ एक समय वह मतवाला होकर भारी घमंड के साथ हैहयपट्टन गया। १०९ वहाँ राजा हैहय ने उसे बाँध रखा। अन्याय बहुत बार नहीं फबता। ११० फिर पुलस्त्य मुनि को खबर हुई तो वे वहाँ गये और हैहय से अनुनय-विनय करके उसे बन्धन से छुड़ाया। १११ फिर वह वाली के पास अपना बाहुबल दिखाने गया। उन्होंने बगल में दबाकर रख लिया। ११२ वे उसे बगल में लिये चारों समुद्र घुमा लाये और छः महीनों तक बगल में दबाये रखे। ११३ जब बगल में दबे-दबे बहुत कष्ट झेला तब वाली से दोस्ती करके उसकी बगल से निकला। ११४ रावण को युद्ध में राम ने मारा और रावण के पुत्र मेघनाद

योगारूढ़ शारदानाथ। आनन्दाश्रु बहल लेल हाथ॥ ५॥
से कर धयलहि धयलनि ध्यान। त्याग कयल पुन अरित के जान॥ ६॥
तहि सौं जनमल भल कपिराज। कहल विधाता बसह समाज॥ ७॥
किछु दिन बितलय हयतौ नीक। सुखित रहह किछु दिन निर्भीक॥ ८॥
यहिमत गत भेल बहुतो वर्ष। ऋक्षाधिप रह सतत सहर्ष॥ ९॥
भ्रमयित गिरिवर फल-मूलार्थ। विधि-निवास मे सकल पदार्थ॥ १०॥
बापी एक पड़ल तनि दृष्टि। मणिमय तत जल अमृतक सृष्टि॥ ११॥
करय ततय गेला जलपान। दृष्टि पड़ल प्रतिबिम्ब समान॥ १२॥
भ्रम अन्तर अछि के ई आन। कुदि पड़ला जल कपि अज्ञान॥ १३॥
बहरयला पुन जल सौं फानि। स्त्री बनला पुरुषत्वक हानि॥ १४॥
अति विस्मय मन होइनि लाज। कि कहब ककरा रहित समाज॥ १५॥
पूजि चतुर्मुख काँ अमरेश। दूइ पहर दिन चलला देश॥ १६॥

का सुमेरु पर्वत है जिसकी चोटी बहुत ऊँची है। इसका मध्यक्षेत्र रत्नमय है और सौ योजन फैला हुआ है। ४ यहाँ सरस्वती के पति ब्रह्मा योग की समाधि लगाये थे। उनकी आँखों से आनन्द के आँसू बहे। आँसू को उन्होंने हाथ में ले लिया। ५ वे उसे हाथ में लिये ही फिर ध्यान में डूब गये और उस आँसू को छोड़ दिया। उन लोगों के आचरण का अर्थ कौन जान सकता है? ६ उससे एक श्रेष्ठ बन्दर का जन्म हुआ। ब्रह्मा ने उससे कहा— "बन्दरों के अपने दल में तुम यहाँ रहो। ७ कुछ दिन बीतने पर तुम्हारा अभ्युदय होगा। कुछ दिनों तक निर्भय हो आनन्द से यहाँ रहो।" ८ इस प्रकार बहुत-से वर्ष गुज़र गये। वह बन्दरों के दल का प्रधान होकर आनन्द से रहता। ९ पर्वतों पर घूम-घूमकर फल-मूल खाता। ब्रह्मा के इस आलय में सभी वस्तुएँ सुलभ थीं। १० एक दिन वहाँ उसे एक बापी दिखाई पड़ी। यह रत्नों की बनी थी और इसमें अमृत-सा पानी था। ११ वह उसमें पानी पीने गया कि उसे कुछ परछाईं-सी नज़र आई। १२ उसने सोचा— चित्त में भ्रम तो नहीं हो रहा है? यह दूसरा कौन है? फिर वह नासमझ बन्दर उस पानी में कूद पड़ा। १३ छलाँग मारकर पानी से निकला तो वह स्त्री बन गया। उसका पुरुषत्व जाता रहा। १४ उसके मन में भारी विस्मय होने लगा और वह लजाने लगा। उसने सोचा, किसे क्या कहूँ, यहाँ तो समाज का कोई नहीं है। १५ उधर देवताओं के राजा इन्द्र ब्रह्मा की पूजा करने वहाँ आये और पूजा समाप्त कर दुपहर में अपने घर चले। १६ उन्होंने उस रमणी को देखा। देखते ही कामविह्वल हो गये।

सर्व्वग नित्य अनन्त प्रभु, ज्ञान-बिलोचन-दृष्ट ॥ १३१ ॥
नहि देखथि अज्ञान-दृग, रवि काँ लोचन-मृष्ट ॥ १३२ ॥
देखथित छथि निज देह मे, योगीजन परमेश ॥ १३३ ॥
भक्ति-भावना ज्ञान-बल, सकल वस्तु सभ देश ॥ १३४ ॥

॥ सोरठा ॥

क्षमब सकल अपराध, प्रभुक अनुग्रहवान हम ॥ १३५ ॥
विरहित मायाबाध, अपनें सेवा-निरत रहि ॥ १३६ ॥
बारंबार प्रणाम, कयल सकल मुनि मिलि ततय ॥ १३७ ॥
कयल वचन विश्राम, रामक छवि देखथि सतत ॥ १३८ ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायने उत्तरकाण्डे द्वितीयोऽध्यायः ॥

॥ अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

॥ चौपाइ ॥

कहु सानुज बालिक उतपत्ति । जनिका छल अति बल सम्पत्ति ॥ १ ॥
रावण तनि तट तृणक समान । बालिक सदृश शूर के आन ॥ २ ॥
राम-प्रश्न मुनि शुनल अगस्त्य । चरित कहय लगलाह प्रशस्त्य ॥ ३ ॥
कनक-सुमेरु शिखर बड़ गोट । शतयोजन मणिमय सभ्य कोट ॥ ४ ॥

पहुँचनेवाले हैं, सदा रहनेवाले हैं, अन्तहीन हैं। आपके दर्शन केवल ज्ञान रूपी आँख से होते हैं। १३१ जिसकी आँख में अज्ञान (माया) की पट्टी बँधी रहती है वह आपको उसी तरह नहीं देखता जिस तरह अन्धा सूर्य को। १३२ योगी लोग अपने शरीर में ही आपको भक्ति और ज्ञान के बल से सभी वस्तुओं और स्थानों में परमेश्वर-रूप में देखते हैं। १३३-१३४ हे प्रभु! आप हम सबों का अपराध क्षमा करेंगे। हम आपसे अनुगृहीत हैं।" १३५ आप हमें माया के बन्धन से अलग करके अपनी सेवा में लगाइए। १३६ वहाँ सभी मुनियों ने मिलकर बार-बार प्रणाम किया और निरन्तर राम की झाँकी देखते मौन हो गये। १३७-१३८

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में उत्तरकाण्ड का दूसरा अध्याय समाप्त ॥

तीसरा अध्याय

वाली और सुग्रीव के जन्म आदि की कथा; सनत्कुमार द्वारा रावण को उपदेश

राम ने पूछा— "अब अनुज सुग्रीव-सहित वाली के जन्म की कहानी सुनाइये, जो परम शक्तिशाली थे। १ वाली के सामने रावण तो तिनके के बराबर था। वाली के समान शूर और कोई नहीं है।" २ राम का यह प्रश्न सुनकर अगस्त्य मुनि वाली का प्रशंसनीय चरित सुनाने लगे। ३ सोने

तनिकर सभ कपि करब सहाय। देवदूत देल कथा बुझाय ॥ ३३ ॥
विधि सौं जेहन बुझल ओ दूत। कपिपति ततक कयल पुरहूत ॥ ३४ ॥
तेहि दिन सौं किष्किन्धा बास। बालि प्रभृति छल छथि निस्त्रास ॥ ३५ ॥
विधि प्रार्थित अपन परमेश। भूमि-भार टारल अकलेश ॥ ३६ ॥
ब्रह्म अखण्डानन्द-स्वरूप। कोन पराक्रम नरबर भूप ॥ ३७ ॥
तदपि भक्तजन वर्णन करथि। गुणगण गाबि दुःख सौं तरथि ॥ ३८ ॥
जे कीर्त्तन कर कपिपति-जनन। कथा तनिक हो पातक-हनन ॥ ३९ ॥
अथ हम कथा कहै छी आन। श्रीरघुनन्दन शुनु दय कान ॥ ४० ॥
रावण कयलनि सीता - हरण। प्रकट तकर फल दुर्गति मरण ॥ ४१ ॥
सनत्कुमार प्रजापति - तनय। कृतयुग रावण कयलनि विनय ॥ ४२ ॥
कयल प्रणाम जोड़ि बिश हाथ। प्रभु सर्व्वज्ञ कहल हो नाथ ॥ ४३ ॥
जनिकर जनन मरण नहि एक। भर्त्ता विश्वक विशद विवेक ॥ ४४ ॥
जानकर बल सौं सुर-समुदाय। शत्रु जित छथि अमर कहाय ॥ ४५ ॥
यजन करै छथि द्विजगण ककर। योगी ध्यान करै छथि जकर ॥ ४६ ॥
ई सभ संशय सनत्कुमार। कहल जाय प्रभु परमोदार ॥ ४७ ॥

कपि मिलकर उनकी सहायता करें।" इस प्रकार ब्रह्मा ने देवदूत को सारी बात समझा दी। ३३ ब्रह्मा ने जैसा समझाया उसी के अनुसार कपिपति को किष्किन्धा का सम्राट् बना दिया। ३४ उसी दिन से बाली आदि कपि किष्किन्धा में निःशंक वास करते रहे हैं। ३५ हे परमेश्वर, आपने ब्रह्मा की प्रार्थना से धरती के भार को अनायास दूर किया। ३६ आप अखड आनन्द-स्वरूप ब्रह्म हैं। पुरुषश्रेष्ठ राजा होकर आपने जो पराक्रम किया वह कौन बड़ी बात है? ३७ फिर भी भक्त लोग आपके इस पराक्रम का वर्णन करते हैं और आपके गुणों को गा-गाकर दुःख से छुटकारा पाते हैं। ३८ जो सुग्रीव के जन्म की कथा का कीर्तन करेंगे, उनके सभी पाप दूर हो जाएँगे। ३९ अब मैं दूसरी कथा सुनाता हूँ। हे राम, आप ध्यान देकर सुनिये। ४० रावण ने सीता का हरण किया। इसका उसे प्रत्यक्ष कुपरिणाम मिला। उसकी दुर्दशा हुई और अन्त में वह मारा गया। ४१ सत्ययुग में रावण ने ब्रह्मा के पुत्र सनत्कुमार से प्रार्थना की। ४२ उसने बीसों हाथ जोड़कर प्रणाम किया और कहा— "हे प्रभु, आप सब जाननेवाले हैं। हे नाथ, कहिए कि वे कौन हैं, ४३ जिनका न कभी जन्म होता है और न मरण; जो विश्व भर का भरण करते हैं, और जो असन्दिग्ध रूप से ज्ञानी हैं; ४४ जिनके बल से देवता लोग सदा अपने दुश्मनों से जीतते हैं और अमर कहलाते हैं; ४५ द्विज लोग जिनका यज्ञ करते हैं, और योगी लोग जिनका ध्यान करते हैं? ४६ हे प्रभु, परम उदार सनत्कुमार जी, इन संशयों को आप कृपा कर दूर

॥ सोरठा ॥

देखल से वर नारि, काम-विवश सुरपति ततय ॥ १७ ॥
नहि शकलाह सम्भारि, वीज-पतन हुनि बाल पर ॥ १८ ॥
जन्म लेल एक बाल, बालहिं सौं सज्ञा तनिक ॥ १९ ॥
बालि भेल तत्काल, स्वर्णमाल दय हरि चलल ॥ २० ॥
रश्मिक तेहने हाल, वीज तनिक ग्रीवा खसल ॥ २१ ॥
जनमल बाल विशाल, ग्रीवा सौं सुग्रीव तैं ॥ २२ ॥
देलनि तनि रक्षार्थं, हनूमान काँ भानु तत ॥ २३ ॥
वन-फलादि भक्ष्यार्थ, बहुत देखि रवि नभ चलल ॥ २४ ॥

॥ चौपाइ ॥

युगल पुत्र लेल सङ्ग लगाय । सुति रहली कहुँ से अलसाय ॥ २५ ॥
भेल प्रात जौं निद्रा भङ्ग । पुन बनि गेला पूर्व्वक रङ्ग ॥ २६ ॥
युगल बाल सङ्ग बहु फल मूल । प्राप्त ततय जत विधि अनुकूल ॥ २७ ॥
देल विधाता बड़ आश्वास । कोशराज काँ भेल विश्वास ॥ २८ ॥
विधि एक अमर दूत बजबाय । कहलनि किष्किन्धा से जाय ॥ २९ ॥
कपिपति होथि तहाँ महाराज । सत्वर करु गय ई गोट काज ॥ ३० ॥
सकल द्वीप जे वानर लोक । हिन कपिपति-वस-वर्त्ति विशोक ॥ ३१ ॥
रामक जखन हयत अवतार । असुर-विनाश हरण महि-भार ॥ ३२ ॥

वे अपने को सँभाल न सके। उस रमणी के बाल पर उनका वीर्य गिर पड़ा। १७-१८ इससे एक बच्चा पैदा हुआ। इसलिए इसका नाम 'वाली' पड़ा। इन्द्र उस स्त्री को सोने का हार देकर चले गये। १९-२० सूर्य का भी वही हाल हुआ। उनका वीर्य ग्रीवा पर गिरा। २१ उससे एक विशाल बच्चा पैदा हुआ, इसलिए उसका नाम 'सुग्रीव' पड़ा। २२ उस बच्चे की रक्षा के लिए सूर्य ने हनुमान को नियुक्त किया और वन में फल-मूल आदि खाद्य-पदार्थ प्रचुर देखकर सूर्य आकाश में चले गये। २३-२४ दोनों पुत्रों को साथ लेकर माता अलसाकर कहीं सो गई। २५ सुबह जब आँखें खुलीं तो वह फिर पहले की भाँति बन्दर बन गई। २६ दोनों बच्चे साथ में थे। प्रचुर कन्द, मूल, फल सुलभ थे। जहाँ विधि अनुकूल हो वहाँ क्या न सुलभ हो? २७ ब्रह्मा ने बहुत बड़ा आश्वासन दिया था, इससे उस बन्दर को विश्वास था कि अभ्युदय होगा। २८ ब्रह्मा ने एक देव-दूत को बुलाया और उसे आज्ञा दी— "किष्किन्धा जाओ और २९ तुरत ऐसा काम करो जिससे ये कपिवर वहाँ के महाराज हो जाएँ। ३० सभी द्वीपों में जितने भी बन्दर हैं वे सभी इन कपि के वश में आ जाएँ और सुख से रहें। ३१ जब राम असुरों का नाश कर धरती का भार दूर करने के लिए अवतार लेंगे, ३२ तब सभी

तनिक स्वरूप कहै छी आज। स्थावर जङ्गम सभ सम्राज ॥ ६४ ॥
एक वस्तु नहि हुनि सौं हीन। अन्तर अन्तर सभ मे लीन ॥ ६५ ॥
नद ओ नदी जलधि जत नीर। पर्व्वत पृथिवी गगन शरीर ॥ ६६ ॥
ओ सावित्री ओ ओङ्कार। ओ पुन सत्य समस्ताधार ॥ ६७ ॥
कच्छप शेष धरणिधर जतेक। अनल आदि जत ओ प्रभु एक ॥ ६८ ॥
जे जे पड़यिछ अहँ कां दृष्टि। से सभटा थिक से प्रभु सृष्टि ॥ ६९ ॥
ओ प्रभु सकल चराचर व्याप्त। हुनकहि मे पुन अन्त समाप्त ॥ ७० ॥
नीलोत्पलदल - सुन्दरश्याम। चपला - वर्णाम्बर अभिराम ॥ ७१ ॥
जम्बूनद-रुचि श्री तन बाम। प्रेम परस्पर प्रभु गुणधाम ॥ ७२ ॥
हिनका देखि शकथि नहि आन। ओ प्रभु अपनहि अपन समान ॥ ७३ ॥
हुनकर भक्त ततहि रत-प्राण। ततहि निरन्तर मन सज्ञान ॥ ७४ ॥
मननादिक सौं निर्म्मल नयन। तनिका हृदय करथि प्रभु शयन ॥ ७५ ॥
जौं अछि हुनकर दर्शन काज। त्रेता मे हयता रघुराज ॥ ७६ ॥

जो बात आई हे वह ठीक है। ६२ कुछ दिनों के बाद तुम्हारी यह कामना पूरी होगी। हे रावण, तुम चिन्ता मत करना। ६३ आज मैं उन परमेश्वर का वर्णन करता हूँ। चल या अचल सभी वस्तुओं पर उनका प्रभुत्व है। ६४ एक भी ऐसी चीज़ नहीं है, जिसमें वे न हों। वे हरेक अन्तःकरण में छुपे रहते हैं। ६५ नद, नदी, समुद्र आदि जो भी जलराशि है, पर्वत, पृथ्वी और आकाश सब उन्हीं का शरीर है। ६६ सावित्री वही हैं, ॐकार वही हैं। सभी वस्तुओं के आधार और सत्य वही हैं। ६७ धरती को धारण करनेवाले कच्छप, शेषनाग आदि भी वही हैं। अग्नि आदि जो तेज हैं, वह भी एक मात्र वही हैं। ६८ तुम्हारी नज़र में जो कुछ भी चीज़ आती है वह सब उन्हीं प्रभु की बनाई हुई है। ६९ वे चल या अचल हर वस्तु में व्याप्त हैं। हर वस्तु प्रलय होने पर फिर उन्हीं में लीन हो जाती है। ७० राम नील-कमल की पंखुड़ी के समान मनोहर साँवले हैं और उनका वस्त्र बिजली-जैसा चमकीला मनोहर पीला है। ७१ बायें में उनकी अर्धांगिनी सीता सुनहले वर्ण की हैं। दोनों में आपस में प्रेम है। हमारे प्रभु राम गुणों का खज़ाना हैं। ७२ इनको कोई और नहीं देख सकता है। वे प्रभु अपने समान आप अकेले हैं। ७३ उनके भक्तों के प्राण सदा उन्हीं में रमे रहते हैं, उनके मन सदा उन्हीं में लगे रहते हैं। ७४ जिन्होंने श्रवण, मनन आदि साधना द्वारा अपनी दृष्टि को निर्मल बना लिया है उनके हृदय में प्रभु सोये रहते हैं। ७५ अगर तुम उनके दर्शन चाहते हो तो देखना, त्रेता में वे रघुवंशी राजा दशरथ के पुत्र होकर जन्म लेंगे और राजा दशरथ की आज्ञा पाकर यहाँ आकर माया-

॥ सोरठा ॥

शुनि पुन सनत्कुमार, योगदृष्टि सौं मौन क्षण ॥ ४८ ॥
प्रश्नोत्तर उच्चार, समुचित कयल दशास्य-हित ॥ ४९ ॥
शुनु शुनु सुत लङ्केश, अव्यय नारायण थिकथि ॥ ५० ॥
जतय न दुःखक लेश, विश्वम्भर तनि जन्म नहि ॥ ५१ ॥
तनि बल सौं संग्राम, अमर जितै छथि योगि पुन ॥ ५२ ॥
ध्यान निरन्तर नाम, करथि जपथि संसृति तरथि ॥ ५३ ॥
पुन पुछलनि दशभाल, दैत्यादिक जे विष्णु सौं ॥ ५४ ॥
निहत समर वश काल, जाइत छथि कहु कोन गति ॥ ५५ ॥
असुर मरथि सुर-हाथ, से जाहांत छथि स्वर्ग-पद ॥ ५६ ॥
शुनु रावण दशमाथ, रहित-पुण्य सौं महि-पतन ॥ ५७ ॥
विष्णुक हाथ विनाश, जनिकर से हरिगति पहुँच ॥ ५८ ॥
जेहन शुद्धाकाश, निर्म्मल मन नहि वासना ॥ ५९ ॥

॥ चौपाइ ॥

रावण शुनल मुनिक मुख वचन । मन मन करय लगल भल रचन ॥ ६० ॥
समर करब हम विष्णुक सङ्ग । रावण - मन सङ्कल्प अभङ्ग ॥ ६१ ॥
मुनि जानल रावण मन-वृत्ति । कहलनि भल थल चित्त-प्रवृत्ति ॥ ६२ ॥
सिद्ध अभीष्ट विगत किछु काल । चिन्ता करु जनु मन दशभाल ॥ ६३ ॥

कीजिए।" ४७ सनत्कुमार ने यह सुनकर क्षण भर मौन हो समाधि लगाकर देखा, फिर ४८ रावण के हितार्थ उसका समुचित उत्तर दिया— ४९ "हे वत्स लंकापति रावण, सुनो। वे हैं अव्यय (विकारहीन) नारायण; ५० जिनमें नाम मात्र दुःख नहीं है। वे सारे विश्व का भरण करनेवाले हैं। उनका जन्म नहीं होता। ५१ उन्हीं के बल से देवगण युद्ध में विजय पाते हैं, और योगी लोग सतत उन्हीं का ध्यान करते और नाम जपते संसार-सागर को पार करते हैं।" ५२-५३ फिर रावण ने पूछा— "जो राक्षस आदि विष्णु के हाथों लड़ाई में मरकर काल के वश होते हैं उनकी क्या गति होती है?" ५४-५५ सनत्कुमार ने उत्तर दिया— "हे दशमुख रावण, सुनो। जो कोई राक्षस देवों के हाथों मरते हैं वे स्वर्ग पाते हैं; पुण्य समाप्त होने पर फिर धरती पर गिरते हैं। ५६-५७ जो विष्णु के हाथ से मरते हैं, वे विष्णुलोक पहुँचते हैं। उनका मन वैसा ही निर्मल और वासनाहीन हो जाता है, जैसा बिना बादल-धूल का आकाश।" ५८-५९ रावण ने ऋषि सनत्कुमार के मुँह से यह बात सुनकर मन-ही-मन सोचने लगा कि विष्णु के साथ लड़ाई की जाय। उसने मन में पक्का इरादा कर लिया। ६०-६१ मुनि सनत्कुमार रावण के मन की बात ताड़ गये और बोले— "तुम्हारे मन में

हमर समान कतय बलधाम । जत हम करब घोर संग्राम ॥ ३ ॥
मुनि कहलनि अछि श्वेतद्वीप । पुष्पक-रथ पथ सकल समीप ॥ ४ ॥
विष्णुभक्त वा तत्कर - मरण । श्वेतद्वीप तनिक हो शरण ॥ ५ ॥
एहन सृष्टि नहि दोसर ठाम । जाय सकी तौँ हो संग्राम ॥ ६ ॥
शुनितहिँ रावण कयलनि गमन । हुनकर अनय करय के शमन ॥ ७ ॥
पुष्पक चलनहि द्वीप समीप । उतरि चलल तत असुर-अधीप ॥ ८ ॥
बनिता वृद्धा तनिकाँ धयल । पकड़ि घुमाओल दुर्गति कयल ॥ ९ ॥
के तोँ थिका एतय की काज । ककर पठाओल कह नहि लाज ॥ १० ॥
दशकन्धर उत्तर नहि बाज । महा मनोदुख तनिक समाज ॥ ११ ॥
बड़ अनुचित अयलहुँ एहिठाम । पाओल साहस-फल परिणाम ॥ १२ ॥
नखना पाओल किछु अवकाश । गमहिँ पड़यला बड़ मन त्रास ॥ १३ ॥
धिक अमरत्व कि गञ्जन-ग्रस्त । दशमुख दुख-चिन्ता सौँ व्यस्त ॥ १४ ॥
विष्णुक हाथ मरण से करब । नहि पुनि अमर-समर सञ्चरब ॥ १५ ॥

देश घूमने निकला । १ उसकी नारद मुनि से भेंट हुई । उनके पास जाकर उसने पूछा— २ "हे मुनि, बताइए कि मेरे बराबर शक्तिशाली कहाँ पर है जहाँ जाकर मैं जमकर युद्ध करूँ ?" ३ नारद ने कहा— "श्वेतद्वीप ऐसा स्थान है । आपके पुष्पकविमान है, आपके लिए सभी स्थान निकट ही हैं । ४ जो कोई विष्णु के भक्त मरते हैं या जो कोई विष्णु के हाथ से मरते हैं, श्वेतद्वीप उन्ही लोगों का स्थान है । ५ ऐसी सुन्दर सृष्टि और कहीं नहीं है । यदि आप जा सकें तो वहाँ जाकर लड़ाई ठानें ।" ६ नारद के मुँह से यह बात सुनते ही रावण चल पड़ा । अन्याय की ओर उसकी प्रवृत्ति को कौन रोक सकता है ? ७ पुष्पकविमान उस द्वीप के पास पहुँचते ही चलने में असमथ हो गया, अत: राक्षसराज रावण वहीं उतरकर पदल आगे बढ़ा । ८ वहाँ एक बूढ़ी औरत ने उसे पकड़ लिया और घुमा-घुमाकर उसकी बड़ी दुर्दशा की । ९ उस औरत ने पूछा— "तुम कौन हो ? यहाँ किस काम से आये हो ? तुम्हें यहाँ किसने भेजा है ? लजाओ मत । बताओ ।" १० रावण के मुँह से बोली नहीं निकलती । उस औरत के पास उसके मन में भारी पीड़ा होने लगी । ११ फिर उस औरत ने कहा— "तुमने बड़ी ग़लती की कि यहाँ आये । तुमने अपने दु:साहस का फल भोगा ।" १२ कुछ देर के बाद ज्यों ही मौका मिला, रावण चुपके से वहाँ से भाग निकला । मन मे बड़ा आतंक था । १३ वह सोचने लगा— "धिक्कार है मुझको । गजन सहते हुए अमर बना रहना किस काम का ?" रावण व्यथा और चिन्ता में डूब गया । १४ उसने निश्चय किया— "जिससे विष्णु के हाथ मरण हो वसा काम करूँगा । फिर कभी देवताओं से लड़ाई ठानने के लिए नहीं

दशरथ-सुत तनि आज्ञा पाबि। माया-लीला करता आबि॥ ७७॥
निजमाया कौं लयोता सङ्ग। दण्डक-वन मुनिजन-दुखभङ्ग॥ ७८॥
अनुज-सहित वन वन सञ्चरत। कहु कत नरवर लीला करत॥ ७९॥
अहुँ हुनि प्रभु मे भक्ति बढ़ाउ। सभ जनितहिँ छी कते पढ़ाउ॥ ८०॥

॥ सोरठा॥

कहलनि सनत्कुमार, रावण कयल विचार मन॥ ८१॥
करब विरोध प्रकार, मरब समर कय वीरता॥ ८२॥
रावण हर्षित-चित्त, युद्धार्थी सभ लोक फिर॥ ८३॥
सीताहरण निमित्त, अपनैँक हाथेँ मरण हो॥ ८४॥

॥ दोहा॥

पढ़थि शुनाबथि शुनथि जे, ई चरित्र सभ योग्य॥ ८५॥
सुख अनन्त आयुष्य बढ़, बढ़ अनन्त आरोग्य॥ ८६॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे उत्तरकाण्डे तृतीयोऽध्यायः॥

॥ अथ चतुर्थोऽध्यायः॥

॥ चौपाइ॥

एक समय उन्मद लङ्केश। युद्धार्थी सञ्चर कत देश॥ १॥
नारद मुनि सौँ दरशन पाबि। पुछलनि तनिकाँ तट मे आबि॥ २॥

वश अपनी लीला करेंगे। ७६-७७ वे अपनी माया (सीता) को साथ लिये आवेंगे और दंडकारण्य में मुनियों का दुख दूर करेंगे। ७८ अपने छोटे भाई के साथ वन-वन भटकेंगे और पुरुषोत्तम की बहुत-सी लीलाएँ करेंगे। ७९ तुम भी उन प्रभु की भक्ति करो। तुम तो सब जानते ही हो, कितना पढ़ाऊँ।" ८० जब सनत्कुमार ने ऐसा कहा तब रावण ने मन में यह निर्णय किया कि उनसे शत्रुता करूँगा और लड़ाई में वीरता करके उनके हाथ मरूँगा। ८१-८२ रावण खुश हो उठा। वह लड़ाई ठानने के लिए दुनिया भर में भटकने लगा। ८३ उसने मन-ही-मन कहा— "हे प्रभु, सीता के हरण को कारण बनाकर मैं आपके हाथ से मारा जाऊँ।" ८४ जो कोई यह कथा पढ़ेंगे, सुनेंगे या सुनाएँगे उन्हें अपार सुख मिलेगा, आयु बढ़ेगी और आरोग्य बढ़ेगा। ८५-८६

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला भाषा रामायण में उत्तरकाण्ड का तीसरा अध्याय समाप्त॥

चौथा अध्याय

रावण का श्वेतद्वीप जाना और पराजित हो राम के हाथ मरने की कामना

एक समय मद से चूर हो लंकापति रावण युद्ध करने की इच्छा से देश-

रथ चढ़ि चढ़ि सभ देश, जाथि करथि सभ लोक सुख ॥ २९ ॥
ककरहु हो न कलेश, हनुमदादि सेवक सतत ॥ ३० ॥

॥ चौपाइ ॥

एक समय द्विज-तनयक मरण । ब्राह्मण कलुषित-अन्तष्करण ॥ ३१ ॥
धर्म्मक पालक श्री रघुनाथ । सकल वस्तु अछि अपनैंक हाथ ॥ ३२ ॥
हम निष्पाप कहल अछि आय । राजा-विषय पड़ल अन्याय ॥ ३३ ॥
पुत्र जिबथि तैं होउ सहाय । विकल कहै छी करू उपाय ॥ ३४ ॥
लक्ष्मण रामक आज्ञा पाय । शूद्र एक वन देखल जाय ॥ ३५ ॥
विप्रक सन करइत आचरण । लक्ष्मण-कर तनिकर भेल मरण ॥ ३६ ॥
ब्राह्मण - बालक उठि बैसलाह । द्विज से धन्य कहय लगलाह ॥ ३७ ॥
शिव - स्थापना कोटिक कयल । लोका चारक सत्पथ धयल ॥ ३८ ॥
एक समय क्रीड़ा - आराम । सीता - सङ्ग नवल - घनस्याम ॥ ३९ ॥
कहल जानकी प्रभु किछु कहब । कत दिन महिमण्डल मे रहब ॥ ४० ॥

रथ पर सवार हो-होकर सभी इलाकों में जाते थे और इससे सभी लोग सुख पाते थे । २९ किसी को कोई तकलीफ़ न थी । हनुमान आदि सेवक सदा तत्पर रहते थे । ३०

शम्बूक का वध

एक दिन ब्राह्मण का एक बेटा मर गया । ब्राह्मण को भारी शोक हुआ । ३१ उसने राम के यहाँ फ़रियाद किया— "हे राम, आप धर्म के रक्षक हैं । सारी व्यवस्था आप ही के हाथ में है । ३२ मैं कहने के लिए आया हूँ कि मैंने कोई पाप नहीं किया है, फिर यह जो पुत्रशोक हुआ है, वह इसलिए कि राजा ने कोई अन्याय किया है । ३३ ऐसा उपाय कीजिए जिससे मेरा बेटा जी जाय । मैं विकल होकर निवेदन करता हूँ । मेरी रक्षा कीजिए ।" ३४ यह सुनकर राम ने लक्ष्मण को आज्ञा दी कि देखिये क्या बात है ? लक्ष्मण ने पता पाया कि वन में एक शूद्र है, ३५ जो ब्राह्मण का आचरण कर रहा है । लक्ष्मण के हाथ से उसकी मौत हुई । ३६ बस क्या था, ब्राह्मण का वह मरा हुआ बेटा जी उठा । वह ब्राह्मण "धन्य-धन्य" कहने लगा । ३७ राम ने करोड़ों शिवलिंग की स्थापना की और समाज में प्रचलित परम्परा का पालन करते रहे । ३८

लोकापवाद का फैलना और सीता का वनवास

एक समय नये बादल-से साँवले राम सीता के साथ क्रीड़ा-उद्यान में थे । ३९ सीता ने कहा— "हे प्रभु, एक बात कहनी है । इस धरती पर और

तकरे हेतु दशानन जानि । सीता-हरण कयल हठ ठानि ॥ १६ ॥
मातृ-बुद्धि ओ मन मे मानि । हुनि कर मरब असुरता हानि ॥ १७ ॥
त्रिकालज्ञ प्रभु साक्षी राम । अन्त सकल विश्वक विश्राम ॥ १८ ॥
स्तुति अगस्त्य मुनि बहुविध कयल । राम-सुपूजित निज पथ धयल ॥ १९ ॥
सीतासङ्ग विषय - अनुरक्त । भासित बाहर चित्त विरक्त ॥ २० ॥
अनासक्त प्रभु कर गृह-काज । परमेश्वर लीला नर-व्याज ॥ २१ ॥
रामचन्द्र काँ देलनि फेर । पुष्पक रथ पठबाय कुबेर ॥ २२ ॥
पुष्पक रावण हरलनि जेँह । तनिकाँ जीति छीनि लेल सेँह ॥ २३ ॥
यावत पृथिवी-स्थित प्रभु रहत । तावत पुष्पक अहँ काँ बहत ॥ २४ ॥
पुष्पक काँ कहलनि रघुराज । अपनेँक जखन होयत गय काज ॥ २५ ॥
स्मरण करब तखना हम अयब । अन्तर्हित रहु बड़ सुख पयब ॥ २६ ॥

॥ सोरठा ॥

कार्य्य अमानुष राम, करथि नृपति सन्नीति-युत ॥ २७ ॥
नहि अनीति तहि ठाम, वसुधा शस्यमयी सतत ॥ २८ ॥

भटकूँगा।" १५ रावण ने विष्णु के हाथ से मरने का एक उपाय जानकर ही रावण ने हठपूर्वक सीता का हरण किया। १६ रावण ने सीता को माता के तुल्य माना और सोचा कि उनके हाथ मरने से असुरता में बट्टा लगेगा। १७ इतना कहकर मुनि अगस्त्य ने पुनः बहुत प्रकार से राम की स्तुति की— "आप भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों को जानते हैं। आप सबों के मालिक हैं। सब कुछ देखते रहते हैं। प्रलय होने पर सभी वस्तुएँ आप में लीन हो जाती हैं।" इस प्रकार स्तुति करने के बाद अगस्त्य मुनि ने राम से उचित आदर-सत्कार पाकर अपना रास्ता पकड़ा। १८-१९ राम बाहर से तो लगते थे कि सीता के साथ विषयभोग में लिप्त हैं, किन्तु भीतर से एकदम विरक्त थे। २० राम गृहस्थ जीवन के सारे काम तो करते थे पर उनमें आसक्त नहीं रहते थे। परमेश्वर होते हुए भी मानव का छद्मवेश धारणकर लीला करते थे। २१ कुबेर ने फिर अपना पुष्पक रथ राम को भेज दिया। २२ उन्होंने सन्देश भेजा— "जिस पुष्पक को रावण ने हर लिया था, उसे आपने रावण से छीन लिया। २३ इसलिए जब तक यह धरती रहेगी तब तक यह पुष्पकविमान आपकी सवारी बना रहेगा।" २४ राम ने पुष्पक से कहा— "जब मुझे आपका प्रयोजन होगा तब मैं आपको याद करूँगा, आप आइयेगा। आप अदृश्य रूप में रहिये। इससे बड़ा सुख मिलेगा।" २५-२६ अपना राजकाज राजनीति के सिद्धान्तों के अनुसार अलौकिक-असाधारण कौशल से चलाते थे। २७ वहाँ कहीं अन्याय-अत्याचार का नाम नहीं था। धरती सदा सस्यों से हरी-भरी रहती थी। २८ राम

माता सभ काँ वा सीता काँ, जे छथि हमरा भाय ॥ ५५ ॥
लोक कहै अछि की से कहु कहु, हमर शपथ अहँ खाय ॥ ५६ ॥
विजय नाम एक हास्य-सभासद, कहलनि शुनु रघुनाथ ॥ ५७ ॥
शपथ खाय हम सत्य कहै छी, करइत छी नहि लाथ ॥ ५८ ॥
सीता काँ बन सौँ दशकन्धर, हरि लय गेल निज धाम ॥ ५९ ॥
से पुन पटरानी छथि सम्प्रति, केहन हृदय छथि राम ॥ ६० ॥
धोबिनि रूसि गेलि छलि घरसौँ, धोबि कहल खिसियाय ॥ ६१ ॥
जेहने नृपति प्रजा-गति तेहनि, राजा कर से न्याय ॥ ६२ ॥
जन सभ चूप भूप रघुनन्दन, कहलनि सभकाँ जाय ॥ ६३ ॥
नयन सजल लक्ष्मण काँ केवल, कहल रहस्य मँगाय ॥ ६४ ॥
लोकमध्य अपवाद शुनल अछि, सीता-कृत विस्तार ॥ ६५ ॥
सीता त्याग करब हम सम्प्रति, हमरा चित्त विचार ॥ ६६ ॥
प्रातहि सीता रथ चढ़ाय अहुँ, लक्ष्मण सत्वर जाउ ॥ ६७ ॥
मुनि वाल्मीकि आश्रम-वनमे, चित्रकूट पहुँचाउ ॥ ६८ ॥
जौँ अन्यथा करी तौँ हमरा, मारी अहँ तरुआरि ॥ ६९ ॥
हा विधि-कृत हमरा छूटइत छथि, सीता सध्वी नारि ॥ ७० ॥

बारे में या हमारे भाई भरत के बारे में लोग क्या बोलते हैं, यह मेरी सौगन्ध खाकर ठीक-ठीक बताइये।" ५५-५६ विजय नाम के एक मज़ाक़िया दरबारी ने कहा— "हे प्रभु, सुनिए। ५७ मैं शपथपूर्वक सच-सच बताता हूँ, कोई छल नहीं करता हूँ। ५८ लोग बोलते हैं, सीता को हरकर रावण अपने घर ले गया था। ५९ वह लौटकर आज पटरानी बनी हुई है। कैसा हृदय है राम का। ६० एक धोबिन रूठकर घर से निकल गई थी। लौटने पर उसे धोबी ने गुस्से में आकर कहा— जैसा राजा करता है वैसा ही उसकी प्रजा करती है। जो राजा करता है वही उचित समझा जाता है!" ६१-६२ सुनकर दरबार के सभी लोग गुम हो गये। राजा राम ने दरबार के सभी लोगों को जाने की आज्ञा दी। ६३ राम ने लक्ष्मण की आँखों में आँसू देख उन्हें एकान्त में बुलाकर कहा— ६४ "प्रजा के बीच सीता के बारे में एक बड़ा अपवाद सुना है। ६५ अब मैं सीता को छोड़ दूँगा। यही मन में निश्चय किया है। ६६ हे लक्ष्मण, तुम सुबह होते ही सीता को रथ पर चढ़ाकर जल्द जाओ; ६७ और चित्रकूट वन में वाल्मीकि के आश्रम में पहुँचाकर वहाँ छोड़ आओ। ६८ यदि मैं इसमें बाधा करूँ तो मुझे तलवार से खत्म कर देना। ६९ हाय, विधाता का क्या विधान है? सीता-सी सती-साध्वी स्त्री को छोड़ना पड़ रहा है।" ७० सुबह होते ही सुमन्त्र-सहित

देव देवगण कह कर जोड़ि। चलु वैकुण्ठ मर्त्यसुख छोड़ि ॥ ४१ ॥
बनि-मुनि-पत्नी काँ वसु देब। तनिकाँ सँ हम आशिष लेब ॥ ४२ ॥
होइछ मन वन देखी जाय। अबितहुँ गङ्गा तीर्थ नहाय ॥ ४३ ॥
जे रुचि हो से करु प्रभु काज। कयल बहुत दिन पृथिवी-राज ॥ ४४ ॥
भयलहुँ जे मन कय सङ्कल्प। तकरो समय रहल अछि अल्प ॥ ४५ ॥
सीता-वचन शुनल प्रभु कान। की कर्त्तव्य धयल प्रभु ध्यान ॥ ४६ ॥

॥ सोरठा ॥

कहइत छी एकान्त, करब लोक-अपवाद छल ॥ ४७ ॥
जनइत छी वृत्तान्त, त्यागब अहँ काँ देब वन ॥ ४८ ॥
जनमत युगल कुमार, गर्भवती अहँ सौं वनहिं ॥ ४९ ॥
होयत चरित उदार, शपथ करब अहँ आबि पुन ॥ ५० ॥
भूमिक विवर समाय, जायब अहं वैकुण्ठ पुन ॥ ५१ ॥
किछु दिन हमहुँ गमाय, जानकि तत अयबे करब ॥ ५२ ॥

॥ पावाकुल दोहा ॥

॥ तिरहुति ॥

हास्यप्रौढ़ कथा पण्डित काँ, पुछलनि जखना राम ॥ ५३ ॥
कथा प्रसङ्ग पुछल की कहइछ, ग्राम-लोक सभ ठाम ॥ ५४ ॥

कितने दिन रहना है ? ४० हे प्रभु, देवता लोग हाथ जोड़कर कह रहे हैं कि मर्त्यलोक का सुखभोग छोड़कर अब वैकुण्ठ चलिए। ४१ वैकुण्ठ जाने के पहले मैं चाहती हूँ कि वनवासी मुनियों की पत्नियों को कुछ दान दें और उनसे आशीर्वाद लें। ४२ मन करता है कि फिर जाकर वन देखती और गंगा-स्नान करती। ४३ हे प्रभु, आपको जो-जो काम करने की इच्छा हो, कर लीजिए। आपने पृथ्वी पर बहुत दिनों तक राज किया। ४४ मन में जो संकल्प लेकर आये थे उसका समय भी अब थोड़ा ही रहा है।" ४५ राम ने सीता की बात सुनी और सोचने लगे कि क्या करना चाहिए। ४६ उन्होंने सीता से कहा— "मैं एकान्त में एक गुप्त बात बताता हूँ। मैं लोक-अपवाद का बहाना बनाऊँगा। ४७ तुम तो सारा हाल जानती ही हो, तुमको वन में त्याग दूंगा। ४८ वन में तुम दो कुमारों को जनोगी। ४९ वे दोनों बड़े यशस्वी होंगे। तुम फिर लौटकर शपथ करोगी। ५० फिर धरती की दरार में घुसकर तुम वैकुण्ठ चली जाओगी। ५१ हे सीता, कुछ दिन बाद मैं भी वहाँ चला आऊंगा। ५२ एक समय दरबार में राम ने मज़ाक में एक पण्डित से पूछा— "पण्डित जी, मैं यों ही प्रसंगवश पूछता हूँ। गाँव के लोग जहाँ-तहाँ क्या बोलते हैं ? ५३-५४ हमारी माताओं के बारे में, सीता के

जौं कानब एहिठाम कहब अहँ भायकेँ ॥ ८७ ॥
ओत सभ मिलिमिलि सभ्यमे रहब लजायकेँ ॥ ८८ ॥

॥ हंसी छन्द ॥

॥ तिरहुति वेश ॥

हा वैदेही हा वैदेही, वचन कठिन मुखसँ न किछु आबै ॥ ८९ ॥
सीता साध्वी धीरा हंसी, अहँक सुकृत सुर नर मुनि गाबै ॥ ९० ॥
ओ राजा आज्ञा के टारै, विधिक लिखल छल जन न घटाबै ॥ ९१ ॥
जे चाहै से से निर्व्वाहै, सुरपुर बस अथ नरक पठाबै ॥ ९२ ॥

॥ अभिराम अहीर छन्द ॥

हा न हमर किछु दोष—जानकि—परिहरु मानस-रोष ॥ ९३ ॥
शपथ देल रघुनाथ—जानकि—किछु न कयल हम लाथ ॥ ९४ ॥
की अपराध विचारि—जानकि—त्यागल गुणमति नारि ॥ ९५ ॥
कत मन करब कठोर—जानकि—नयन सतत बह नोर ॥ ९६ ॥
हमरे गुरु अपराध—जानकि—आनल बन बनि व्याध ॥ ९७ ॥
चललहुँ हम कय त्याग—जानकि—जाउ जतय मन लाग ॥ ९८ ॥

॥ चञ्चरी छन्द ॥

की करू कत जाउ हाय उपाय सूझ न नारि कें ॥ ९९ ॥
नाथ भास्कर-वंश-पङ्कज-भानु देलनि टारि कें ॥ १०० ॥

यदि आप यहाँ रोएँगे तो मैं आपके भाई से कह दूँगी। ८७ वहाँ इस तरह रोते सभ्य लोगों से मिलेंगे तो आप लज्जित होंगे।" ८८ तब लक्ष्मण बोले— "हाय सीता, मेरे मुँह से कठोर वचन निकल नहीं रहा है। ८९ हे सीता, आप सती-साध्वी हैं, गम्भीर हैं, हंसी की तरह विवेकवाली हैं। देवता लोग, मुनि लोग और साधारण लोग आपका यश गाते हैं। ९० राम राजा हैं। उनकी आज्ञा को कौन टाल सकता है? विधाता ने जो लिख दिया उसे कौन आदमी मिटा सकता है? ९१ विधाता जो चाहता है वह कर दिखाता है। वह चाहे तो स्वर्ग दे सकता है या नरक भेज सकता है। ९२ हे सीता, इसमें मेरा कोई अपराध नहीं है। मुझ पर मन में क्रोध मत कीजिए। ९३ हे सीता, राम ने ऐसा करने के लिए शपथ दी थी। मैंने कोई बहाना बनाकर इसे टाल न सका। ९४ हे सीता, कौन-सा अपराध पाकर राम ने ऐसी गुणवती नारी का त्याग किया? ९५ अब मैं अपने कलेजे को कितना मज़बूत बनाऊँगा। मेरी आँखों से लगातार आँसू बह रहे हैं। ९६ यह मेरा ही भारी अपराध है कि व्याध बनकर मैं आपको वन ले आया। ९७ हे सीता, आपको यहाँ छोड़कर जाता हूँ; आपको जहाँ मन हो, जाइये।" ९८ सीता ने कहा— "क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? इस नारी को कोई रास्ता नहीं सूझता। ९९

॥ सोरठा ॥

रथलय प्रातहिँ जाय, लक्ष्मण सहित सुमन्त्र तहँ ॥ ७१ ॥
प्रभु-अनुशासन पाय, वैदेही कौं कहल से ॥ ७२ ॥

॥ मणिगुण छन्द ॥

चढु चढु रघुवर-घरनि सुरथ मे ॥ ७३ ॥
कहब सकल हम चलयित पथ मे ॥ ७४ ॥
हठ रथ चढ़लि प्रभुक रुचि मन लै ॥ ७५ ॥
अनमनि सनि चललिह विनु जनलैँ ॥ ७६ ॥
सुरसरि उतरि जइति मुनिवन मे ॥ ७७ ॥
तखन प्रकट किछु लछमन मन मे ॥ ७८ ॥
बुझथि न प्रभुरुचि वन-छविसदना ॥ ७९ ॥
पुछल तखन लछमन विधुवदना ॥ ८० ॥

॥ प्लवङ्गम छन्द ॥

देवर जनु करु खेद नयन जलधार की ॥ ८१ ॥
श्रीरघुवर - पद - कमल प्रेम - विस्तार की ॥ ८२ ॥
सत्वर घुरि घर चलब देखि मुनि-कामिनी ॥ ८३ ॥
सुन्दर नव-घनश्याम थिकहुँ सौदामिनी ॥ ८४ ॥
जौँ जनितौँ हम एहन नाथ सङ्ग आनितौँ ॥ ८५ ॥
नारि-सहित मुनिलोक सकल सन्मानितौँ ॥ ८६ ॥

लक्ष्मण रथ लेकर सीता के पास पहुँचे। राम की जैसी आज्ञा थी, सीता को बता दिया। ७१-७२ लक्ष्मण ने कहा— "हे राम की गृहिणी सीता, इस रथ पर चढ़िये। ७३ सारी बात मैं रास्ते में चलते समय बताऊँगा।" ७४ राम की ऐसी इच्छा है, यह सोचकर सीता बरवश रथ पर चढ़ गईं। ७५ उन्हें कुछ समझ में न आया कि क्या बात है! वे उदास थीं। ७६ जब वे गंगा नदी को पार कर मुनि के आश्रम की ओर चलीं तब लक्ष्मण के मन में कुछ भावना की लहर आई। ७७-७८ वन की शोभा देखने में व्यस्त सीता को यह बोध नहीं था कि राम का क्या इरादा है। ७९ तब सीता ने लक्ष्मण से पूछा— ८० "हे देवर लक्ष्मण, आपकी आँखों में यह आँसू कैसे? ८१ क्या राम के चरण-कमल में जो गहरा प्रेम है इसीलिए बिछोह में रो रहे हैं? ८२ मैं मुनियों की पत्नियों से मिलकर तुरत घर लौट जाऊँगी। ८३ राम मेरे लिए नया सुहावना घनश्याम हैं और मैं उनके लिए विद्युत् की चमक हूँ। ८४ यदि मैं जानती कि आप इस तरह रो पड़ेंगे तो मैं पतिदेव को ही साथ लाती, ८५ और पत्नी-सहित सभी मुनियों की पूजा करती। ८६

हम कि कहब दुख-भारे, विधिक लिखल छल जन के टारे ॥ ११३ ॥
समय न छुटय सभाजे, एखनहु धरि मन उपगत लाजे ॥ ११४ ॥
गर्भ-भरालस अङ्गे, नहि परिचारिणि जनि एक सङ्गे ॥ ११५ ॥
मरितौं गरल हम खाये, होइत बड़ गोट कुल अन्याये ॥ ११६ ॥
आब बचत नहि प्राणे, रघुवर-हृदय कि भेल-पषाणे ॥ ११७ ॥
यहन करत के आने, हित-जन-वचन न धयलनि काने ॥ ११८ ॥
कत दिन काटब कानी, कयल कुटिल जन बड़ मन-हानी ॥ ११९ ॥
भूपति होथि न मित्रे, शुनितहिँ छलहुँ से देखल चरित्रे ॥ १२० ॥

॥ तिरहुति ॥

॥ पादाकुल दोहा छन्द ॥

करुणागार उदार प्राणपति, वन देल दोष लगाय रे ॥ १२१ ॥
देवर-दोष विधिक हम को कहु, जनि घर धर्म्म न न्याय रे ॥ १२२ ॥
हमरहि हेतु दशानन मारल, कपिगण सङ्ग लगाय रे ॥ १२३ ॥
तखन पतिव्रत हमर देखल सभ, अनल मे गेलहुँ समाय रे ॥ १२४ ॥
नैहर जौं मिथिला चलि जायब, कहब बाप को माय रे ॥ १२५ ॥
पुरुष-परशमणि-कर हम सोपल, अयलौं कि नाम हँसाय रे ॥ १२६ ॥

इसे कौन टाल सकता था ? ११३ ऐसा वक्त नहीं था कि संग छूटे। अभी तक मन शरमता ही रहा था। ११४ मेरी देह गर्भ के भार से अलसाई हुई है। एक भी परिचारिका साथ नहीं है। ११५ मैं ज़हर खाकर मर जाती, मगर इससे तो बड़े कुल में कलंक लग जाएगा। ११६ अब मेरे प्राण नही बचेंगे। क्या राम का हृदय पत्थर हो गया ? ११७ ऐसा काम उनके सिवा कौन कर सकता है ? उन्होंने तो अपने हितैषियों की बात भी नहीं सुनी। ११८ रो-रोकर कितने दिन गुजारूँगी ? दुष्ट लोगों ने मेरी आशा पर पानी फेर दिया। ११९ सुनती थी कि राजा किसी का मित्र नहीं होता है। आज वह प्रत्यक्ष देख लिया। १२० हाय, मेरे प्राणपति परम दयालु और उदार राम ने मुझे कलंक लगाकर वन में छोड़ दिया। १२१ हे देवर, मैं विधाता को क्यों कोसूँ ? उनके घर में न तो धर्म है, न न्याय। १२२ राम ने कपियों को साथ करके मेरे खातिर ही रावण को मारा। फिर सबों के सामने मैंने अग्नि में प्रवेश किया और सबों ने मेरे पातिव्रत्य की जाँच की। १२३-१२४ अगर मैं अपने पीहर मिथिला चली जाऊँ तो माँ-बाप क्या कहेंगे ? १२५ यही कहेंगे कि 'मैंने तो पारसमणि के समान पुरुषोत्तम राम के हाथ में सौंपा और यह कलंक लगाकर लौट आई'। १२६ हे लक्ष्मण, भले ही शिरीष का फूल वज्र-सा हो जाय और वज्र शिरीष के फूल-सा हो जाय, पर

भेल की अपराध से कह लोक के बन आबि कें ॥ १०१ ॥
आढ्य की जन रङ्क की दुख भोग देह इ पाबि कें ॥ १०२ ॥

॥ अमृतगति छन्द ॥

कहलनि जायक बन मे । रघुवर की पुनि मन से ॥ १०३ ॥
झुकि झुकि ताकथि धरणी । बड़ दुख-सिन्धु न तरणी ॥१०४॥
हम मन भेलहुँ विकला । गति थिक विश्वक चपला ॥१०५॥
कहब न दूषण अनकाँ । सकल शुभाशुभ जनकाँ ॥१०६॥

॥ विष्णुपद छन्द ॥

माय अवनि विष्णु-रमणि, वंश-तरणि शून्य-सरणि ॥ १०७ ॥
हा मरब कष्ट तरब, शुष्क-वदनि साध्वि रमणि ॥ १०८ ॥
आश मनक नाश क्षणक, घोर बनक भीतिजनक ॥ १०९ ॥
नेत्रकमल मेघ सजल, साँझ धुनथि "चन्द्र" भनथि ॥ ११० ॥

॥ तिरहुति ललित विपरीत ॥

॥ हरिपद छन्द ॥

रघुवर बड़ महराजे, कयल उचित नहि सम्प्रति काजे ॥ १११ ॥
हुनकर रमणि कहाये, दुखित बसब हम घन बन जाये ॥ ११२ ॥

सूर्यवंश रूपी कमल के लिए सूरज के समान मेरे पति राम ने मुझे त्याग दिया । १०० यहाँ आये बिना कोई मुझे यह कैसे बतायेगा कि मुझसे क्या अपराध हुआ । १०१ धनी हो या ग़रीब, जो शरीर पाता है उसे दुख भोगना ही पड़ता है । १०२ मन में क्या सोचकर राम ने मुझे वन जाने को कहा ?" १०३ सीता झुक-झुककर धरती की ओर देखती है और कहती है— "माँ, दुख के समुद्र में पड़ गई हूँ । कहीं नाव नहीं मिल रही है । १०४ मैं व्याकुल हो गई हूँ । संसार की गति चंचल होती है । मैं क्या से क्या हो गई । १०५ दूसरे को दोष न दूँगी । लोगों को भला या बुरा जो भी फल मिलता है, सब अपनी ही करनी का होता है । १०६ मेरी माता धरती है, पति विष्णु हैं, वश सूर्यवंश है, फिर भी मेरा रास्ता सूना है । १०७ हाय, मैं मर जाऊँगी, तभी इस दुख से उद्धार होगा ।" कहते-कहते उन सती-साध्वी नारी सीता का चेहरा सूख गया । १०८ क्षण भर में मन की आशा जाती रही । घोर वन उसे भयावना लगने लगा । १०९ उनकी आँखें जल-भरा बादल हो गया । "चन्द्र" कवि कहते हैं कि इस प्रकार सीता विलाप करने लगीं— ११० राम महान् राजा हैं, फिर भी अभी उन्होंने यह उचित काम नहीं किया । १११ उनकी पत्नी कहाकर मैं दुख के साथ घने जंगल में जाकर रहूँगी । ११२ मैं अपनी वेदना क्या बताऊँ ? विधाता ने यही लिखा था ।

॥ रूपक चौपाइ ॥

जननि धरणि सनि रघुवर सन पति ॥ १४१ ॥
मिरहुति जनम सकल जन कह सति ॥ १४२ ॥
हयत यहन गति छलहुँ कि जनइत ॥ १४३ ॥
जनम बितत विधि कनयित कनयित ॥ १४४ ॥

॥ चौपाइ ॥

आश्रम निकट एक जनि नारि । एहन के होइति भुवन दश चारि ॥ १४५ ॥
बिकला कनयित छथि एहि ठाम । के थिक के पुछ परिचय नाम ॥ १४६ ॥
शिष्य कहल मुनि कयलनि ध्यान । हुनकाँ सतत त्रिकालक ज्ञान ॥ १४७ ॥
मुनि बाल्मीकि कहल लय आउ । पूजा हुनकर सविधि कराउ ॥ १४८ ॥
थिकथि जानकी रघुवर-दार । जे हरलनि अछि अवनी-भार ॥ १४९ ॥
मुनि-पत्नी सह कयल निवास । नयन सजल मुख आब न हास ॥ १५० ॥
बड़ आदर सभ कर नित आबि । किछु गुरु-कार्य एतय अछि भावि ॥१५१॥
मानस-ध्यान करथि मुनि जेह । बाहर सीता देखथि सेह ॥ १५२ ॥

"धरती-जैसी माता है, राम जैसे पति हैं; १४१ मिथिला में जन्म है, और सभी लोग सती कहते हैं। १४२ फिर भी ऐसी गति होगी यह कभी सोचा भी नहीं था। १४३ हाय विधाता, क्या मेरी जिन्दगी रोते-रोते ही कटेगी ?" १४४

सीता का वाल्मीकि के आश्रम में आना

एक शिष्य ने मुनि वाल्मीकि से कहा— "आश्रम के पास एक नारी है। ऐसी नारी तो चौदहों भुवन में कहीं न होगी। १४५ वह विकल हो यहाँ रो रही है। वह कौन है ? उसका परिचय और नाम कौन पूछने का साहस करेगा ?" १४६ शिष्य की यह बात सुनकर मुनि वाल्मीकि ने ध्यान लगाया। उन्हें तो सदा वर्तमान-भूत-भविष्य तीनों काल का सारा हाल मालूम रहता है। १४७ वाल्मीकि मुनि ने कहा— "उन्हें लेते आओ और विधिपूर्वक उनकी पूजा करो। १४८ वे जनक की बेटी और उन राम की पत्नी सीता हैं, जिन राम ने रावण को मारकर धरती का भार दूर किया।" १४९ सीता वाल्मीकि के आश्रम में आकर मुनि-पत्नियों के साथ रहने लगीं। उनकी आँखें आँसू से भीगी रहतीं और मुँह पर कभी प्रसन्नता न रहती थी। १५० वाल्मीकि के आश्रम में बड़े आदर के साथ नित्य सभी लोग यह सोचकर आते कि गुरु को कोई काम होगा। १५१ मुनि वाल्मीकि मन में जो ध्यान करते थे वही सीता के रूप में बाहर दिखाई देता था। १५२ सीता का बरताव देख

सिरिस सुमन बरु होय अशनि सन, अशनि तेहन भय जाय रे ॥ १२७ ॥
से बरु होय होथि नहि अकरुण, अहँ काँ बड़का भाय रे ॥ १२८ ॥
कि कहब कहय योगि नहि रहलहुँ, भेलहुँ सबहिँ काँ भार रे ॥ १२९ ॥
कतहु रहब जानकि जन कहते, श्रीरघुनन्वन-दार रे ॥ १३० ॥

॥ वियोगि मालव छन्द ॥

रघुवर देल बिपिन वास, ओ हुनि हास, नारि मरब हम वन त्रास ॥ १३१ ॥
एकसरि नारि कतय जाउ, विष खाउ, विधि निर्दय कत गोहराउ ॥ १३२ ॥
रघुवर-मन की निर्दय, देल एत कय, हमरहि भाग कि दुखचय ॥ १३३ ॥
बिधिहुक विधि ओ रघुराज, किछु के बाज, प्रभु छथि कयलनि भल काज ॥१३४॥

॥ दोबय छन्द ॥

लक्ष्मण सीता काँ पुन कहलनि अपनेँ कां की कहबे ॥ १३५ ॥
सर्व्वसहा जननी छथि अपनेँक, कठिन कष्ट सभ सहबे ॥ १३६ ॥
ई आश्रम वाल्मीकि मुनिक थिक, गेलि जाय तत माता ॥ १३७ ॥
दोष न हमर प्रणाम करैछी, साक्षी सकल विधाता ॥ १३८ ॥

॥ बरबा छन्द ॥

लक्ष्मण कहि घर चलला, घुरि नहि ताक ॥ १३९ ॥
पहुँचलाह रघुवर-तट, नहि मुख-वाक ॥ १४० ॥

आपके बड़े भाई ऐसे निष्ठुर नहीं हो सकते हैं। १२७-१२८ क्या कहूँ, मैं कहने लायक न रही। मैं सबों के लिए बला हो गई। १२९ मैं कहीं भी रहूँगी लोक मुझे जनक की बेटी और राम की पत्नी तो कहेगा ही। १३० राम ने मुझे वनवास दिया, इससे उनका केवल उपहास होगा, पर मैं तो वन में डर से ही मर जाऊँगी। १३१ मैं अकेली औरत कहाँ जाऊँ? क्या जहर खा लूँ? निष्ठुर विधाता से कितनी मिन्नत करूँ। १३२ राम का हृदय कितना निष्ठुर है। मेरा ऐसा हाल कर दिया। क्या सारा दुख-दर्द मुझे ही बदा था? १३३ रघुवंशी राजा राम विधाता के भी विधाता हैं। उनके विरुद्ध कोई क्या बोलेगा? वे प्रभु हैं। उन्होंने जो किया सो अच्छा किया।" १३४ फिर लक्ष्मण ने सीता से कहा— "आपसे क्या कहूँ? १३५ धरती, जो सर्वसहा (सभी पीड़ाओं को सहनेवाली) कहलाती हैं, वह आपकी माता हैं। आप सारा घोर कष्ट भी सह लेंगी। १३६ वह वाल्मीकि का आश्रम है, हे माता, वहाँ जाइये। १३७ मेरा कोई अपराध नहीं है। मैं प्रणाम करता हूँ। विधाता सभी बातों के साक्षी हैं। १३८ इतना कहकर लक्ष्मण चल पड़े। पलटकर देखा तक नहीं। सीधे राम के पास पहुँचे। मुँह से बोल न निकला। १३९-१४० (इधर सीता फिर विलाप करने लगी—)

करक करक कय बैसलहुँ, मनमं मनमं दुख पैसलहुँ ॥ ५ ॥
थिकथि थिकथि सति जेहनि, कहक कहक की तेहनि ॥ ६ ॥

॥ दोवय छन्द ॥

अधिकल भोग करू प्रारब्धक, करम लिखल परमान रे ॥ ७ ॥
के बुझ कोन छन देह सौँ जायत, चेतन अपन परान रे ॥ ८ ॥
कालहिँ विनश अमर अमरावति, नभ ग्रहगण रवि चान रे ॥ ९ ॥
जाय सुमेरु प्रलय प्रलयानल, जल विनु उदधि महान रे ॥ १० ॥
विनशय धरणि कतय धरणीधर, विभु परिशेष न आन रे ॥ ११ ॥
क्षणिक देह मे नेह निरर्थक, दुख-कारण अभिमान रे ॥ १२ ॥
परमेश्वर माया-रस-विलसित, नर पामर की जान रे ॥ १३ ॥
राम 'चन्द्र' कह वृथा चिन्तना, करु ईश्वर-गुण-गान रे ॥ १४ ॥

॥ दोवय योगिया छन्द ॥

ममता काँ परित्यागू, नहि तौँ दुर्गति आगू ॥ १५ ॥
यावत मलिन वासना रहतो, तावत सुख नहि पयबे ॥ १६ ॥
शुद्ध-वासना-युक्त जखन मन, तखन अभय-पद जयबे ॥ १७ ॥
रजो-रेत-संयोग गर्भ मे, इन्द्रजाल की भारी ॥ १८ ॥

है। राजनीति नहीं, केवल सीता का नयन याद आता है। ४ हाथ में जो कुछ करने का काम था वह तमाम कर लिया। अगाध दुख में समा गया हूँ। ५ मेरी सीता कैसी सती है वह क्या वर्णन किया जा सकता है? ६ पूर्वजन्म के कर्म का भोग पूरा-पूरा कर लो। जो ललाट में लिखा रहता है, वह होकर रहेगा। ७ कौन जानता है कि यह चैतन्यस्वरूप प्राण शरीर से कब निकल जाएँगे। ८ काल पाकर न मरनेवाले देव लोग, उनकी नगरी अमरावती, आकाश, सूर्य-चन्द्रादि ग्रहगण सभी नष्ट हो जाते हैं। ९ प्रलय-काल में सुमेरु भी प्रलय की आग में जल जाता और महासागर भी जलहीन हो जाता। १० धरती खत्म हो जाती है। धरती को धारण करनेवाले शेषनाग और कच्छप का भी पता न रहता। केवल सर्वव्यापक परमेश्वर शेष रह जाते, और कुछ नहीं बचता। ११ यह शरीर जो क्षण भर टिकने वाला है, उसमें अनुराग करना बेकार है। अभिमान अर्थात् शरीर को 'मैं' समझ बैठना ही दुख का कारण है। १२ ईश्वर मायावश रस-विलास करते हैं, यह नासमझ मनुष्य क्या जाने। १३ राम 'चन्द्र' कहते हैं सांसारिक चिन्ता करना व्यर्थ है। ईश्वर का भजन करो। १४ ममता को छोड़ो, नहीं तो आगे बुरा हाल होगा। १५ जब तक चित्त में बुरी भावना रहेगी तब तक सुख नहीं मिल सकता है। १६ जब मन की भावना निष्कलुष हो जाएगी तब अभय पद (मोक्ष) मिलेगा। १७ गर्भाशय में रज और वीर्य के

देखि देखि सीता-व्यवहार। मुनि-पत्नी काँ प्रीति अपार ॥ १५३ ॥
जनयित देखथिन करथिनि चूप। जनमत तनय होयत से भूप ॥ १५४ ॥
सोहर शुनब तनय-मुख हेरि। जन्म सुफल होयत से फेरि ॥ १५५ ॥
की घन सन दृग चुप कर बूढ़ि। सुता विदेहक होइछि मूढ़ि ॥ १५६ ॥

॥ सोरठा ॥

त्यागि देल सभ भोग, आदिदेव सीता-रहित ॥ १५७ ॥
सतत ज्ञान की योग, अतिविरक्त मुनि-व्रत-निरत ॥ १५८ ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे उत्तरकाण्डे चतुर्थोऽध्यायः ॥

॥ अथ पञ्चमोऽध्यायः ॥

॥ सोरठा ॥

नहि अछि ककरो काज, राजकाज मन्त्री करथु ॥ १ ॥
अहँ रहु हमर समाज, लक्ष्मणकाँ रघुनाथ कह ॥ २ ॥

॥ तिरहुति—वियोगि मालव-छन्दः ॥

[गतप्रत्यागतबन्धोयम्]

कथक कथक नहि तट आब, जलज जलज मन वन दाव ॥ ३ ॥
कनक कनक सन मद कर, नयन नयन धनि सन पर। ४ ॥

देखकर मुनि की पत्नियों को सीता के प्रति परम अनुराग हो गया। १५३ जब वे उन्हें रोती देखतीं तब सान्त्वना देतीं— "आपके बेटा होगा और वह राजा बनेगा। १५४ बेटे का मुख देख-देखकर आप सोहर (जन्मोत्सव-गीत) सुनेंगी। फिर आपका जीवन सफल हो जाएगा।" १५५ बूढ़ी औरतें दिलासा देतीं— "आँखों से आँसू को टपकाती हो। क्या विदेह की बेटी होकर तुम अज्ञानी बनती हो?" १५६ उधर आदिदेव राम ने सीता के विरह में सारे भोगों को त्याग दिया। १५७ वे सदा ज्ञान या योग में लगे रहते, और परम विरागी मुनियों का व्रत धारण किये रहते। १५८

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में उत्तरकाण्ड का चौथा अध्याय समाप्त ॥

पाँचवाँ अध्याय

सीता के विरह में राम का आध्यात्मिक चिन्तन

राम लक्ष्मण से कहते— "मुझे किसी का काम नहीं है। मन्त्री लोग राजकाज सँभालें। हे लक्ष्मण, केवल तुम मेरे पास रहो। १-२ गाकर कथा सुनानेवाला कथक अब मेरे पास न आवे। पानी में पैदा होनेवाला कमल भी मेरे मन रूपी वन में आग के समान है। ३ सोना धतूरे की तरह मद करता

॥ रूपमाला छन्द ॥

मिहिर सम गत-तिमिर, रघुवर सतत शून्य-निवास ॥ ३२ ॥
अन्यदोषाभीत कर धर तट, असीत विलास ॥ ३३ ॥
सरस सारस सन सलक्ष्मण, राज श्रीद्विजराज ॥ ३४ ॥
चिरवन-प्रियवास-वनचर, लसित सतत समाज ॥ ३५ ॥

॥ चौपाइ ॥

मुनिगण बहुत छिकल एक समय । लवणासुर सौं अनुखन सभय ॥ ३६ ॥
यमुनातीर मुनिक आवास । मुनिवृत्तिहु मे बाढ़ल त्रास ॥ ३७ ॥
भार्गव च्यवन चलल अगुआय । मुनि असंख्य लेल सङ्ग लगाय ॥ ३८ ॥
राघव-दर्शन कार्य्य प्रधान । रघुनन्दन कयलनि सन्मान ॥ ३९ ॥
बड़ स्वागत पुछलनि की काज । सभ मुनिजन आयल छी आज ॥ ४० ॥
ब्राह्मण हमर सतत छथि देव । हुनकर टहल करब यश लेब ॥ ४१ ॥
सभ मुनि कृपा कयल अछि आइ । आज्ञा पाबि टहल मे जाइ ॥ ४२ ॥

समान, अन्धकार से हीन हैं, सदा शून्य में (आकाश में या एकान्त में) निवास करते हैं, ३२ अन्य दोषाभीत (अर्थात् दूसरे के अपवाद से डरे, अथवा अगली रात से डरे) रहते हैं, अपना कर (हाथ अथवा किरण) तट पर ही रखते हैं, असीत (सीता अथवा शीत) के बिना ही विचरण करते हैं; ३३ प्रेमी सारस पक्षी के समान सलक्ष्मण (लक्ष्मण जी के साथ, अथवा सारस पक्षी की मादा लक्ष्मणा के साथ) रहते हैं; द्विजराजों (श्रेष्ठ पक्षियों, अथवा उत्कृष्ट ब्राह्मणों) से भूषित रहते हैं, ३४ बहुत दिनों तक वन में प्यारा बसेरा रहा है, और सदा वनचरों की मंडली में शोभित होते हैं। ३५

शत्रुघ्न द्वारा लवणासुर का वध और मथुरा में राजधानी बनाना

एक समय मुनि लोग बाणासुर के डर से सदा त्रस्त और दुखी रहते थे। ३६ मुनियों का आश्रम यमुना के किनारे में था। मुनि लोगों को तपस्वी की भाँति जीवन-निर्वाह करते रहने पर भी भय बढ़ता गया। ३७ भार्गव गोत्र के च्यवन ऋषि आगे चले। उन्होंने असंख्य मुनियों को अपने साथ ले लिया। ३८ उनका मुख्य उद्देश्य था राम का दर्शन करना। राम ने उनकी अच्छी आवभगत की। ३९ बड़ा स्वागत किया और पूछा— "आज सभी मुनि लोग आये हैं। क्या काम है? ४० ब्राह्मण हमारे लिए सदा देवता हैं। उनकी सेवा मैं करूँगा और यश पाऊँगा। ४१ आज सभी मुनियों ने यहाँ पधारने की कृपा की है। आज्ञा हो तो आपकी सेवा में लग जाऊं। ४२ मैं ब्राह्मणों का सेवक हूँ। आप लोग जो काम कहेंगे, मैं

सकलावयव सहित चैतन्यक, बाहर बड़ व्यवहारी ॥ १९ ॥
भव-सन्ताप-हरण परमेश्वर, व्यापक तन मे बासा ॥ २० ॥
अपना मे अपनहिँ अपनायब, जायब गति निस्त्रासा ॥ २१ ॥
राज्य दार सुत आदि देह हठ, किछु संयोग न रहते ॥ २२ ॥
क्षिति आदिक संघात विलय मे, मृतक लोक जित कहते ॥ २३ ॥
जनिकर जनम मरण नहि होइछ, निर्गुण ब्रह्म कहै छी ॥ २४ ॥
छथि अपरोक्ष मनन करु निश्चय, जौँ भवमोक्ष चहै छी ॥ २५ ॥
तिल मे तेल दुग्ध मे घृत सन, भूत भूत विज्ञाने ॥ २६ ॥
मन सौँ मथन करू सुख पायब, विदित उपाय न आने ॥ २७ ॥

॥ सोरठा ॥

लक्ष्मण जोड़ल हाथ, देव-देव करुणा-भवन ॥ २८ ॥
क्षमाशील-रघुनाथ, आत्मज्ञान-विवेक कहु ॥ २९ ॥
तखन देव रघुराज, कहल सकल छल रहित तत ॥ ३० ॥
लक्ष्मण-मन सभ काज, बनल विवेकी रहथि नित ॥ ३१ ॥

संयोग से क्या अजब जादू होता है। १८ जब सभी अंगों से युक्त शरीर में चैतन्य आ जाता है तो बाहर होकर वह बड़ा दुनियावी हो जाता है। १९ परमेश्वर ही इस जन्म-मरण के कष्ट को दूर करनेवाले हैं। शरीर में व्यापक रूप से उन्हीं का निवास रहता है। २० यदि अपने में अपने को पकड़ पाओगे तभी अभय पद पाओगे। २१ राजपाट, पत्नी, पुत्रादि परिवार, शरीर इनका आत्मा में कोई संस्पर्श न रह जाएगा। २२ पृथ्वी, जल आदि पदार्थों का जब प्रलयकाल में लोप हो जाएगा तब लोग तो मर जाएँगे पर आत्मा जीवित रहेगा। २३ जिनका न जन्म होता है और न मरण उन्हें निर्गुण ब्रह्म कहते हैं। २४ उनका साक्षात्कार हो सकता है। यदि मोक्ष चाहते हो तो उनका चिन्तन-मनन करो। २५ जिस तरह तिल में तेल रहता है और दूध में घी रहता है उसी तरह विज्ञानरूप आत्मा हर प्राणी में रहता है। २६ उस विज्ञानस्वरूप आत्मा का मन से चिन्तन-मनन करो, तभी सुख मिलेगा, और कोई चारा नहीं।" २७ लक्ष्मण ने यह सुन हाथ जोड़कर कहा— "हे देवों के देव, दयालु, क्षमाशील राम, मुझे कुछ आध्यात्मिक उपदेश दीजिए।" २८-२९ तब राम ने निश्छल भाव से दिल खोलकर लक्ष्मण को सारा रहस्य समझाया। ३० लक्ष्मण के मन की सारी कामना पूरी हुई। वे सदा विवेकवान् ज्ञानी बने रहे। ३१ भगवान् राम सूरज के

॥ रूपमाला छन्द ॥

कहल तत शत्रुघ्न करयुग जोड़ि कें तहिठाम ॥ ५७ ॥
नाथ लक्ष्मण कयल बहु बेर असुर सौं संग्राम ॥ ५८ ॥
भरत नन्दीग्राम मे कृश नियम-संयमवान ॥ ५९ ॥
हमहिँ लवणासुरक हन्ता होयब हे भगवान ॥ ६० ॥

॥ चौपाइ ॥

शुनि शत्रुघ्नक वचन गभीर। समुचित कहल देव रघुवीर ॥ ६१ ॥
तनिकाँ लेल अङ्क आरोपि। देल दिव्य शर रघुवर सोपि ॥ ६२ ॥
कहलनि यहिसौं शत्रु विनाश। करु शत्रुघ्न लाभ मन आश ॥ ६३ ॥
लक्ष्मण सौं सम्भार अनेक। मँगबाओल कयलनि अभिषेक ॥ ६४ ॥
राजा भेलहुँ अहाँ मथुराक। सकल मनोहर धर्म्म-धुराक ॥ ६५ ॥
लवणासुरक विनाश - उपाय। जखना घर सौं कानन जाय ॥ ६६ ॥
नाना जन्तु पकड़ि कें खाय। के नहि तकरा डरय डराय ॥ ६७ ॥
तखनहिँ हुनकर रोकब द्वारि। धनुषबाणधर लेबनि मारि ॥ ६८ ॥
शङ्कर देल शूल घर धयल। लवणासुर हिंसापथ अयल ॥ ६९ ॥
जेहन रघूत्तम कहल उपाय। से शत्रुघ्न कयल विधि जाय ॥ ७० ॥
आओत क्रुद्ध लड़त तनि मारि। मुनिजन-मनक कष्ट देब टारि ॥ ७१ ॥

जोड़कर कहा— "हे प्रभु, लक्ष्मण तो कई बार राक्षसों से लडाई कर चुके हैं। ५७-५८ भरत भी नन्दिग्राम में कठोर नियम-सयम से रहते हुए बहुत दुबले हो गये हैं। ५९ इसलिए हे भगवान्, लवणासुर को मारने का मौका मुझको दिया जाय।" ६० शत्रुघ्न की यह गहरी बात सुनकर भगवान् राम ने कहा— "तुम ठीक कहते हो।" ६१ फिर उन्हें स्नेह से गोद में उठा लिया और दिव्य बाण दिया। ६२ उन्होंने कहा— "इससे तुम शत्रु का संहार करोगे। हे शत्रुघ्न, तुम विजय की आशा करो।" ६३ लक्ष्मण को आदेश देकर उनसे अभिषेक के सामान मँगवाये और भरत का अभिषेक कर दिया और कहा— ६४ "तुम मथुरा के राजा हुए जो सभी नगरों से अधिक सुन्दर है, और धर्म में अगुआ है। ६५ अब लवणासुर को मारने का उपाय बताता हूँ। जब वह घर से निकलकर जंगल में जाता, तरह-तरह के प्राणियों को पकड़-पकड़कर खाने लगता है। उसके डर से कौन नहीं भाग जाता। ६६-६७ ऐसे ही मौक़े पर तुम उसके द्वार को छेंक लेना, और धनुष-बाण चलाकर उसे मार डालना।" ६८ लवणासुर शिव का दिया हुआ त्रिशूल घर में रखकर शिकार करने चल पड़ा। ६९ तब राम ने जैसा बताया था, शत्रुघ्न ने वैसा ही उपाय किया। ७० राम ने कहा— "वह आयेगा और गुस्साकर लड़ने लगेगा। उसे मारकर तुम मुनियों का कष्ट

हम छी ब्राह्मण-सभहिक भृत्य। करबे करब कहब जे कृत्य॥ ४३॥
शुनि मुनि वचन कहय लगलाह। लवणासुरक कर्म्म अधलाह॥ ४४॥
कृतयुग मध्य दैत्य मधु नाम। सुर-द्विजगणक भक्त सभठाम॥ ४५॥
तनिकाँ देलनि शम्भु त्रिशूल। होयता भस्म अनलवत तूल॥ ४६॥
रावण-अनुजा भार्य्या तनिक। कुम्भीनसी नाम छल जनिक॥ ४७॥
तनि सौं लवणासुर उत्पन्न। मुनि-हिंसक यज्ञादिक बन्न॥ ४८॥
अयलहुँ शरण अशक्य पड़ाय। प्रभु रघुनन्दन होउ सहाय॥ ४९॥
ई सङ्कष्ट हरत के आन। अयलहुँ शरण ताकि भगवान॥ ५०॥

॥ दोहा ॥

कहलनि सत्य-प्रतिज्ञ प्रभु, मरत दुष्ट निर्भीक॥ ५१॥
नहि भय नहि भय सकल मुनि, लवणासुर की थीक॥ ५२॥

॥ जयकरी छन्द ॥

मुनिजन काँ प्रभु कयल विदाय। तखन कहल प्रभु शुनु सभ भाय॥ ५३॥
के मारत गय असुर प्रचण्ड। के धर समर तोर कोदण्ड॥ ५४॥

॥ दोहा ॥

भरत राम महिपाल सौं, प्रणत सुवचन उचार॥ ५५॥
हम मारब खल लवण काँ, प्रभु-आज्ञा अनुसार॥ ५६॥

अवश्य करूँगा।" ४३ सुनकर मुनि लोग लवणासुर के अत्याचार का वर्णन करने लगे। ४४ "सत्ययुग में मधु नाम का एक दैत्य था। वह सर्वत्र देवताओं और ब्राह्मणों के प्रति भक्ति करता था। ४५ उसको शिव ने एक त्रिशूल दिया। वह जिसे लगेगा वह आग में रुई की तरह जल जाएगा। ४६ रावण की छोटी बहन, जिसका नाम कुम्भीनसी था, उसकी पत्नी थी। ४७ उसी के गर्भ से लवणासुर का जन्म हुआ। वह मुनियों की हिंसा करने लगा और यज्ञ आदि कर्म बन्द हो गये। ४८ हम लोग मजबूर होकर भाग आये हैं। हे राम! आप हम लोगों की सहायता कीजिए। ४९ हमें इस विपत्ति से और कौन बचाएगा? इसलिए खोजते-खोजते हम आपकी शरण में आये हैं।" ५० यह सुनकर सत्यवादी भगवान् ने कहा— "यह बेहया बदमाश अवश्य मरेगा। हे मुनियो, आप लोगों को कोई डर नहीं, कोई डर नहीं। मेरे सामने यह लवणासुर क्या है?" ५१-५२ यह कहकर राम ने मुनियों को विदा किया। उसके बाद अपने भाइयों से कहा— "हे भाइयो, सुनो। इस आततायी राक्षस को कौन मारेगा? लड़ाई के लिए कौन तीर-धनुष उठाएगा?" ५३-५४ भरत ने राजा राम से विनयपूर्वक कहा— ५५ "आपकी आज्ञा हो तो मैं इस दुष्ट लवणासुर को मारूँगा।" ५६ तब शत्रुघ्न ने वहाँ दोनों हाथ

वैदेही - सुत युगल समान । त्रिभुवन कतहुँ शुनल नहि गान ॥ ८७ ॥
मुनिजन शुनथि सहित अनुराग । समय समय गाबथि से राग ॥ ८८ ॥

॥ सोरठा ॥

प्रथमहि भैरव राग, मालकोश हिण्डोल पुन ॥ ८९ ॥
श्रवण-मनोहर लाग, दीपक श्री ओ मेघ षट ॥ ९० ॥

॥ पादाकुल दोहा ॥

सुस्वर सरस सराग मधुरतर, सालङ्कार प्रमाण ॥ ९१ ॥
स्वर पद छन्द सुताल सुलय युत, युगलकुमर कर गान ॥ ९२ ॥

॥ चौपाइ ॥

स ऋ ग म प ध नी ई स्वर सात । स्वर-प्रस्तार बदन अवदात ॥ ९३ ॥
उच्च निषाद तथा गान्धार । नीच ऋषभ धैवत उच्चार ॥ ९४ ॥
स्वरित स्वर हो यहि सौं आन । कुश लव शिव सुगीति काँ जान ॥ ९५ ॥
षड्ज स्वर रट मत्त मयूर । चातक रटय ऋषभ स्वर पूर ॥ ९६ ॥
अजा उचार करय गान्धार । माध्यम स्वर काँ क्रौञ्च उचार ॥ ९७ ॥
कोकिल पंचम स्वर कर गान । धैवत मण्डुक-वचन समान ॥ ९८ ॥
स्वर निषाद गर्ज्जित गजराज । राग कुशीलव - कण्ठसमाज ॥ ९९ ॥
हास्य शृङ्गार गीत शुभ बेरि । पञ्चम मध्यम स्वर काँ टेरि ॥१००॥
वीर रौद्र अद्भुत प्रस्ताव । षड्ज ऋषभ स्वर काँ से गाब ॥१०१॥

गान सीता के ये दोनों कुमार गाते वैसा तीनों भुवनों में कहीं नहीं सुना । ८७ मुनि लोग वह गान चाव से सुनते और स्वयं भी वह राग गाते । ८८ भैरव, मालकोश, हिन्दोल, दीपक, श्री और मेघ ये छः राग सुनने में बड़े अच्छे लगते । ८९-९० ये कुमार जो गाते थे उसमें ठीक स्वर, रस, राग, अलंकार, छन्द, ताल और लय होते थे । ९१-९२ स-रे-ग-म-प-ध-नि ये सात स्वर होते हैं, फिर इन सातों के प्रस्तार (विभिन्न प्रकार के विन्यास) से उनका गला एकदम साफ़ हो चुका था । ९३ निषाद और गान्धार उच्च स्वर हैं; ऋषभ और धैवत नीच स्वर हैं । ९४ इनसे भिन्न स्वर अर्थात् स, म, और प, स्वरित हैं । कुश और लव शैव-सिद्धान्त के अनुसार गाते थे । ९५ षड्ज स्वर में मतवाला मयूर बोलता है, ऋषभ स्वर में चातक रहता है, बकरी गान्धार स्वर का उच्चारण करती है, क्रौंच पक्षी मध्यम स्वर में बोलता है, कोयल पंचम स्वर में गाता है, मेंढक धैवत स्वर उचारता है, और हाथी निषाद स्वर में चिंघाड़ता है । राग कुशी-लवों के कंठ में रहते हैं । ९९-९९ शुभ अवसर पर हास्य और शृंगार रस के गीत पंचम और मध्यम स्वर में गाये जाते हैं । १०० वीर, रौद्र और अद्भुत रस षड्ज और ऋषभ स्वरों में गाये जाते हैं । १०१ करुण रस के विषाद-गीत गान्धार और निषाद स्वर में गाये

ओ वन सुन्दर मधुवन नाम। ततहि करब अहँ सुन्दर धाम॥ ७२॥
भायत घोड़ा पाँच हजार। तकर अर्द्ध रथ सहित सबार॥ ७३॥
षटशत वारण वर सम्पत्ति। आओत तीनि अयुत तत पत्ति॥ ७४॥
भ्राता काँ लेल हृदय लगाय। आशिष दय कहु कहल विदाय॥ ७५॥
जेहन रीति कहल छल राम। तेहने कयल जाय संग्राम॥ ७६॥
मधुसुत काँ मारल संग्राम। मथुरा जनपद कयलनि धाम॥ ७७॥
सीता काँ जनमल सुत यमल। विधुमुख लोचन सौँ जित कमल॥ ७८॥
मुनि-बनितागण सोहर गाब। हर्षक नोर नयन भरि आब॥ ७९॥
तनिकर नामकरण मुनि कयल। कुश लब नाम क्रमहि सौँ धयल॥ ८०॥
सीता - बालक युगल विनीत। भेला मुनिजन सौँ उपनीत॥ ८१॥
क्रम क्रम विद्या पढ़लनि ढरि। हो अभ्यास शुनथि एक बेरि॥ ८२॥
सीता - तनय रूप - गुण - अयन। विधि सौँ कयलनि बेदाध्ययन॥ ८३॥
सकल रामायण देल पढ़ाय। मुनि वाल्मीकि सुप्रीति बढ़ाय॥ ८४॥
स्वर - सम्पन्न सुयुगल कुमार। तन्त्रीलययुत गाब उदार॥ ८५॥
वन चलयित मुनि-जन जे शून। अति आश्चर्य्य मनहि मन गून॥ ८६॥

दूर करना। ७१ वह जो सुहावना जंगल मधुवन का है वहीं तुम अपनी राजधानी बनाना। ७२ सवार-सहित पाँच हज़ार घोड़े भेजूँगा और उसका आधा रथ। ७३ छः सौ हाथी भेजूँगा और तीस हज़ार पैदल सैनिक।" ७४ यह कहकर राम ने शत्रुघ्न को गले से लगा लिया और आशीर्वाद देकर विदा किया। ७५ राम ने जैसा ही कहा था शत्रुघ्न ने उसी के अनुसार लड़ाई की। ७६ मधु के पुत्र लवणासुर को लड़ाई में मार डाला और मथुरा में अपनी राजधानी बनाई। ७७

कुश और लव का जन्म और शिक्षा-दीक्षा

सीता के जुड़वाँ पुत्र हुए। दोनों बच्चों के मुँह चाँद को और आँखें कमल को पराजित करनेवाली थीं। ७८ मुनि की पत्नियाँ जन्मोत्सव-गीत सोहर गाने लगीं। उनकी आँखों में हर्ष के आँसू भर आये। ७९ वाल्मीकि ने उन दोनों का नामकरण-संस्कार किया और क्रमशः कुश तथा लव नाम रखे। ८० कालक्रमेण सीता के दोनों कुमारों का मुनियों ने उपनयन-संस्कार किया! ८१ उन्होंने बहुत-सी विद्याएँ पढ़ीं। जो एक बार सुनते थे वह याद हो जाता था। ८२ रूप और गुणों से भरे सीता के दोनों पुत्रों ने ब्रह्मा से वेद पढ़ा। ८३ मुनि वाल्मीकि ने सारी रामायण पढ़ा दी। ८४ दोनों कुमारों का गला मीठा था। वे वीणा के लय पर शानदार गाते थे। ८५ वन में जाते हुए जो मुनि लोग सुनते, वे मन-ही-मन बड़ा अचरज करते। ८६ जैसा

मुनि बाल्मीकि कहय लगलाह। दिव्य समाधि सुखी जगलाह॥ ११७॥
थिकथि चिदात्मा सतत अदेह। देह दृष्ट ई तनिकर गेह॥ ११८॥
मन्त्री थिकथि तनिक अभिमान। अपनहिँ तनिकाँ कयल प्रधान॥ ११९॥
तन-तादात्म्य चलल विस्तार। दृढ़ सङ्कल्प निगड़ व्यवहार॥ १२०॥
पुत्र दार गृह आदि जनेक। सभमे ममता बढ़ल अनेक॥ १२१॥
कय सङ्कल्प करथि पुन शोच। संसृति नाना तरहक रोच॥ १२२॥
उत्तम मध्यम अधम शरीर। सत्त्वरजस्तम सभ मे फीर॥ १२३॥
तमोवृद्धि पर गुण हो ह्रास। कृमिकीटादिक होथि प्रकाश॥ १२४॥
सत्त्व - रूप सङ्कल्प प्रधान। सतत परायण धर्म्मज्ञान॥ १२५॥
बड़ साम्राज्य अदूर सुमोक्ष। विद्यमान सुख हो अपरोक्ष॥ १२६॥
रजोरूप सङ्कल्प प्रभाव। सद्व्यवहार विशुद्ध स्वभाव॥ १२७॥
पुत्र दार धन सम्पत्ति पाब। रजोगुणक नृपति बनि आब॥ १२८॥
त्रिविध त्याग सङ्कल्प - विहीन। मन सौँ मनन न होयब दीन॥ १२९॥
वर्ष सहस्र बहुत तप करब। सुख दुख चक्र सतत सञ्चरब॥ १३०॥

वाल्मीकि मुनि अलौकिक समाधि से जागकर सुखपूर्वक कहने लगे— ११७ "चैतन्यस्वरूप आत्मा सदा शरीर से अलग होता है। यह जो शरीर देखा जाता है, वह उसका घर है। ११८ अभिमान उस आत्मा का मन्त्री है। आत्मा ने स्वयं उसे प्रधान बना दिया है। ११९ आत्मा की शरीर से अभिन्नता का मिथ्या ज्ञान फैलता गया। दृढ़ संकल्प अर्थात् कर्म के प्रति आग्रह बेड़ी-जैसा है। १२० बेटा, स्त्री, घर-द्वार आदि जो भी चीजें हैं, सबमें ममता बढ़ती गई। १२१ लोग स्वय संकल्प करते और स्वयं पछताते। संसार में नाना प्रकार का आकर्षण होता है। १२२ जीव को सत्त्व, रजस् और तमस् इन तीन गुणों के प्रभाव से क्रमशः उत्तम, मध्यम और अधम कोटि के शरीरों से गुजरना पड़ता है। १२३ तमस् के बढ़ने से गुण में कमी आती है और कीड़ों-मकोड़ों का शरीर प्राप्त होता है। १२४ सत्त्व प्रधान संकल्प होने से सदा धर्म और ज्ञान की ओर प्रवृत्ति होती है। १२५ बड़ा साम्राज्य मिलता, मोक्ष की प्राप्ति निकट हो जाती है, और प्रत्यक्ष सुख मिलने लगता है। १२६ रजस्-प्रधान संकल्प होने से अच्छा बरताव और परम निश्छल स्वभाव मिलता है। १२७ पुत्र, स्त्री और धन-दौलत पाता है और रजोगुण वाला राजा बनता है। १२८ तीनों प्रकार के संकल्प से दूर रहो। मन से चिन्तन-मनन करते रहो। कभी दीनता न आएगी। १२९ हज़ार वर्षों तक कठोर तपस्या करोगे; सुख और दुख के चक्र में सदा घूमते रहोगे। १३० जो पाँच इन्द्रिय, मन और ज्ञान से युक्त रहते तथा बुरी

गीति करुणरस रीति विषाद। स्वर गान्धार प्रचार निषाद ॥ १०२ ॥
गीत विभत्स भयानक जखन। धैवत स्वर उच्चारक तखन ॥ १०३ ॥
एकइस गोट मूर्छना नाम। बाइश श्रुति सम्मति तेहिठाम ॥ १०४ ॥
अथवा श्रुति कह चौदह गोटि। चौदह गोटि मूर्छना कोटि ॥ १०५ ॥
रामायण कर कुश लव गान। हरिण हजार शुनथि दय कान ॥ १०६ ॥
नहि तालक न राग अवमान। कुश लव कुशल सकल मत जान॥ १०७ ॥
अथ एक समय राम महिपाल। अश्वमेध मख करथि विशाल ॥ १०८ ॥
विधि आरम्भ करय लगलाह। सकल निमन्त्रित मुनि चललाह॥ १०९ ॥
कनकमयी सीता निर्म्माय। यज्ञ कयल जन देखय जाय ॥ ११० ॥
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यक जाति। मन घन उत्सव चल दिन राति॥ १११ ॥
मुनि वाल्मीकि कयल प्रस्थान। कुश लव शिष्य सङ्ग भगवान ॥ ११२ ॥
ऋषि बाटक लग जखन गेलाह। सुमुनि समाधि-विरत भेलाह ॥ ११३ ॥
कुश पुछलनि गुरु काँ तत जाय। ज्ञात सकल गुरु-सेवा पाय ॥ ११४ ॥
देही काँ संसृति सौं बन्ध। अथवा मुक्ति-युक्ति निर्द्वन्ध ॥ ११५ ॥
कहल जाय गुरु हमरा आज। सेवक शिष्य अनन्य समाज ॥ ११६ ॥

जाते। १०२ जब बीभत्स या भयानक रस में गीत गाना हो तब धैवत स्वर को अपनाएँ। १०३ संगीत में इक्कीस मूर्च्छनाएँ होती हैं और बाईस श्रुतियाँ। १०४ दूसरा मत है कि चौदह श्रुतियाँ होती हैं और चौदह मूर्च्छनाएं। १०५ जब कुश और लव रामायण गाने लगते थे तो हज़ारों हिरन कान देकर सुनने लगते। १०६ न कहीं ताल टूटता, न राग बिगड़ता। कुश और लव संगीत के सभी मतों के ज्ञाता थे। १०७

राम का अश्वमेध यज्ञ करना; गुरु के साथ कुश और लव का वहाँ प्रस्थान

एक समय राजा राम ने अश्वमेध यज्ञ का विशाल आयोजन किया। १०८ यज्ञ का कर्म शुरू हुआ। जितने मुनि आमन्त्रित थे, सभी यज्ञ देखने चले। १०९ सीता की स्वर्ण-प्रतिमा बनाकर यज्ञ किया गया। सभी लोगों ने जा-जाकर देखा। ११० ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सभी जातियों के लोगों के मन में दिन-रात उछाह रहता था। १११ यज्ञ देखने के लिए अपने शिष्य कुश और लव को साथ लिये मुनि वाल्मीकि भी चल पड़े। ११२ जब वाल्मीकि रास्ते के बगल में समाधि लगाकर उससे निवृत्त हुए, ११३ कुश ने वहाँ जाकर गुरु से पूछा— "गुरु की सेवा का अवसर पाकर मुझे सारा ज्ञान प्राप्त हुआ है। क्या आत्मा को जन्म और मरण का बन्धन रहता है? अथवा वह चिन्ता-रहित मुक्त रहता है? ११४-११५ हे गुरु, आज मुझे यह बताइये। शिष्य आपका सेवक है और एकान्त अवसर मिला है।" ११६ यह सुनकर

मन दय शुनल तनिक प्रभु गान। त्यागल मन प्रवृत्ति सुख आन ॥ ८ ॥
पाठ अपूर्व्व जाति भल छन्द। गेय-समन्वित कर आनन्द ॥ ९ ॥
प्रभु-मन भेल शुनब हम गान। करब सदस-दश मे सन्मान ॥ १० ॥
अथ प्रभु काँ कर्म्मान्तर काज। सभा बजाओल राजसमाज ॥ ११ ॥
मुनि पण्डित पटुतर प्राचीन। पौराणिक सशय सौं हीन ॥ १२ ॥
सकल - शास्त्र - वेत्ता जन अयल। निज जन सहित सभा प्रभु कयल ॥ १३ ॥
कुश लव गायन काँ अनबाय। स्वागत-सहित विहित जे न्याय ॥ १४ ॥
कुश लव छवि देखल तहिठाम। अनिमिष - लोचन भेला राम ॥ १५ ॥
सभा परस्पर सभ जन बाज। गायन तुल्यरूप महराज ॥ १६ ॥
वल्कलि जटिल न रहितथि बाल। तौं समतूल राम महिपाल ॥ १७ ॥
राघव सौं नहि बुझि पड़ आन। कथा करथि सभ कानहिं कान ॥ १८ ॥

॥ सोरठा ॥

कुश लव कयलनि गान, मधुर मधुरतर शुद्धस्वर ॥ १९ ॥
शुन गान्धर्व्व जे कान, साधु साधु कह सभ्य सभ ॥ २० ॥
यहन शुनल नहि साम, सकल सभा मन-हरण धुनि ॥ २१ ॥
कहल भरत काँ राम, देबक हिनकाँ अयुत धन ॥ २२ ॥

ध्यान से वह गीत सुनते रहे। उनका मन अन्य सारे सुख को भूल गया। ८ उस गीत की पंक्तियाँ, उसकी जाति और छन्द अजीब थे। संगीत से युक्त होकर वह आनन्द कर देता था। ९ राजा राम को मन हुआ कि वे गान सुनेंगे और दस सभासदों के बीच उनका सम्मान करेंगे। १० तब राम को जब राजकाज से फुरसत हुई तब अन्य काम के लिए राजभवन में सभा बुलाई। ११ उस सभा में मुनि लोग आये, विज्ञ प्राचीन पण्डित लोग आये और पुराणवेत्ता आये, जिन्हें अपने-अपने शास्त्रों में कहीं सन्देह नहीं था। १२ सभी शास्त्रों के विद्वान् आये। राजा राम अपने परिजनों-सहित सभा में उपस्थित हुए। १३ तब गायक कुश और लव को बुलवाया और यथोचित रीति से उनका स्वागत-सत्कार किया। १४ राम कुश और लव की छवि देखते ही एकटक हो गये। १५ सभा में सभी एक-दूसरे से कहते— "अजी, ये दोनों गायक तो राजा राम जैसे लगते हैं। १६ यदि इनके वल्कल और जटा न होती तो ये हू-ब-हू राम के समान लगते।" १७ सभी कानाफूसी करते हैं, लगता है, यह रघुवंशी के सिवा और कोई नहीं। १८ तब कुश और लव ने शुद्ध स्वर में मधुर से भी मधुर गान किया। जिस-जिस सभासद ने वह गान सुना, वाह-वाह करने लगा। १९-२० राम ने भरत से कहा— "सारी सभा के मन को हरनेवाली धुन में ऐसा साम-गान तो मैंने सुना ही नहीं था। इन्हें दस लाख स्वर्ण-मुद्राएँ दी जाएँ।" २१-२२ जब भरत देने

रहथि पाँच मन ज्ञान समेत। मति न विचेष्टा चलथि निकेत ॥ १३१ ॥
कहथि परम गति श्रुति-सिद्धान्त। तनिके नाम कहथि बुध शान्त ॥ १३२ ॥
जखन छुटत सङ्कल्पक जाल। जीव ब्रह्मता लह तत्काल ॥ १३३ ॥
कुश लव कुशल रहब सभठाम। वृत्त सुषुप्त चित्त विश्राम ॥ १३४ ॥
॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे उत्तरकाण्डे पञ्चमोऽध्यायः ॥

॥ अथ षष्ठोऽध्यायः ॥

॥ जयकरी छन्द ॥

काज न करब एक अगुताय। ई बेल मुनि वाल्मीकि शिखाय ॥ १ ॥
रामचन्द्र बड़ गोट महराज। आयल छी अहँ तनिक समाज ॥ २ ॥
शुनता जखना अहँ मुह गीति। बाढ़त तनिकाँ अहँ मे प्रीति ॥ ३ ॥
अनतय गायब पड़तनि कान। होयता बड़ प्रसन्न भगवान ॥ ४ ॥
शुनता सभामध्य मँगबाय। गायब गीत चरित-समुदाय ॥ ५ ॥
ओ सन्तुष्ट देता धन ढेरि। ग्रहण न अहाँ करब तहि बेरि ॥ ६ ॥
बाहर बाहर कुश-लव-गान। रामचन्द्र काँ पड़लनि कान ॥ ७ ॥

क्रियाओं में बुद्धि नहीं लगाते हुए अपने घर अर्थात् शरीर में चलते हैं, १३१ उनकी इसी अवस्था का वेद के सिद्धान्त के अनुसार परमगति कहते हैं। उन्हीं को विद्वान् लोग शान्त कहते हैं। १३२ जब संकल्प रूपी जाल छूट जाएगा, तब जीव तुरत ब्रह्म हो जाएगा। १३३ हे कुश और लव, तुम सभी जगह प्रसन्न रहोगे, जब तुम्हारी सारी वृत्तियाँ सुषुप्त हो जाएँगी, और चित्त विश्रामावस्था में आ जाएगा। १३४

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में उत्तरकाण्ड का पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥

छठा अध्याय

कुश और लव के गीतों का राम के कान में पड़ना; राम द्वारा उनकी पहचान; सीता का बुलाया जाना और धरती में प्रवेश

वाल्मीकि मुनि ने सिखाया— "कोई काम हड़बड़ा कर मत करना। १ रामचन्द्र बहुत बड़े महाराज हैं। तुम उनके पास जा रहे हो। २ जब वे तुम्हारे मुँह से गान सुनेंगे तब उन्हें तुम पर बड़ा स्नेह हो जाएगा। ३ अन्यत्र कहीं गाना। स्वर राजा के कान में पड़ेगा। वे बड़े प्रसन्न होंगे। ४ वे तुम्हें सभा (दरबार) में बुलवाकर गान सुनेंगे। तुम रामचरित का गीत गाना। ५ वे खुश होकर बहुत धन देंगे, लेकिन तुम वहाँ लेना नहीं।" ६ रामचन्द्र को बाहर से ही कुश-लव का गीत सुनाई पड़ा। ७ कुछ देर वे

मिथ्या जन अपवाद लगाब । पापक रुचि जनु मन निधि पाब ॥ ३७ ॥
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यक जाति । देखय आयल शूद्र जमाति ॥ ३८ ॥
अयला ततय महर्षि अनेक । वानर-वृन्द सुभक्ति विवेक ॥ ३९ ॥
मुनि वाल्मीकि शीघ्र अयलाह । वैदेही काँ सङ्ग लयलाह ॥ ४० ॥
चललि अधोमुखि मुनि चल आगु । गदगदकण्ठ सती भय त्यागु ॥ ४१ ॥
लक्ष्मी सनि अयली मख ताहि । साधुवाद बाढ़ल धुनि जाहि ॥ ४२ ॥
सीता काँ वाल्मीकि सहाय । सती-शिरोमणि समुचित न्याय ॥ ४३ ॥
कहलनि मुनि वाल्मीकि विचारि । सती शिरोमणि सीता नारि ॥ ४४ ॥
त्यागल पर-अपवादक भीति । अहह रघूत्तम कयल अनीति ॥ ४५ ॥
हमरा आश्रम छलनि निवास । पति-व्रत-रत मन छलि निस्त्रास॥ ४६ ॥
ई कुश लव छथि अहँक किशोर । शुनथि रघूत्तम बह दृग नोर ॥ ४७ ॥
यमल जात एक तरहक गात । जेहने अपनैं हिनकर तात ॥ ४८ ॥
वरुणक हम छी दशम कुमार । शपथ करैं छी बारंबार ॥ ४९ ॥
तप-फल हमरा आब न काज । जौँ दुष्टा सीता महराज ॥ ५० ॥
शुनि मुनि-वचन कहल पुनि राम । दृढ़ प्रतीति हमरहु एहिठाम ॥ ५१ ॥

होनी चाहिए । ३६ जिसे पापकर्मों में चाव रहता है वही लोगों मे झूठा कलंक फैलाता है । इससे उसे लगता जैसे कोई बड़ा खज़ाना मिल गया । ३७ दल बना-बनाकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी वर्णों के लोग देखने आये । ३८ वहाँ अनेक महर्षि लोग आये और भक्त एवं ज्ञान वाले कपिगण आय । ३९ वाल्मीकि मुनि सीता को साथ लिये शीघ्र आ गये । ४० आगे-आगे मुनि चलते थे और पीछे सर झुकाये सीता थी । मुनि गद्गद स्वर में कहते थे— "हे सती सीता, तुम डरो नहीं ।" ४१ लक्ष्मी के समान सीता यज्ञस्थल में आईं । साधु-साधु की ध्वनि गूंज उठी । ४२ सीता को एकमात्र वाल्मीकि सहारा थे— उन्होंने भरोसा दिया— "हे सतीशिरोमणि, तुम्हें उचित न्याय मिलेगा ।" ४३ मुनि वाल्मीकि ने सोच-समझकर कहा— "सीता सतीशिरोमणि है । ४४ लोकापवाद के डर से, हे रघुकुलश्रेष्ठ, आपने जो इसे त्यागा वह इसके प्रति अन्याय किया । ४५ यह मेरे आश्रम मे रहती थी । इसका मन सदा पतिव्रत में लगा रहता था । वहाँ इसे किसी का डर नहीं था । ४६ ये कुश और लव आपके पुत्र हैं ।" यह सुनते ही राम की आँखों से आँसू गिरने लगे । ४७ फिर वाल्मीकि ने कहा— "इनका जन्म जुड़वाँ हुआ है । दोनों का चेहरा एक-सा है । ये ठीक वैसे ही लगते हैं जैसे आप इनके पिता । ४८ मैं वरुण का दसवाँ पुत्र हूँ । बार-बार शपथ करके कहता हूँ । ४९ हे महाराज, यदि सीता कुलटा हो तो मेरा कोई जप-तप काम न आवे ।" ५० मुनि वाल्मीकि की बात सुनकर फिर राम ने कहा—

॥ चौपाइ ॥

जखन सुवर्ण देबय लगलाह। कुश लव तखनहि कहि चललाह ॥ २३ ॥
हम वन बसी कन्द फल खाइ। धनसंग्रह सपनहुँ नहि जाइ ॥ २४ ॥
ई कहि मुनि-सन्निधि संप्राप्त। रामचन्द्र - मन विस्मय व्याप्त ॥ २५ ॥
बुझलनि वैदेहीक कुमार। पुरुष आन के यहन उदार ॥ २६ ॥
कहलनि प्रभु शत्रुघ्न बुझाय। हिनकाँ सभ काँ लाउ बजाय ॥ २७ ॥
जनिकर जनिक कहै छी नाम। सत्वर आबथु सभ यहिठाम ॥ २८ ॥

॥ सवैया छन्द ॥

मारुत-पुत्र सुषेण विभीषण, अङ्गद वालमीकि बजबाउ ॥ २९ ॥
सीता-सहित रहित दुर्ज्जन सौं, वैदेही सौं शपथ कराउ ॥ ३० ॥
रामक उक्ति कहल सभजन काँ, कहलनि मुनि पुनि शुनिकें नीक ॥ ३१ ॥
प्रातहि शपथ करति महि-तनया, न्याय नपति काँ उचिते थीक ॥ ३२ ॥

॥ पादाकुल दोहा ॥

नारी सभ काँ परमदेव पति, गति नहि तनिकाँ आन ॥ ३३ ॥
मुनि-रघुवर-संवाद सकल जन, शुनलनि कानहिं कान ॥ ३४ ॥

॥ चौपाइ ॥

कहलनि रघुवर काँ मुनिराज। करती सीता शपथ जे आन ॥ ३५ ॥
सकल शुभाशुभ जानथु लोक। देखथु आबि रोक नहि टोक ॥ ३६ ॥

लगे तब कुश और लव ने कहा— २३ "हम तो वन में रहते हैं और कन्द-मूल-फल खाकर जीते हैं। धन-संचय करना तो सपने में भी नहीं सोचा।" २४ यह कहकर वे दोनों मुनि वाल्मीकि के पास चले गये। रामचन्द्र को भारी विस्मय हुआ। २५ उन्हें समझ में आ गया कि ये सीता के लड़के हैं। इतना उदार और कौन हो सकता है। २६ राम ने शत्रुघ्न को समझाकर कहा— "इन सबों को बुला लाओ। २७ जिनका-जिनका नाम मैं बताता हूँ, वे सभी जल्द यहाँ आवें। २८ पवनसुत हनुमान, सुषेण, विभीषण, अंगद और वाल्मीकि इन सबों को बुलाओ। २९ सीता भी आवें, लेकिन कोई दुर्जन न आने पावे। उन सबों के बीच सीता से शपथ कराओ।" ३० शत्रुघ्न ने राम की यह बात सबों से कही। मुनि वाल्मीकि ने सुनकर कहा— "ठीक है। ३१ कल सुबह ही धरती की बेटी सीता शपथ करेंगी। राजा का न्याय करना तो धर्म ही है। ३२ स्त्री के लिए पति ही सबसे बड़ा देवता है। स्त्री को और कोई दूसरा सहारा नहीं है।" ३३ राम और वाल्मीकि के बीच जो संवाद हुआ वह कानों-कान सबों को मालूम हो गया। ३४ वाल्मीकि ने राम से कहा— "आज सीता शपथ करेंगी। ३५ भला या बुरा सभी लोग जान लें। सभी आकर के देखें। किसी को रोक-टोक नहीं

खल - उपहास - तम - शमन उदित भेल ।
सज्जन - मानस - कञ्ज - बोध सत्य - तरणी ॥ ६४ ॥

॥ सवैया छन्द ॥

फणिपति-फणवर-सिंहासन-वर, तेहि ऊपर भूदेवि विराज ॥ ६५ ॥
धरणी-विवर उपर जन देखल, बड़ अद्भुत मन मानल काज ॥ ६६ ॥
पुत्रि पुत्रि कहि कहि सीता काँ, ओ लेल अङ्क अपन आरोपि ॥ ६७ ॥
गेलि पाताल सहित फणिपतिसौँ, विवर मृतिकासौँ दय थोपि ॥ ६८ ॥

॥ चौपाइ ॥

कयल अमरगण सुमनक वृष्टि । उठि गेल महि सौँ सीता-सृष्टि ॥ ६९ ॥
सतीशिरोमणि एहनि के आन । धन्या कहि कहि कर जन ध्यान ॥ ७० ॥
सीता-गुण-गण सब जन गाब । रघुनन्दन मन चिन्ता आब ॥ ७१ ॥
प्रभुक स्रवित लोचन मुख ताकि । बाँचथि राम सभहि मन चाँकि ॥ ७२ ॥
मारुतसुत स्वामिनि कहि कान । लभ सौँ हा हत विधि बलवान ॥ ७३ ॥
रामचन्द्र मूर्छित खसलाह । शोक-समुद्र विवश भसलाह ॥ ७४ ॥
रघुवर निकट विकल जन आब । कनइत प्रभु प्रभु कहथि जगाब ॥ ७५ ॥
क्षण मे भय गेल आनक आन । जगलहुँ अनमन सन भगवान ॥ ७६ ॥
करुण कलाप अश्व - क्रतु छन्न । विहित यज्ञ विधि भय गेल बन्न ॥ ७७ ॥

रूपी सूर्य उदित हो गये। दुष्ट लोगों के द्वारा फैलाया गया अपवाद रूपी अन्धकार दूर हो गया। सज्जनों के मन रूपी कमल खिल उठे।" ६४ धरती फट गई। ऊपर से फाँक में लोगों ने एक अद्भुत दृश्य देखा। शेषनाग के फन पर पृथ्वीदेवी बैठी हुई हैं। ६५-६६ पृथ्वीदेवी ने पुत्री, पुत्री पुकारकर सीता को गोद में ले लिया। ६७ शेषनाग-सहित वह पाताल चली गईं और जाते समय उस फाँक का मुँह मिट्टी से बन्द कर दिया। ६८ देवताओं ने फूल बरसाये। धरती पर से सीता की लीला समाप्त हो गई। ६९ लोग याद करने लगे— ऐसी सतीशिरोमणि और कौन होगी ? धन्य हैं, वे धन्य हैं। ७० सभी लोग सीता के गुण गाने लगे। किन्तु राम चिन्ता में डूब गये। ७१ अजस्र आंसू बहाते राम के चेहरे को देखकर लोग चिन्ता करने लगे कि राम कहीं प्राणत्याग न कर दें। ७२ हनुमान "हे स्वामिनी" पुकार-पुकारकर रोने-बिलखने लगे— "हाय, विधाता सबसे ऊपर होता है।" ७३ राम बेहोश हो गिर पड़े। विवश हो शोक-समुद्र में बह गये। ७४ व्याकुल हो लोग राम के पास आते और रोते-रोते "हे प्रभु, हे प्रभु" पुकारकर उन्हें होश में लाते। ७५ अरे, क्षण भर में क्या से क्या हो गया ! होश में आने पर भी प्रभु राम अन्यमनस्क-से लगते हैं। ७६ अश्वमेध यज्ञ के उछाह में करुण भाव छा गया। यज्ञ की क्रिया बन्द हो गई। ७७

अपनेक वचन शुनल हम कान। एहि सौँ प्रत्यय अछि की आन ॥ ५२ ॥
पूर्व्वहुँ सीता लङ्का - देश। जनित प्रतीति अनल-परवेश ॥ ५३ ॥
साधुवाद सुरगण - मुख शून। निज घर आनू सीता पून ॥ ५४ ॥
क्षमा करब मुनि नृपता दोष। त्यागल सती-शिरोमणि रोष ॥ ५५ ॥
थिकथि कुशीलव हमरे तनय। कयल बहुत हम साहस अनय ॥ ५६ ॥
ब्रह्मा इन्द्र देवगण सकल। देखथि राम-चरित निर्व्विकल ॥ ५७ ॥
प्रजा सकल मन नव सुख-सृष्टि। त्यागल राम आज दुर्दृष्टि ॥ ५८ ॥

॥ सारवती छन्द ॥

आइलि-जानकि देवसभा, श्रीमति चम्पक हेमनिभा ॥ ५९ ॥
आनत वारिज-श्रीवदना, प्राञ्जलि भाष जगत्सदना ॥ ६० ॥

॥ मिथिलासङ्गीतानुसारि मालो छन्द ॥

शुनु शुनु सकल सदस्य सत्यकरणी।
शपथ करै छी आज रघुवर - घरणी ॥ ६१ ॥
मनसहुँ आनक चिन्तना नहि कयलहुँ।
रघुवर - पति - आश सर्व्व - शोक - हरणी ॥ ६२ ॥
सत्य पतिव्रत जौँ तनय दुहु प्रभुहिक।
हमरा विवर देतो माता देवी धरणी ॥ ६३ ॥

"इस बात पर मुझे भी पक्का विश्वास है। ५१ आपकी बात मैंने अपने कानों से सुनी। भला इससे बढ़कर और क्या प्रमाण होगा? ५२ सीता लंका में रही, अतः पहले ही अग्नि में प्रवेश करके वह अपना सतीत्व प्रमाणित कर चुकी है। ५३ देवताओं के मुँह से साधु-साधु की आवाज़ के साथ सुन रहा हूँ कि फिर सीता को अपने घर लाइए। ५४ हे मुनि, राजा होने के कारण मुझसे ग़लती हुई कि मैं क्रोध में पड़कर सतीशिरोमणि सीता को त्याग दिया। मेरा यह अपराध आप क्षमा करें। ५५ ये कुश और लव मेरे ही पुत्र हैं। मैंने बहुत साहस और अन्याय किया।" ५६ ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवता लोग एकटक राम के चरित को निहार रहे थे। ५७ सारी प्रजा के मन में नये आनन्द की लहर उठी— आखिर आज राम का भ्रम टूटा। ५८ चम्पा और सोने के समान चमकती हुई सीता राम की सभा में आईं। ५९ उनका कमल-सा मुख झुका हुआ था। घट-घट में व्याप्त शक्तिरूपा सीता बोलीं— ६० "सुनिये, सभी सभासदो, सुनिये मेरी सच्ची बात। मैं रामचन्द्र की पत्नी आज शपथ करती हूँ। ६१ मैंने कभी मन में भी पर-पुरुष की भावना नहीं की। मुझे सभी शोकों का हरण करनेवाले पति रामचंद्र की ही सदा आशा रही है। ६२ यदि मेरा सतीत्व सच्चा होगा तो ये दोनों पुत्र आपके हैं; मुझे माता धरती अपने गर्भ में जगह देगी। ६३ आज सत्य

एत छति जौं हम जनितहुँ, को मनितहुँ, ॥ ९३ ॥
अरजि अरजि दुख कनितहुँ ॥ ९४ ॥
लगइत छल गृह गृहंसन, विधि परसन, ॥ ९५ ॥
दुर्लभ पुन हुनि दरशन ॥ ९६ ॥
गुणवति रमणि बिसरलनि, दुख पड़लनि, ॥ ९७ ॥
उचित धरणि धनि हरलनि ॥ ९८ ॥
आब कि हम सुख पायब, कत जायब, ॥ ९९ ॥
चिन्तित जनम गमायब ॥ १०० ॥
करब न हम नृपतिक सुख, बड़ मन दुख, ॥ १०१ ॥
कत विधु कत जानकि - मुख ॥ १०२ ॥
धरणी-गर्भ चलक बेरि, ई मुख हेरि, ॥ १०३ ॥
कयल प्रणाम बहुत बेरि ॥ १०४ ॥
सुखित सतत ओ रहतीह, दुख कहतीह, ॥ १०५ ॥
सर्वंसहा सनि सहतीह ॥ १०६ ॥
हमहिँ वियोग-विकल मन, नहि सुख छन, ॥ १०७ ॥
विफल बुझल मन जन धन ॥ १०८ ॥
रहितहुँ सुखित मिलित कोक, को सुरलोक, ॥ १०९ ॥
विधिक लिखल के जन रोक ॥ ११० ॥

ऐसा अनर्थ हो जाएगा तो दुर्जनों की बात न मानता, खुद अरज-अरजकर दुख नहीं झेलता। ९३-९४ सीता थी तो घर घर-सा लगता था, और लगता था कि विधाता प्रसन्न है। पर अब तो उसके दर्शन भी दुर्लभ हो गये। ९५-९६ मेरी गुणवती प्रिया मुझे भूल गई। उसे बहुत दुख झेलना पड़ा। पृथ्वी जो सीता को मुझसे छीनकर ले गई सो उसने उचित ही किया। ९७-९८ अब मुझे क्या सुख मिलेगा? सूझता नहीं कि कहाँ जाऊँ? चिन्ता में ही सारी ज़िन्दगी बितानी होगी। ९९-१०० अब मैं राजसुख नहीं भोगूँगा। मन में बड़ी व्यथा है। कहाँ चाँद और कहाँ सीता का मुख! १०१-१०२ जब वह पृथ्वी के गर्भ में समाने लगी, तो मैंने उसका वह मुखकमल देखकर बार-बार प्रणाम किया। १०३-१०४ वह सदा सुखी रहेगी! अपना दुख किसी से नहीं कहेगी, अपनी माता सर्वंसहा पृथ्वी की भाँति अपने मन में ही सहती रहेगी। १०५-१०६ मैं ही उसके वियोग से तड़प रहा हूँ। क्षण भर भी चन नहीं है। सारे लाग, सारी धन-दौलत बेकार लगती है। १०७-१०८ चकवा-चकवी की भाँति सीता के साथ रहता तो स्वर्ग का सुख मिलता, पर विधाता ने जो लिख दिया उसे कौन टाल सकता है? १०९-११० मैंने नादानी

ऋषि ब्राह्मणगण बहुत बुझाब । नहि प्रभु उचित शोक-प्रस्ताव ॥ ७८ ॥
विद्यमान छथि युगल-कुमार । कनइत छथि करु नयन उघार ॥ ७९ ॥
नहि उन्मीलित होयत आँखि । विश्व सत्रु गिरि शक के राखि ॥ ८० ॥
प्रभु पुन सजल उघारल आँखि । हा वैदेही सति सति भाखि ॥ ८१ ॥
क्षमा कयल अहँ कत अपराध । अनुचित वचन कहल नहि आध ॥ ८२ ॥
अहँक वियोग सहब नहि आब । मुख सुख कानन शोकज दाव ॥ ८३ ॥
सहा न सहल अवज्ञा आज । देखल कर्म्म होइछ मन लाज ॥ ८४ ॥
छल अधीन मे दिव्य विभूति । ततहु खलल खल जन छल जूति ॥ ८५ ॥
बन्धुक वचन धयल नहि कान । राजा घर मे दैव प्रधान ॥ ८६ ॥
जे छल मखविधि शेष सुकाज । कयल पूर रघुवर महराज ॥ ८७ ॥
ऋत्विक मुनि काँ कयल विदाय । धनरत्नादि - तुष्ट समुदाय ॥ ८८ ॥

॥ तिरहुति गीत ॥

कत हम कहब हुनक गुण, हा पुन पुन, ॥ ८९ ॥
भय गेल हमर विषय शुन ॥ ९० ॥
खलक वचन शुनि बन देल, की मन भेल, ॥ ९१ ॥
रमणि परशमणि कत गेल ॥ ९२ ॥

ऋषि लोग और ब्राह्मण लोग तरह-तरह से उन्हें समझा रहे हैं— "हे प्रभु, अभी शोक का अवसर नहीं है । ७८ ये दोनों पुत्र मौजूद हैं। ये रो रहे हैं। आप आँखें खोलिये । ७९ यदि आप आँखें नहीं खोलेंगे तो इस अश्वमेध यज्ञ को कौन सँभाल सकेगा ?" ८० राम ने फिर आँसू से भरी आँखें खोलीं और बिलखने लगे— "हा वैदेही, हा सती । ८१ मेरे कितने अपराध तुमने क्षमा किये। एक भी अनुचित बात न बोली । ८२ अब मैं तुम्हारा वियोग सह नहीं सकता। तुम्हें वनवास देने के शोक की आग से मेरा मुँह सूख रहा है । ८३ पृथ्वी ने तुम्हारी अवहेलना नहीं सही। उन्होंने जो कुछ किया, मैंने देखा। मुझे लज्जा हो रही है । ८४ हाय, सीता रूपी जो दिव्य विभूति मेरे हाथ में थी उसे भी मैंने दुर्जनों की चाल से गँवा दिया । ८५ बन्धु की बात नहीं मानी। राजा के घर में भी दैव ही प्रधान होता है।" ८६ यज्ञ में जो-जो कर्म बाकी रह गये थे, राम ने उन्हें पूरा किया । ८७ ऋत्विजों और मुनियों को विदा किया। सभी वर्गों को स्वर्णमुद्रा, रत्न आदि से सन्तुष्ट किया । ८८ फिर राम विलाप करने लगे— "मैं सीता के गुणों का बार-बार कितना वर्णन करूँगा ? ८९ मेरी दुनिया सूनी हो गई । ९० दुर्जनों की बात सुनकर मैंने तुम्हें वन भेज दिया। कैसी दुर्मति हो गई मुझे ? कहाँ गई मेरी वह पारसमणि के समान गृहिणी ? ९१-९२ यदि मैं जानता कि

रहथि रहस्य विषय परित्याग। ब्रह्मज्ञान ध्यान मन लाग ॥ १२४ ॥
कौशल्या गेली तहिठाम। नारायण बुझि कयल प्रणाम ॥ १२५ ॥
प्रभु परमेश्वर कहू कतेक। अपनें पुत्र पुण्य-अतिरेक ॥ १२६ ॥
आयल समय आयु-अवसान। कहल जाय भव-नाशन ज्ञान ॥ १२७ ॥
शुनि दयालु कहलनि शुनु माय। पूर्व्व तीन पथ देल शुनाय ॥ १२८ ॥
कर्म्म ज्ञान पुन भक्ति सुयोग। तेसर सुलभ शमन भव-रोग ॥ १२९ ॥
हिंसा दम्भादिक उद्देश। भेद-दृष्टि छथि सेवक वेश ॥ १३० ॥
से तामस जन हमर कहाब। गुण-कृत हुनकर उचित स्वभाव ॥ १३१ ॥
चाहथि फलभोगक अभिलाख। धन यश काम सतत मन राख ॥ १३२ ॥
प्रतिमादिक मे पूजन करथि। राजस भक्त नाम अनुसरथि ॥ १३३ ॥
परमेश्वर मे अर्पित कर्म्म। कर्म्मक्षय हो पाबो शर्म्म ॥ १३४ ॥
करथि भेदमति थिक कर्त्तव्य। सात्त्विक भक्त नाम धर्त्तव्य ॥ १३५ ॥
यहि सौं योग देब की आन। भक्ति-पथक छथि योग प्रधान ॥ १३६ ॥
गुणातीत भय हमरहि पाब। सतत कामना-हीन स्वभाव ॥ १३७ ॥
कर्म्मयोग थिक परम प्रशस्त। हिंसा दोषादिक हो अस्त ॥ १३८ ॥

है। १२३ सभी विषय-वासना को छोड़ राम एकान्त में रहने लगे। उनका मन सदा आध्यात्मिक चिन्तन में लगा रहता था। १२४ कौशल्या उनके पास गईं। उन्हें नारायण समझकर प्रणाम किया, १२५ और बोलीं— "हे प्रभु परमेश्वर, मैं कितना सुनाऊँ? मैं परम पुण्यवती हूँ कि आप मेरे पुत्र हुए। १२६ अब मेरी आयु का अन्तकाल आ गया है। ऐसा ज्ञान दीजिए जिससे संसार का बन्धन टूटे।" १२७ यह सुनकर दयालु राम ने कहा— "हे माता, सुनिये। मैं तीन रास्ते बता चुका हूँ— १२८ कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग। इनमें तीसरा भक्तियोग सबसे आसान है और उससे जन्म-मरण के दुःख दूर होते हैं। १२९ जो हिंसा, दम्भ आदि के उद्देश्य से भेदभाव रखते हुए मेरी सेवा करता है, वह मेरा तामस भक्त कहलाता है। तमोगुण के अनुरूप ही उसका स्वभाव होता है। १३०-१३१ जो फल की इच्छा करता है; धन, यश और कामोपभोग में सदा चाव रखता है, और मेरी प्रतिमा आदि की पूजा करता है, वह मेरा राजस भक्त कहलाता है। १३२-१३३ जो अपना सारा कर्म परमेश्वर को समर्पित करता है ताकि कर्म का क्षय हो और सुख मिले, और मेरा कर्तव्य है, यह समझकर कर्म करता है, उसे मेरा सात्त्विक भक्त समझिये। १३४-१३५ इन तीन योगों के सिवा और क्या योग बताऊँ? इनमें भक्तिपरक योग प्रधान है। १३६ जो कर्मयोगी होता है, वह तीनों गुणों से परे होकर मुझको प्राप्त करता है। वह स्वभावतः सदा कामना से हीन होता है। १३७ कर्मयोग परम प्रशंसनीय मार्ग है।

॥ दोसर छन्द ॥

पामर सङ्ग बसि बसि हँसि हँसि हम, कयल उचित नहि कर्म्म रे ॥ १११ ॥
बैदेही सनि बनिता त्यागल, नहि क्षति गुनल अधर्म्म रे ॥ ११२ ॥
बड़ अपराध कयल हम हुनकर, नहि हो महि सौं माँगि रे ॥ ११३ ॥
बैदेहीक बियोग जन्म भरि, रहत हृदय मे साँगि रे ॥ ११४ ॥
हा कत तेहन बदन हम देखब, कतय हुनक सन आँखि रे ॥ ११५ ॥
कतय शुनब ओ मधुर बचन हम, धिक धिक जीवन राखि रे ॥ ११६ ॥
कत गोट क्षमा क्षमा-तनयाकाँ, कयल मनहुँ नहि कोप रे ॥ ११७ ॥
आब आब सद्भाव चित्त मे, भेल मनोरथ लोप रे ॥ ११८ ॥

॥ चौपाइ ॥

कयलनि यज्ञक्रियाक समाप्त । सीता-शोक हृदय दुख व्याप्त ॥ ११९ ॥
चलला बिमन अपन पुर राम । कुश लव सङ्ग लेल तहिठाम ॥ १२० ॥
सुख-निबास मे सुख नहि आब । चिन्तित सतत बिकल पछताब ॥ १२१ ॥
अयला राम धाम गत-राम । कयलनि तनय सहित बिसराम ॥ १२२ ॥
पौषक सर सन रघुबर-सदन । तन भय कर थर थर गतपद्म ॥ १२३ ॥

के साथ रह-रहकर और हँसी-मज़ाक़ कर-करके अपने उचित कर्तव्य में चूक की। १११ सीता-जैसी स्त्री को त्यागा; न अपनी हानि समझ पाया न अधर्म। ११२ मैंने उसका बड़ा अपराध किया है। पृथ्वी देवी से वापस माँगने का मुझे मुँह नहीं है। ११३ सीता का विरह मेरे हृदय में काँटे की तरह जीवन भर चुभता रह जाएगा। ११४ हाय, वैसा मुँह फिर कहाँ देखूंगा, और उसकी जैसी आँख कहाँ मिलेगी ? ११५ वह मीठा बोल कहाँ सुनूंगा ? इस जीवन को बचाना धिक्कार है। ११६ क्षमा (पृथ्वी) की बेटी में कितनी क्षमा है ? उसने मन में भी नहीं क्रोध किया। ११७ अब मेरे मन में सद्बुद्धि आई है, पर अब तो मेरी सारी कामना मिट्टी में मिल गई।" ११८

राम का उदास हो अध्यात्म-चिंतन में लीन होना तथा माताओं को उपदेश देना

राम ने अश्वमेध यज्ञ को किसी तरह पूरा किया। सीता के विरह की वेदना उनके हृदय में छाई हुई थी। ११९ राम विखिन्न मन से अपनी राजधानी चले और वहाँ कुश तथा लव को भी साथ कर लिया। १२० आराम-घर में भी उन्हें चैन नहीं मिला। सदा चिन्ता में डूबे व्याकुल हो पछताते रहते। १२१ आनन्दहीन राम अपने भवन में आये और पुत्रों के साथ विश्राम किया। १२२ राम का भवन मानो पूस महीने का सरोवर हो गया, जहाँ सभी कमल गल गये हैं और शरीर भय से थरथर काँप रहा

सावत प्रतिमादिक पूजा मे, स्थिति कल्याण निमित्त ॥ १५५ ॥
यावत सकल एक आत्मा मे, भासित हो नहि चित्त ॥ १५६ ॥
जानकाँ भेदबुद्धि होइछ मन, मरणक तनिकहि त्रास ॥ १५७ ॥
हमरा एक-बुद्धि सौँ देखू, पूरत सभ मन-आश ॥ १५८ ॥
ईश्वर जीव भेद नहि मानब, भक्ति ज्ञान शुभ योग ॥ १५९ ॥
दुइ योगहु मे एक ग्रहण करु, पायब नहि दुखभोग ॥ १६० ॥
सकल हृविस्थित जननी हमरहि, पुत्रभाव करु मन मे ॥ १६१ ॥
कौशल्या कुशला सति कयलनि, पड़ल न भव-बन्धन मे ॥ १६२ ॥

॥ सोरठा ॥

शुनि शुनि तिनु जनि माय, पाय दिव्य उपदेश काँ ॥ १६३ ॥
तन तजि तनवर पाय, जाय स्वर्ग दशरथ मिलनि ॥ १६४ ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे उत्तरकाण्डे षष्ठोऽध्यायः ॥

॥ अथ सप्तमोऽध्यायः ॥

॥ चौपाइ ॥

अथ एक समय युधाजित नाम। आबि अयोध्या भरतक माम ॥ १ ॥
रघुनन्दन - आज्ञा काँ पाय। निजपुर लय गेल भरत लेआय ॥ २ ॥

क्रियाओं से जो भेद उत्पन्न होता है, उसमे मेरी ही तुष्टि होती है। १५४ प्रतिमा आदि की पूजा में आस्था तभी तक कल्याणार्थ अपेक्षित है जब तक एक ही आत्मा मे सभी पदार्थों के अस्तित्व का भान न हो। १५६ जिनके मन में भेद बुद्धि है, मरण का भय उन्हा को होता है। १५७ मुझे अनन्य भाव से देखिये, तभी मन की सारी आशा पूरी होगी। १५८ ईश्वर और जीव में भेद नहीं मानना चाहिए। भक्तियोग और ज्ञानयोग दोनों कल्याण-कारक हैं। १५९ इन दोनों मे किसी एक को अपना लीजिए तो दुःख नहीं होगा। १६० हे माता, सभी प्राणियों के हृदय में रहनेवाले मुझमें पुत्रभाव से भक्ति कीजिए। १६१ कुशल सती कौशल्या ने वैसा किया, जिसके फल-स्वरूप वे भव-बन्धन में न पड़ीं।" १६२ तीनों माताएँ यह सुन-सुनकर और अपूर्व उपदेश पाकर भौतिक शरीर को त्यागकर और दिव्य शरीर पाकर स्वर्ग गईं और वहाँ फिर दशरथ से जा मिलीं। १६३-१६४

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में उत्तरकाण्ड का छठा अध्याय समाप्त ॥

सातवाँ अध्याय

राम के भ्राताओं और उनकी सन्तानों के राज्याभिषेक

एक समय भरत के मामा युधाजित अयोध्या आये, १ और राम की

॥ हरिपद छन्द ॥

हम अनन्तगुण-आलय मे जनि, मनोवृत्ति दृढ़ जाय ॥ १३९ ॥
गुणगण शुनि शुनि जनि सुरसरि-जल, सागर मध्य समाय ॥ १४० ॥
निर्गुण भक्ति योग-लक्षण से, भक्ति अहेतु विचरथी ॥ १४१ ॥
सालोक्यादिक मुक्तिहु कां जे, देलहुँ ग्रहण न करथी ॥ १४२ ॥
दर्शन हमर कथन गुण पूजन, मति वन्दन जन भक्त ॥ १४३ ॥
सकल भूत मे हमर भावना, सङ्ग असक्त विरक्त ॥ १४४ ॥
समहिक मान दीन-अनुकम्पा, मैत्री सौँ सभ अपनै ॥ १४५ ॥
सद्यँम नियम शील सन्तोषित, सन्मर्य्यादा थपनै ॥ १४६ ॥
श्रवण करथि वेदान्त-सुवाक्यक, कीर्तन हमरा नामक ॥ १४७ ॥
ऋजुता सौँ सतसङ्ग निरन्तर, त्याग अहम्मति-गामक ॥ १४८ ॥
हमरा धर्म्मक अनुरत गुणगण, श्रवण करथि नित कान ॥ १४९ ॥
जेहन वायुवश गन्ध निजाश्रय, नासा-युग मे आन ॥ १५० ॥
सकल भूत मे रहथि व्यवस्थित, आत्मा केवल जान ॥ १५१ ॥
योगाभ्यास चित्त निर्म्मल हो, अनुभव दृढ़ विज्ञान ॥ १५२ ॥
एहि सौँ आन सकल पूजादिक, बाहर बाहर जानब ॥ १५३ ॥
क्रिया-जनित कत भेद द्रव्य सौँ, हमरे तोषण मानब ॥ १५४ ॥

इससे हिंसा आदि दोष दूर होते हैं। १३८ मेरे गुणों को सुनते-सुनते जिनका चित्त अनन्त गुणों के खज़ाना रूपी मुझमें उसी तरह समा जाता है जिस तरह गंगा का जल समुद्र में, वे सगुण भक्त हैं। १३९-१४० निर्गुण भक्तियोग का लक्षण यह है : ऐसे भक्त मुझमें अहैतुकी भक्ति करते हैं; १४१ सालोक्य, सायुज्य आदि मोक्ष मिलने पर भी नहीं ग्रहण करते हैं। १४२ मेरे भक्त लोग मेरा दर्शन, कीर्तन, गुणवर्णन, पूजन और वन्दन करते हैं। १४३ सभी प्राणियों में मेरी भावना करते हैं अर्थात् सभी जीवों को ईश्वर समझते हैं। आसक्ति से दूर विरक्त रहते हैं। १४४ सबों का सम्मान करते हैं। दीन-दुखियों पर दया करते हैं। मित्रता करके सबको अपना बना लेते हैं। १४५ सदा संयम और नियम का पालन करते हैं। सन्तोषपूर्वक मर्यादा बनाये रखते हैं। १४६ आध्यात्मिक, दर्शन, वेदान्त के वाक्यों का श्रवण करते हैं। मेरे नाम का कीर्तन करते हैं। १४७ सरल हृदय से भले लोगों का साथ करते हैं। अहंकार का त्याग करते हैं। १४८ मेरे धर्म में अनुराग रखते हैं। नित्य मेरे गुणों का श्रवण करते हैं। १४९ जिस तरह अपने आधार फूल में विद्यमान सौरभ को वायु नाक में पहुँचाता है उसी तरह वे सभी प्राणियों में विद्यमान आत्मा का अनुभव करते हैं। १५०-१५१ योगाभ्यास से चित्त निर्मल होता है। ज्ञानानुभूति दृढ़ होती है। १५२ इनके अतिरिक्त जो भी पूजा आदि विधियाँ हैं वे सभी बाह्य क्रिया हैं। १५३ पदार्थों में

शुनि लक्ष्मण गेला तहिठाम। छल छथि देव-देव जत राम ॥ १७ ॥
दर्शनेच्छ तापस एक द्वार। आयल छथि हो जेहन विचार ॥ १८ ॥
हुनि मुनि काँ सादर लय आउ। वत्स ततय सत्वर अहँ जाउ ॥ १९ ॥
तेज-पुञ्ज मुनि बनल विविक्त। अनलराशि उपमा घृत सिक्त ॥ २० ॥

॥ दोहा ॥

दीप्यमान निज तेज सौं, ओ देखल रघुवीर ॥ २१ ॥
मधुर मधुर कहलनि ततय, आशिष-वचन गभीर ॥ २२ ॥

॥ चौपाइ ॥

बड़ स्वागत पूजन-विधि सकल। रामचन्द्र पूछल निश्चिकल ॥ २३ ॥
रघुवर दिव्यासन - आसीन। मुनि काँ पूछल वचन छलहीन ॥ २४ ॥
अपने अयलहुँ एतय यदर्थ। बुझि उद्यम हम करू तदर्थ ॥ २५ ॥
ओ कहलनि शुनु रघुवर भूप। कानहिँ कहब एकान्ते चूप ॥ २६ ॥
शुनथि न जन पुन देख न नयन। शुनल वचन रह मानस शयन ॥ २७ ॥
जौँ जन तेहि अन्तर हठि अयत। अपनेँक हाथ मरण तनि हयत ॥ २८ ॥
यहन प्रतिज्ञा करु प्रतिपाल। तखन कहब अभिमत महिपाल ॥ २९ ॥
लक्ष्मण काँ कहलनि रघुनाथ। द्वार सज्ज रहु असि लय हाथ ॥ ३० ॥

देवों के देव राम विराजमान थे। १७ उन्होंने राम से कहा— "आपके दर्शन के लिए एक तापस द्वार पर उपस्थित हैं। आपकी जैसी आज्ञा हो।" १८ राम ने कहा— "हे वत्स, तुम जल्द वहाँ जाओ और उन तापस को आदर के साथ ले आओ।" १९ वह कपटी तापस स्पष्ट रूप से तेज से भर गया जैसे घी डालने से आग प्रज्वलित हो उठती है। २० अपने तेज से चमकते हुए उस तापस ने राम को देखा और वहाँ मीठे स्वर में उन्हें कुछ आशीर्वाद दिया। २१-२२ राम ने पूरी विधि के साथ उनकी बड़ी आवभगत और पूजा की, फिर उनसे सहज भाव से पूछा। २३ दिव्य सिंहासन पर बैठे राम ने मुनि से निश्छल भाव से पूछा— २४ "आप यहाँ किस काम से पधारे, यह यदि मैं जानूँ तो उसे पूरा करने का प्रयास करूँ।" २५ मुनि ने कहा— "हे राजा राम, सुनिए। यह बात मैं कान में चुपके से अकेले में कहूँगा। २६ इस बात को कोई सुने नहीं; कोई आँख से देखे नहीं। सुनी हुई बात मन में ही समाई रहे। २७ यदि कोई व्यक्ति सहसा भीतर आयेगा तो आप अपने हाथ से उसे मार डालेंगे। २८ हे राजा, आप पहले ऐसी प्रतिज्ञा कीजिए, तब मैं अपने मन की बात कहूँगा।" २९ यह सुनकर राम ने लक्ष्मण से कहा— "तुम हाथ में तलवार लिये द्वार पर तैनात रहो। ३०

महती सेना समर अभीति। गन्धर्व्वक नायक जन जीति॥ ३॥
नाम पुष्करावति जे धाम। पुष्कर भेला नृप तहिठाम॥ ४॥
तक्षशिलापुर मे पुन तक्ष। सुत दुहु नर-वर भरत समक्ष॥ ५॥
भरत कयल सुत-युग अभिषेक। बड़ धन धान्य पूर सविवेक॥ ६॥
अपने आबि अयोध्या भरत। रामचन्द्र - सेवा मे निरत॥ ७॥
पुन लक्ष्मण काँ कहलनि राम। पश्चिम देश करू संग्राम॥ ८॥
महामल्ल दुर्ज्जन जिति लेब। तनिक राज्य सुत दुनु काँ देब॥ ९॥
अङ्गद चित्रकेतु जनि नाम। उचित निवास देब दुइ ठाम॥ १०॥
कय अभिषेक शीघ्र पुनि आउ। हमरा छोड़ि अनत जनु जाउ॥ ११॥
सेहन रघूत्तम - आज्ञा - वचन। सत्वर लक्ष्मण कयल से रचन॥ १२॥
रघुनन्दन - पद - सेवा - निरत। बन्धु यहन दोसर के करत॥ १३॥
अथ एक समय राम महिपाल। धुर तापस बनि पहुँचल काल॥ १४॥
लक्ष्मण द्वारपाल तहिठाम। मुनि पुछलनि कत छथि नृप राम॥ १५॥
हमर आगमन ततय शुनाउ। प्रभु-रुचि पाबि ततय लय जाउ॥ १६॥

अनुमति लेकर भरत को अपने यहाँ ले गये। २ लड़ाई में न डरनेवाली उनकी विशाल सेना ने गन्धर्वों के नायकों को जीत लिया। ३ उस स्थान का नाम पुष्करावती रखा गया और भरत के पुत्र पुष्कर को वहाँ राजा बनाया गया। ४ फिर तक्षशिला नगर में भरत के पुत्र तक्ष राजा बनाये गये। ये दोनों पुरुषश्रेष्ठ भरत के पुत्र हुए। ५ भरत ने धन-धान्य और विवेक से भरे-पूरे उन दोनों पुत्रों का राज्याभिषेक किया। ६ उसके बाद स्वयं अयोध्या लौट आये और राम की सेवा म लग गये। ७ फिर राम ने लक्ष्मण से कहा— "तुम पश्चिम दिशा में लड़ाई करो। ८ वहाँ दुर्जन महामल्ल को जीतोगे और उसका राज्य अपने दोनों पुत्रों को दोगे, ९ जिनका नाम अंगद और चित्रकेतु है। दोनों पुत्रों को दो जगह निवास दोगे। १० उन दोनों का राज्याभिषेक करके तुम लौट आना। मुझे छोड़ कहीं जाना नहीं।" ११ राम ने जैसा-जैसा कहा, लक्ष्मण ने तुरत वैसा-वैसा किया। १२ राम के चरणों की सेवा में लगा ऐसा कौन दूसरा भाई कर सकता है? १३

कालपुरुष का आगमन और लक्ष्मण का स्वर्ग जाना

एक समय, जब राम राजा थे, काल तापस का रूप धारणकर उनके नगर में पहुँचा। १४ उस समय लक्ष्मण द्वारपाल थे। तापस मुनि ने पूछा— "राजा राम कहाँ हैं? १५ उन्हें मेरे आने की सूचना दीजिए और उनकी अनुमति लेकर मुझे वहाँ ले जाइए।" १६ यह सुनकर लक्ष्मण वहाँ गये जहाँ

से शुनि सुनि काँ बाढ़ल कोप । काल करय न ककर मति-लोप ॥ ४७ ॥
हमर अवज्ञा नृपतिक द्वार । मुनिजन काँ थिक अधिक अभार ॥ ४८ ॥
जौं नहि कहल करब ई काज । कतय महीपति कत ई राज ॥ ४९ ॥
परिजन-सहित भस्म कय देब । नृपतिक द्वार अनादर लेब ॥ ५० ॥
शुनि मन लक्ष्मण कयल विचार । बड़ सङ्कष्ट पड़ल व्यवहार ॥ ५१ ॥
जौं जायब छूटत ई लोक । कालक दण्ड ककर बुत रोक ॥ ५२ ॥
नहि जायब तौं निकट अनर्थ । कालक निकट यतन हो व्यर्थ ॥ ५३ ॥
एक हमर जौं होयत नाश । रघुनन्दन रहता निस्त्रास ॥ ५४ ॥
प्रजालोक आनन्दित रहत । अपयश पाप हमर नहि कहत ॥ ५५ ॥
यहन विचारि राम-नृप-वास । कयल प्रवेश कहल निस्त्रास ॥ ५६ ॥
सावधान प्रभु परमोदार । आयल छथि दुर्व्वासा द्वार ॥ ५७ ॥
काल विसर्ज्जन मुनिक प्रणाम । शुनितहिं जाय कयल प्रभु राम ॥ ५८ ॥
कि करब टहल कहल मुनि जाय । मुनि-सत्कार गृही काँ न्याय ॥ ५९ ॥

॥ दोहा ॥

कहल उपासल छलहुँ हम, शुनु नृप वर्ष हजार ॥ ६० ॥
सिद्ध अन्न भोजन करब, मानल मुख्य विचार ॥ ६१ ॥

नही करूंगा। कौन हठ करके आग में पतंग बनने जाय।" ४६ यह सुनते ही दुर्वासा ऋषि आगबबूला हो गये। काल किसकी बुद्धि को नहीं बिगाड़ देता है? ४७ वे बोले— "राजा के द्वार पर मेरा ऐसा अपमान हो? यह तो मुनियों की भारी अवहेलना हुई। ४८ यदि आप मेरा यह कहा नहीं करेंगे तो कहाँ आपके राजा जाएँगे और कहाँ यह राज्य। ४९ मैं परिजनों-सहित राम को भस्म कर दूँगा और राजा के द्वार पर अपने अपमान का बदला लूँगा।" ५० यह सुनकर लक्ष्मण ने मन में सोचा— "मैं तो बड़े असमंजस में पड़ गया, क्या करूँ, क्या न करूँ। ५१ यदि भीतर जाता हूँ तो इस दुनिया से चला जाऊँगा। काल के दंड को रोकना किसके बूते की बात है? ५२ अगर नहीं जाता हूँ तो सबका अनर्थ निश्चित है। काल के सामने उबरने की कोशिश बेकार है। ५३ यदि मैं अकेले मरता हूँ तो राम पर कोई खतरा न होगा। ५४ प्रजा भी आनन्द से रहेगी। वह मुझ पर कलंक न लगाएगी। मेरी कोई बदनामी न होगी।" ५५ ऐसा सोचकर वे राजा राम के भवन में घुस गये और बिना किसी डर के उनसे कहा— ५६ "हे परम उदार प्रभु, सावधान होइए। दुर्वासा ऋषि द्वार पर पधारे हैं।" ५७ राम ने यह सुनते ही काल को बिदा करके मुनि को प्रणाम किया, और कहा— ५८ "हे मुनि, आज्ञा हो। मैं आपकी क्या सेवा करूँ? मुनियों का सत्कार करना गृहस्थों का धर्म है।" ५९ दुर्वासा ने कहा— "हे राजा, सुनिए। मैं हजार वर्षों से भूखा हूँ। ६० आज

एको व्यक्ति नहि आबय पाब। सम्प्रति पत्रादिक नहि लाब ॥ ३१ ॥
हठ सौँ जे करता सञ्चरण। हमरहि कर सौँ तनिकर मरण ॥ ३२ ॥
लखन कहल प्रभु अछि एकान्त। कहल जाय मुनि की वृत्तान्त ॥ ३३ ॥
रघुबर सौँ कहलनि सद्भाव। चलल जाय निज धामहिँ आब ॥ ३४ ॥
कालपुरुष हम तापस-रूप। अयलहुँ विधिक पठाओल भूप ॥ ३५ ॥
रण-दुर्ज्जय दशमौलिक मरण। धरणीभार कयल प्रभु हरण ॥ ३६ ॥
निज मर्य्यादा राखल जाय। विधिक कहल हम देल सुनाय ॥ ३७ ॥
रघुनन्दन कयलनि स्वीकार। यद्यपि सकल छल निज व्यवहार ॥ ३८ ॥

॥ सोरठा ॥

दुर्व्वासा तहिकाल, कालक प्रेरित प्राप्त तहँ ॥ ३९ ॥
के बुझ कोप विशाल, लक्ष्मण काँ कहलनि यहन ॥ ४० ॥

॥ चौपाइ ॥

लक्ष्मण सत्वर नृपतट जाउ। रामभद्र सौँ भेँट कराउ ॥ ४१ ॥
से पुन उत्तर देल सुनाय। क्षण भरि क्षमा कयल मुनि जाय ॥ ४२ ॥
रामचन्द्र सौँ कहु की काज। से सम्पन्न करब हम आज ॥ ४३ ॥
राजा कार्य्यान्तर-आरूढ़। के बुझ नृपतिक आशय गूढ़ ॥ ४४ ॥
केओ सम्प्रति नहि करथ प्रवेश। श्रीरघुनन्दन नियम निदेश ॥ ४५ ॥
नृप-आज्ञाक करब नहि भङ्ग। के हो हठ सौँ अनल-पतङ्ग ॥ ४६ ॥

कोई भी भीतर न आने पावे। अभी चिट्ठी-पत्री भी नहीं लावे। ३१ जो कोई बलजोरी घुसेगा, मेरे हाथ से उसकी मौत होगी।" ३२ इसके बाद राम ने कहा— "हे मुनि, अब एकान्त है। कहिए, क्या बात है?" ३३ मुनि ने शुद्ध भाव से राम से कहा— "अब अपने धाम चलिए। ३४ मैं कालपुरुष हूँ। तापस का कपट वेष बनाकर आया हूँ। हे राजा, मुझे ब्रह्मा ने भेजा है। ३५ हे प्रभु! आप लड़ाई में न जीतने योग्य रावण को मार चुके और धरती के भार को दूर कर चुके। ३६ अब अपनी देवोचित मर्यादा का पालन कीजिए। ब्रह्मा ने जो कहा वह मैंने सुना दिया।" ३७ राम ने इसे स्वीकर कर लिया, हालाँकि यह सब उनका अपना ही खेल था। ३८ उसी समय कालपुरुष की प्रेरणा से दुर्वासा ऋषि वहाँ पहुँचे। ३९ कौन जानता था कि वे इतने क्रोधी हैं। उन्होने लक्ष्मण से इस प्रकार कहा— ४० "हे लक्ष्मण, आप तुरत राम के पास जाइए और मेरी उनसे मुलाक़ात कराइए।" ४१ लक्ष्मण ने उत्तर दिया— "हे मुनि, क्षण भर क्षमा कीजिए। ४२ बताइए आप को राम से क्या काम है? मैं आज ही वह पूरा कर दूंगा। ४३ राजा दूसरे काम में व्यस्त हैं। राजा की भीतरी बात कौन जानता है? ४४ राम ने आज्ञा दी है कि अभी कोई भीतर न आवे। ४५ मैं राजा की आज्ञा का उल्लंघन

शुनि प्रभु-वचन सचिव गुरु सकल । कहल विचारक वचन अविकल ॥ ७६ ॥
कयल धराक भार सभ हरण । जायल अपन धाम ई चरण ॥ ७७ ॥
धर्म्म-प्रतिज्ञा राखल जाय । लक्ष्मण त्याग सकल मत न्याय ॥ ७८ ॥
शुनलनि अर्थ धर्म्मयुत सार । रामचन्द्र मन ठीक विचार ॥ ७९ ॥
लक्ष्मण काँ कहलनि प्रभु तेह । कह यथ धर्म्म-व्यवस्था जेह ॥ ८० ॥
परित्याग वध एक समान । सज्जन काँ कह धर्म्म प्रधान ॥ ८१ ॥

॥ दोहा ॥

शुनि लक्ष्मण रघुनाथ-पद, कयलनि विनत प्रणाम ॥ ८२ ॥
दुःख शोक सौं सरल से, गेला सत्वर धाम ॥ ८३ ॥

॥ सोरठा ॥

से सरयूतट जाय, कयल आचमन शुद्ध-मन ॥ ८४ ॥
दृढ़ आसन सम काय, नव द्वार संयमित कय ॥ ८५ ॥
मस्तक पवन चढ़ाय, ध्यान निरन्तर ध्येय-पद ॥ ८६ ॥
देखि देव-समुदाय, सुमन-वृष्टि कय स्तुति करथि ॥ ८७ ॥
लक्ष्मण काँ निजधाम, शचीकान्त लय आय तहँ ॥ ८८ ॥
विष्णु-अंश अभिराम, जानि करथि पूजा तनिक ॥ ८९ ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे उत्तरकाण्डे सप्तमोऽध्यायः ॥

ओर लक्ष्मण के प्रति स्नेह और दूसरी ओर प्रतिज्ञापालन की नीति, इस द्विविधा में चित्त व्याकुल था । ७५ राम की बात सुनकर सभी मन्त्रियों और गुरुजनों ने ठीक-ठीक विचार दिया । ७६ "आपने पृथ्वी का भार दूर कर दिया । अब आप देवलोक में पधारिये । ७७ अपने प्रतिज्ञा रूपी धर्म का पालन कीजिए । लक्ष्मण को त्याग देना हर तरह से उचित होगा । ७८ राम ने धर्मसम्मत तत्त्वार्थ सुन लिया । उन्हें भी यह ठीक जँचा । ७९ राम ने लक्ष्मण से वैसा ही कहा— "वही करो जो धर्म के अनुरूप हो । ८० धर्मिष्ठ सज्जनों का कहना है कि परित्याग करना और वध करना दोनों बराबर है ।" ८१ यह सुनकर लक्ष्मण ने राम के चरण में प्रणाम किया और ८२ शोक से व्याकुल हो तुरत अपने महल गये । ८३ फिर सरयू के किनारे गये । उसके जल से आचमन करके अपने मन को शुद्ध किया । ८४ शरीर को सीधा कर और सभी नौ द्वारों को काबू में करके अचल समाधि लगाई । ८५ श्वास को मस्तिष्क में ले गये । अविच्छिन्न रूप से ध्येय ब्रह्म का ध्यान किया । ८६ देवलोग उनकी समाधि देख-देखकर फूल बरसाने और स्तुति करने लगे । ८७ तब इन्द्र लक्ष्मण को वहाँ से अपने यहाँ अमरावती ले गये । ८८ उन्हें विष्णु का अंश समझकर उनकी पूजा करने लगे । ८९

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में उत्तरकाण्ड का सातवाँ अध्याय समाप्त ॥

॥ चौपाइ ॥

कहयित कथा पाक सम्पन्न । भोजन कयल अमृत सन अन्न ॥ ६२ ॥
मुनि सन्तुष्ट गेला निज धाम । स्मरण कयल आज्ञा से राम ॥ ६३ ॥
चिन्ता दुःख कहल की जाय । हा हत हा हत लक्ष्मण भाय ॥ ६४ ॥
स्नेह प्रतिज्ञा दुख मन व्याप । विह्वल विकल रहथि चुपचाप ॥ ६५ ॥
से देख लक्ष्मण जोड़ल हाथ । चिन्ता तेजल जाय रघुनाथ ॥ ६६ ॥
कालक गति के रोकय पार । तत्त्वविचार वृथा - ससार ॥ ६७ ॥
प्रभुक निदेश वृथा भय जाय । घोर नरक हमरा तन पाय ॥ ६८ ॥
हमरा विषय नाथ जौँ प्रीति । पालन कयल जाय नृप-नीति ॥ ६९ ॥
हमर विचार उचित यहिठाम । पालन कयल जाय नहि साम ॥ ७० ॥
करु निश्शङ्क हमर परित्याग । नीति नृपति काँ दोष न लाग ॥ ७१ ॥
लक्ष्मण-वचन शुनल रघुवीर । चिन्तातुर मानस नहि थीर ॥ ७२ ॥
सभ मन्त्री काँ लेल बजाय । गुरु वसिष्ठ काँ पूछल न्याय ॥ ७३ ॥
काल - यतीक व्यवस्था - सार । दुर्व्वासाक ततय सञ्चार ॥ ७४ ॥
अपन प्रतिज्ञा कथा समग्र । लक्ष्मण-प्रीति नीति मन व्यग्र ॥ ७५ ॥

सिद्ध अन्न (भात) खाऊँगा।" राम ने इस आज्ञा के पालन को सबसे पहला कर्तव्य समझा। ६१ आज्ञा करते ही रसोई तैयार हो गई। मुनि ने अमृत जैसा अन्न खाया। ६२ खा-पीकर मुनि सन्तुष्ट हो अपनी जगह चले गये। तब राम ने अपनी उस आज्ञा को याद किया। ६३ उनके मन में अवर्णनीय चिन्ता और वेदना हुई। वे हाहाकार करने लगे— "हाय-हाय, हा भ्राता लक्ष्मण!" ६४ एक ओर भ्रातृस्नेह था और दूसरी ओर वह प्रतिज्ञा। वे पीड़ा से भर गये। विकल और विह्वल हो चुपचाप खड़े रहे। ६५ यह हाल देखकर लक्ष्मण ने हाथ जोड़कर कहा— "हे राम, आप चिन्ता मत कीजिए। ६६ काल की गति को कौन रोक सकता है? इस संसार में तत्त्व-मीमांसा करना बेकार है। ६७ यदि मेरे रहते आपकी आज्ञा विफल हो जाय तो मेरा यह शरीर किस काम का? मैं तो घोर नरक पाऊँगा। ६८ यदि आपको मुझ पर स्नेह है तो राजा का जो उचित कर्तव्य है उसका पालन किया जाय। ६९ मेरा यही विचार है कि इसमें साम (समझौते) का कोई अवसर नहीं है। ७० बेधड़क मेरा त्याग कर दीजिए। राजा को अपनी नीति के अनुसार कोई काम करने में दोष नहीं है।" ७१ राम ने लक्ष्मण की बात सुनी। उनका मन चिन्ता से व्याकुल हो दहलने लगा। ७२ उन्होंने सभी मन्त्रियों को बुलाया। गुरु वसिष्ठ से पूछा कि क्या करना उचित होगा? ७३ राम ने बताया कि कैसे तापस-वेषधारी काल ने प्रतिज्ञा कराई, कैसे ऋषि दुर्वासा पहुँचे। ७४ स्वयं राम ने कैसे प्रतिज्ञा की तथा कैसे एक

कनइत सभ जन जोड़ल हाथ। आशापूर करू रघुनाथ ॥ १३ ॥
जाइक इच्छा अछि जे ठाम। जायब सङ्गहि सभ से धाम ॥ १४ ॥
पुत्र दार जन एक न त्यागि। नीतिधर्म्म पदयुग अनुरागि ॥ १५ ॥
चलब सङ्ग कहलनि प्रभु बेश। जाइक इच्छा अछि जे देश ॥ १६ ॥
कुश लव कुमरक कय अभिषेक। विदा कयल प्रभु दिव्य-विवेक ॥ १७ ॥
बेलनि दिव्य रथ आठ हजार। बन्दि हजार विरुद उच्चार ॥ १८ ॥
साठि हजार सैन्य रण-धीर। एक एक काँ देल रघुवीर ॥ १९ ॥
बहुत वित्त युत जन सङ्ग जाय। कयल प्रणाम चलल दुनु भाय ॥ २० ॥

॥ दोहा ॥

बहुत दूत शत्रुघ्न कें, चलल बजाबय काज ॥ २१ ॥
जाय कहल वृत्तान्त से, जे रघुवीर समाज ॥ २२ ॥

॥ चौपाइ ॥

कालपुरुष - आगमनक भीति। अत्रिपुत्र अयला जे रीति ॥ २३ ॥
राम - प्रतिज्ञा बन्धु - वियोग। कुशी-लवक अभिषेक प्रयोग ॥ २४ ॥
प्रजा सहित कहु की हम आन। करता राम महाप्रस्थान ॥ २५ ॥
शुनि शत्रुघ्न व्यथित मन त्रास। धैर्य्य धयल नहि दुःख प्रकाश ॥ २६ ॥

प्रजाजन रोते हुए हाथ जोडकर बोले— 'हे रघुनाथ, हमारी कामना पूरी कीजिए। १३ आपको जहाँ जाने की इच्छा होती है, हम सभी साथ ही उस स्थान में जाएँगे। १४ पुत्र, स्त्री, सेवक और चरण में अनुरक्त लोकों का त्याग करना कभी नीति या धर्म के अनुकूल नहीं है।" १५ राम ने कहा— "अच्छा मुझे जिस देश जाना है वहाँ आप सभी साथ चलिएगा।" १६ राम ने कुमार कुश और लव का राज्याभिषेक करके अपूर्व विवेक के साथ उन्हें विदा कर दिया। १७ राम ने उन्हें आठ हज़ार दिव्य रथ दिये। एक हज़ार भाट उनका गुणगान करते चले। १८ युद्ध में डटनेवाले साठ हज़ार सैनिक दिये। राम ने इतना-इतना हरेक पुत्र को दिया। १९ स्वर्णमुद्रा लाद कर बहुत-से कुली संग लगा दिये। दोनों भ्राता ने प्रणाम करके प्रस्थान किया। २० शत्रुघ्न को बुलाने के लिए बहुत-से दूत चले, जो राम के साथ थे, और उन्होंने शत्रुघ्न से सारा वृत्तान्त कह सुनाया कि २१-२२ कैसे भयानक कालपुरुष आया, किस तरह दुर्वासा आये; २३ राम ने प्रतिज्ञा की, भाई लक्ष्मण से बिछोह हुआ; कुश और लव का राज्याभिषेक हुआ। २४ यह वृत्तान्त सुनाकर बोला कि— "और बात क्या कहूँ, राम प्रजा-सहित महा-प्रस्थान करनेवाले हैं।" २५ यह सुनकर शत्रुघ्न के मन में बड़ी व्यथा और आतंक हुआ। पर उन्होंने ढाढ़स बाँधा; अपनी व्यथा को प्रकट नहीं होने दिया। २६ शत्रुघ्न ने भी अपने दोनों पुत्रों का राज्याभिषेक किया। एक का मथुरा में और दूसरे

॥ अथ अष्टमोऽध्यायः ॥

॥ चौपाइ ॥

शुनु गिरिनन्दिनि कहल महेश। पालल रघुवर अपन निदेश ॥ १ ॥
लक्ष्मण-रहित पड़य नहि चयन। जनु निर्झर झर पङ्कज-नयन ॥ २ ॥
गुरुमन्त्री कें कहलनि राम। होथु भरत भूपति एहिठाम ॥ ३ ॥
बन्धु-वियोग सहल नहि जाय। आज मिलब हम लक्ष्मण भाय ॥ ४ ॥
शुनितहिँ प्रजा विकल खस केहन। छिन्नमूल सौँ तरुवर जेहन ॥ ५ ॥
मूर्छित खसल भरत उठि भाख। राज्यभार के माँथा राख ॥ ६ ॥
हम नहि करब राज्य-सुख भोग। जन्म अनेकहु छुट नहि रोग ॥ ७ ॥
अपनैक चरण शरण मे रहब। स्वर्ग मर्त्य मे दुःख न सहब ॥ ८ ॥
कुश लव कुमरक करु अभिषक। कलकौशल उत्तर सुविवेक ॥ ९ ॥
शुनल प्रजाजन मन अति भीति। कहल वसिष्ठ राम सौँ नीति ॥ १० ॥
विकल प्रजाजन देखक थीक। सेवक सबहिक हो जे नीक ॥ ११ ॥
शुनल वसिष्ठ कहल भगवान। राम कयल सभ जन सन्मान ॥ १२ ॥

आठवाँ अध्याय

राम का सभी बन्धु-बान्धवों और प्रजाजनों-सहित स्वर्ग-प्रस्थान

शिव ने कहा— "हे गिरिजा, राम ने अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया। १ पर, लक्ष्मण के बिना उन्हें चैन नहीं आता। उनकी कमल-सी आँखें झरने की भाँति झरती रहतीं। २ तब राम ने गुरु और मन्त्रियों से कहा— "अब भरत अयोध्या के राजा होवें। ३ लक्ष्मण का बिछोह अब मुझे सहा नहीं जा रहा है। आज मैं भाई लक्ष्मण से जा मिलूँगा।" ४ राम की यह बात सुनते ही प्रजाजन उसी तरह गिर पड़े जिस तरह जड़ कट जाने पर वृक्ष गिरते हैं। ५ भरत बेहोश हो गिरे; फिर उठकर बोले— ६ इस राज्य का भार कौन अपने सर पर रखेगा? मैं राज्य-सुख नहीं भोगूँगा। मेरा यह रोग जन्म-जन्मान्तर में भी नहीं छूटेगा। ७ मैं सदा आप ही के चरण की छत्रच्छाया में रहूँगा। आपके बिना मर्त्य क्या, स्वर्ग को भी मैं दुखभोग समझता हूँ। ८ कुश और लव को लाकर यहाँ उनका अभिषेक कीजिए।" भरत ने शान्तिपूर्वक यह विवेकपूर्ण उत्तर दिया। ९ प्रजाजनों को यह सुनकर मन में बड़ा भय होने लगा। तब वसिष्ठ ने राम से नीति की बात कही— १० "दुख से व्याकुल प्रजा को देखना आपका कर्तव्य है। आपको ऐसा करना है जिससे सेवकों की भलाई हो।" ११ वसिष्ठ ने जो कहा उसे भगवान् राम ने मान लिया। राम ने सबों का मान रखा। १२ सभी

कहल विभीषण काँ रघुनाथ। सुखित रहब करइत गुण-गाथ ॥ ४२ ॥
राक्षस राज्य करू गय जाय। यावत धरा प्रजा सुख पाय ॥ ४३ ॥
हमर शपथ थिक करु स्वीकार। हठ उत्तरक त्यागु व्यवहार ॥ ४४ ॥
शुनु शुनु मारुतसुत हनुमान। रहु चिरजीवि कहब की आन ॥ ४५ ॥
आज्ञा हमर यहन लिअ मानि। एक तरह नहि होयत हानि ॥ ४६ ॥
जाम्बवान द्वापर परयन्त। रहु गय अकथ कतो वृत्तान्त ॥ ४७ ॥
सभजन काँ कहलनि पुन राम। चलु चलु सभ जन हमरा धाम ॥ ४८ ॥
प्रातहिँ कमल-नयन भगवान। गुरु वसिष्ठ काँ कहल विधान ॥ ४९ ॥
अग्निहोत्र चल हमरहि सङ्ग। तुष्ट वसिष्ठ कयल से रङ्ग ॥ ५० ॥
रघुवर धौताम्बर कुशहस्त। महा-प्रयाणक बुद्धि प्रशस्त ॥ ५१ ॥
चलला छोड़ि नगर ओ धाम। कोटि कलाकर-छवि-जित राम ॥ ५२ ॥
कञ्ज-करा कमला चलु सङ्ग। सुषमा सुखमा - सिन्धु - तरङ्ग ॥ ५३ ॥
अस्त्र-शस्त्र सङ्ग चलु धनु तीर। आगु भेल भल धयल शरीर ॥ ५४ ॥
धयल शरीर वेद सभ गोट। चलल महामुनि महिमा मोट ॥ ५५ ॥
श्रुति-माता प्रणवक सँग भेलि। व्याहृति मिलि रघुवर मिलि गेलि॥ ५६ ॥
पुत्रदार परिवृत चल सङ्ग। प्रजालोक मन प्रीति अभङ्ग ॥ ५७ ॥

करते हुए आप सुख से रहियेगा। ४२ आप जाइए और राक्षसों का राजा होकर राज्य कीजिए। जब तक धरती रहेगी तब तक आपकी प्रजा सुख से रहेगी। ४३ मैं अपनी सौगन्ध देता हूँ, मेरी बात स्वीकार कीजिए। ज़िद से कुछ उत्तर देने की चेष्टा मत कीजिए। ४४ हे पवनसुत, सुनिए। आप चिरंजीव होइए। और क्या कहूँ। ४५ मेरी यह आज्ञा मान जाइए; आपका किसी भी तरह बुरा न होगा। ४६ हे जाम्बवान्, आप द्वापर तक रहिए। बहुत-सा वृत्तान्त कहने लायक नहीं है।" ४७ इसके बाद राम ने और सबों से कहा— "चलिये, सभी लोग मेरे धाम चलिए।" ४८ सुबह होते ही कमल-नयन राम ने गुरु वसिष्ठ से कहा कि क्या-क्या होना चाहिए। उन्होंने कहा— "अग्निहोत्र मेरे साथ चलेगा।" प्रसन्न हो वसिष्ठ ने वैसा किया। ४९-५० राम ने धौत वस्त्र पहना; कुश हाथ में लिये और महाप्रयाण के लिए उद्यत हो गये। ५१ करोड़ चन्द्रमा की शोभा को जीतनेवाले राम नगर और घर-बार छोड़ चल पड़े। ५२ कमल का फूल हाथ में लिये कमला उनके साथ चली। तरंगों की अपार शोभा वाली सुषमा नदी भी साथ चली। ५३ राम के सभी अस्त्र-शस्त्र और तीर-धनुष शरीर धारण कर आगे-आगे चले। ५४ चारों वेद भी शरीर धारण कर चले। अपार महिमा वाले महामुनि भी चले। ५५-५६ पुत्रों और स्त्रियों-समेत प्रजाजन भी अटूट प्रेम के साथ संग चले। ५७ रनिवास के सेवकों और महिलाओं-सहित भरत और

पुत्र दुहूक कयल अभिषेक। मथुरा विदिश नगर एक एक ॥ २७ ॥
तनय सुबाहु प्रजा - सुख - हेतु। यूपकेतु पालक श्रुति - सेतु ॥ २८ ॥
गेला अयोध्या अपनेँ शूर। रामचन्द्र देखि आशा पूर ॥ २९ ॥
देखल रघुवर दिनकर-कान्त। मुनिजन-परिवृत सुन्दर शान्त ॥ ३० ॥
कयल प्रणाम कहल कर जोड़ि। चलब नाथ नहि हमरा छोड़ि ॥ ३१ ॥
बालक वृद्धजन काँ दय राज। सावधान हम अयलहुँ आज ॥ ३२ ॥
राम बूझि भाइक बढ़ भाव। कहल सज्ज रहु दुपहर आब ॥ ३३ ॥
दिन दुपहर भल दिन प्रस्थान। सभ सौँ कालपुरुष बलवान ॥ ३४ ॥
बानर भालु देव - अवतार। समर सहायक बल-विस्तार ॥ ३५ ॥
शुनि अयला सुग्रीवक सङ्ग। रामचन्द्र - पद - प्रीति अभङ्ग ॥ ३६ ॥
पहुँचलाह सत्वर हनुमान। प्रभु - आज्ञाकर वीर - प्रधान ॥ ३७ ॥
भक्त बिभीषण पहुँचि सबेरि। एक हरिजन क्षण कयल न देरि ॥ ३८ ॥
सभ काँ सँग चलइक मन थोर। जानल करुणाकर रघुवीर ॥ ३९ ॥
तहँ सुग्रीव कहल कर जोड़ि। रहब न हम प्रभु मैत्री तोड़ि ॥ ४० ॥
अङ्गद काँ राजा हम कयल। अपनेँक सङ्ग अचल-मति धयल ॥ ४१ ॥

का विदिशा में। २७ सुबाहु नाम का पुत्र प्रजा की भलाई में लग गया और यूपकेतु नाम का पुत्र वैदिक धर्म के पालन में। २८ तब शत्रुघ्न स्वयं अयोध्या गये और वहाँ राम को देख उनकी आशा पूरी हुई। २९ उन्होंने देखा कि राम सूरज की तरह चमक रहे हैं, शान्त व सुन्दर दिखाई पड़ते हैं। चारों ओर से उन्हें मुनि लोग घेरे हुए हैं। ३० शत्रुघ्न ने जाकर प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहा— "हे प्रभु, आप मुझे छोड़कर नहीं जाइएगा। ३१ अपने दोनों पुत्रों को राज्य देकर मैं भी आज तैयार होकर ही आया हूँ।" ३२ राम ने भाई शत्रुघ्न का अटल इरादा देखकर कहा— "अब मध्याह्न हो गया। तैयार हो जाओ। ३३ मध्याह्न में यात्रा करना अच्छा है। कालपुरुष सबसे अधिक बलवान होता है।" ३४ महाप्रस्थान का यह समाचार सुनकर वे सभी बन्दर और भालू, जो लड़ाई में सहायता के लिए देवों के अवतार हो विस्तृत सेना में थे, सुग्रीव के साथ आ गये, क्योंकि उन्हें राम के चरण में अटूट भक्ति थी। ३५-३६ राम की आज्ञा का पालन करनेवाले महावीर हनुमान भी झटपट पहुँचे। ३७ भक्त विभीषण भी जल्द पहुँच गये। राम के किसी भी सेवक ने क्षण भर देर नहीं की। ३८ कृपालु राम को मालूम हो गया है कि सभी साथ चलने के लिए डटे हुए हैं। ३९ वहाँ सुग्रीव ने हाथ जोड़कर कहा— "हे राम! मैं मित्रता तोड़कर यहाँ नहीं रहूँगा। ४० मैंने अंगद को राजा बना दिया है। अब आपके साथ चलने का दृढ़ संकल्प कर लिया है।" ४१ राम ने विभीषण से कहा— "मेरा गुणगान

भ्राता सहित मिलन जत जाय। आदि देह निज इच्छा पाय॥ ७४॥
अथवा निजरुचि उत्तम देह। करिय प्रवेश भक्त - पर - नेह॥ ७५॥
देव - देव वर - पुरुष पुराण। चरण प्रणाम कोटि कल्याण॥ ७६॥
विनत-विरञ्चि-वचन बुझि राम। देव सकल देखइत घनश्याम॥ ७७॥
महा - प्रकाश सुलक्षण सहित। भेला चतुर्भुज चिन्ता-रहित॥ ७८॥
लक्ष्मण शेष - नाग - तन सेह। धयल धराधर छल छथि जेह॥ ७९॥
शङ्ख चक्र शोभा विस्तारि। भरत भेलाह तथा लवणारि॥ ८०॥
सीता रमा रमेश्वर राम। तन प्राचीन सुछवि गुणधाम॥ ८१॥
बलाराति - गण बिष्णु विलोक। परमेश्वर-गति जन के रोक॥ ८२॥

॥ गीतिका छन्द॥

आनन्द लोचन नीर निर्झर, निरख निर्जर रूप से॥ ८३॥
जन यक्ष देव समक्ष लक्षण युक्त सुन्दर भूप से॥ ८४॥
मुनि पितर प्रभृति प्रशंस गुण-गण तितल आनन्द-नोर सौँ॥ ८५॥
तन पुलक-निचय उचार जय जन, देखु लोचन-कोर सौँ॥ ८६॥

करनेवाले हैं। आपका निवास यह सारा जगत है। फिर भी मैं इतना ही कहूँगा कि मैं आपका दास हूँ। ७३ भ्राताओं के साथ जहाँ जाकर मिलन होगा, वहाँ अपनी इच्छा से आदि देह अर्थात् ईश्वरीय रूप प्राप्त कीजिए। ७४ अथवा यदि भक्तों पर अनुग्रह करना हो तो दूसरे उत्तम शरीर में अपनी इच्छा के अनुसार प्रवेश कीजिए। ७५ हे देवों के देव, पुरातन पुरुषश्रेष्ठ, आपके कल्याणकारी चरणों में मैं कोटिशः प्रणाम करता हूँ।" ७६ श्रद्धा से झुके हुए ब्रह्मा की बात समझकर बादल से साँवले राम सभी देवताओं के समक्ष सभी लक्षणों-सहित और चिन्ता से रहित चतुर्भुज विष्णु हो गये। ७७-७८ लक्ष्मण वही शेषनाग हो गये जो धरती को धारण किये हुए हैं। ७९ भरत और शत्रुघ्न दोनों शंख-चक्र-धारी हो गये। ८० सीता लक्ष्मी हो गयी। राम नारायण हो गये। इस प्राचीन रूप में दोनों की शोभा निराली थी और दोनों गुणों के भंडार थे। ८१ इन्द्र, विष्णु आदि देवता तमाशा देख रहे थे। ईश्वर की गति को साधारण मनुष्य कैसे रोक सकेगा? ८२ देवताओं की आँखों से आनन्द के आँसू झर रहे हैं और वे उनके रूप का दर्शन कर रहे हैं। ८३ मनुष्य, यक्ष, देव आदि सबों के सामने सर्वलक्षणसंयुक्त राजा ईश्वर के रूप में दिखाई देते हैं। ८४ मुनि, पितर आदि लोग आनन्द के आँसू से भीगे उनके गुणों का कीर्तन कर रहे हैं। ८५ लोगों के शरीर पुलकित हैं। वे जय-जयकार कर रहे हैं और आँखों से उनकी झाँकी देख रहे हैं। ८६ दयालु

अन्त:पुर अनुचर सह नारि । चलल भरत शत्रुघ्न विचारि ॥ ५८ ॥
चलला राम चलल सुरलोक । बाल वृद्ध ककरा के रोक ॥ ५९ ॥
चारू वर्ण शरण भल पाव । शान्त तपस्वी जन अगुआब ॥ ६० ॥
चल सुग्रीव सदल सदभाव । श्रीअनन्त रघुवर गुण गाब ॥ ६१ ॥
सभ आनन्द गमन - उत्साह । विषय मनोरथ अस्त प्रवाह ॥ ६२ ॥
स्थावर जङ्गम रहल न एक । सभ विरक्त बनि शुद्ध विवेक ॥ ६३ ॥
शून्य अयोध्या जनसौँ तखन । पुरसौँ चलल महाप्रभु जखन ॥ ६४ ॥
सरयूनदी देखल रघुवीर । अति प्रसन्न मन धर्म-शरीर ॥ ६५ ॥
अयला ततय विरञ्चि महान । सकल देव ऋषि सिद्ध समान ॥ ६६ ॥
गगन विराजय कोटि विमान । अतिथि काज रवि-कोटि समान ॥ ६७ ॥
अतिशय सुरभि पवन बह बेश । सुमन-वृष्टि-संकुल से देश ॥ ६८ ॥
विद्याधर किन्नर गण गाब । नानायन्त्र मृदंग बजाब ॥ ६९ ॥
परश कयल सरयू-जल राम । पयरहि सर्वशक्ति गुणधाम ॥ ७० ॥
विधि तहिठाम जोड़ि दुहु हाथ । कहल समक्ष ठाढ़ रघुनाथ ॥ ७१ ॥
अपने परब्रह्म परमेश । सदानन्द विभु विष्णु रमेश ॥ ७२ ॥
जनता - पालक जगन्निवास । कहब तथापि थिकहुँ हम दास ॥ ७३ ॥

शत्रुघ्न भी चले । ५८ राम चले । उनके पीछे सभी देवता लोग चले । बच्चे, बूढ़े, किसको कौन रोकता है ? ५९ चारों वर्णों को राम की अच्छी शरण मिली । शान्त तपस्वी लोग आगे-आगे चले । ६० अपने दलों के साथ शुद्ध हृदय से सुग्रीव भी चले । और वे अनन्तश्रीविभूषित राम का गुण गाते चले । ६१ सभी लोग उत्साह और आनन्द में मग्न हैं । विषय-भोग की लालसा का ताँता टूट गया । ६२ क्या स्थावर या जंगम, एक-एक कर सभी विरागी होकर शुद्ध विवेकवाले हो गये । ६३ जब नगर से महाप्रभु रामचन्द्र चले तब सारी अयोध्या वीरान हो गई । ६४ तब राम ने धर्मस्वरूपा सरयू नदी का दर्शन किया । देखकर उनका मन परम प्रसन्न हो गया । ६५ वहाँ ब्रह्मा आये । सभी देवता लोग, ऋषि-मुनि और सिद्ध आये । ६६ आकाश में हजारों विमान छा गये । वे विमान अतिथियों के काम के लिए थे और करोड़ सूरज के समान चमक रहे थे । ६७ खुशबू से भरी हवा चल रही थी । फूल बरसने से सारा इलाका फूल ही फूल हो गया था । ६८ विद्याधर और किन्नर लोग तरह-तरह के बाजे और मृदंग बजाते गा रहे थे । ६९ सभी शक्तियों और गुणों के आगार राम ने चरण से सरयू के जल का स्पर्श किया । ७० हाथ जोड़कर सामने खड़े हो ब्रह्मा ने वहाँ राम की स्तुति की— ७१ "आप परब्रह्म परमेश्वर हैं । आप सदा आनन्दस्वरूप हैं, व्यापक हैं, लक्ष्मीपति विष्णुस्वरूप हैं । ७२ आप जन-समुदाय का पालन

॥ चौपाइ ॥

दिनकर - देह विमल कपिराज । देखथि सुचरित देव-समाज ॥ ९९ ॥
सरयूजल नर कर असनान । दिव्यरूप बनि चढ़ल विमान ॥ १०० ॥
स्वर्ग चलल मल कीट पतङ्ग । विष्णुक नगर अमर सन रङ्ग ॥ १०१ ॥
देखय तमाशा अयला जेह । तनिकर गति भेल उत्तम सेह ॥ १०२ ॥
उत्तर - राम - चरित गिरिजेश । श्री गिरिजा सौं कहलनि वेश ॥ १०३ ॥
पढ़थि शुनथि जे चरित उदार । उत्तम गति पाबथि संसार ॥ १०४ ॥
की कर यमकिङ्कर खर-रोष । हर गिरिजा रघुवर सन्तोष ॥ १०५ ॥
रामायण पढ़ एको चरण । पातक-चय निश्चय हो हरण ॥ १०६ ॥
अति प्रसन्न रह उमा-महेश । एलय ओतए नहि रहय कलेश ॥ १०७ ॥
आदि - काव्य रामायण थीक । पढ़थि शुनथि जन रह निर्भीक ॥ १०८ ॥
विष्णुसदन पाबथि से अन्त । श्रद्धासहित पढ़थि जे सन्त ॥ १०९ ॥

॥ इति श्री चन्द्रकवि-विरचिते मिथिला-भाषा रामायणे उत्तरकाण्डेऽष्टमोऽध्यायः ॥

॥ उत्तरकाण्ड समाप्त ॥

॥ चन्दा झा कृत मैथिली रामायण समाप्त ॥

शरीर वाले सुग्रीव और देवगण लीला देख रहे थे । ९९ लोग सरयू के जल में स्नान करते और दिव्य रूप प्राप्त कर विमान पर चढ़ जाते । १०० यहाँ तक कि कीड़े-मकोड़े भी देव-स्वरूप होकर विष्णुलोक जाने लगे । १०१ जो-जो यह तमाशा देखने आये, उन्हें भी यह उत्तम गति विष्णुलोक मिल गया । १०२ शिव ने गिरिजा को यह राम का उत्तर चरित सुनाया । १०३ संसार में जो कोई यह चरित पढ़ेंगे या सुनेंगे, उन्हें उत्तम गति प्राप्त होगी । १०४ परम क्रोधी यमदूत भी उसका क्या कर सकेगा, जिस पर शिव, पार्वती और राम की कृपा है । १०५ जो एक चरण भी रामायण पढ़ेगा, उसका पापपुंज अवश्य दूर हो जाएगा । १०६ उस पर पार्वती और शिव परम प्रसन्न रहेंगे । इहलोक और परलोक में भी उसे कोई कष्ट न रहेगा । १०७ यह रामायण आदि काव्य है । जो इसे पढ़ते-सुनते वे सदा भय से मुक्त रहते हैं । १०८ जो सन्त श्रद्धा के साथ इसका पाठ करते हैं, वे जीवन के अन्त में विष्णुलोक वैकुण्ठ धाम पाते हैं । १०९

॥ मैथिल चन्द्रकवि-विरचित मिथिला-भाषा रामायण में उत्तरकाण्ड का आठवाँ अध्याय समाप्त ॥

॥ उत्तरकाण्ड समाप्त ॥

॥ चन्दा झा कृत मैथिली रामायण समाप्त ॥

॥ सोरठा ॥

देखल ब्रह्मिण - समाज, कहल दयामय समय शुभ ॥ ८७ ॥
सेवक जन सभ आज, जयता हमरहि सङ्ग सुख ॥ ८८ ॥
जत वानर जत भालु, जत राक्षस सेवक सुखद ॥ ८९ ॥
कहलनि दीन - दयाल, हमर धाम सङ्गहिँ चलथि ॥ ९० ॥

॥ रूपमाला ॥

कहल विधि शुनु विष्णु गुण - निधि बुझल शासन नीक ॥ ९१ ॥
नाम जपि भवसिन्धु तर नर, इ तौँ समुचित थीक ॥ ९२ ॥
वन्द्य वानर - वृन्द वर - गुण, भालु भाग्य - उदार ॥ ९३ ॥
भक्ति - महिमा देख सुर - गण, केहन करुणागार ॥ ९४ ॥

॥ दोहा ॥

अज्ञानहुँ जे करय नर, राम नाम उच्चार ॥ ९५ ॥
अन्त पाब गति उत्तमा, घुरि न आब संसार ॥ ९६ ॥

॥ सोरठा ॥

परसथि सरयू - नीर, हृष्टपुष्ट नहि कष्ट मन ॥ ९७ ॥
पाबथि प्रथम शरीर, जय जय धुनि कपि कोटि कर ॥ ९८ ॥

राम ने देवताओं की मंडली की ओर देखा और कहा— "अच्छा समय है। ८७ मेरे सभी सेवक लोग मेरे साथ ही सुखपूर्वक स्वर्ग चलेंगे। ८८ मेरी सेवा करनेवाले और मुझे मदद पहुँचानेवाले जितने बन्दर, भालू और राक्षस हैं वे सभी मेरे साथ ही मेरे धाम जाएँगे।" ८९-९० ब्रह्मा ने कहा— "हे गुणों की खान भगवान् नारायण, सुनिए। आपने जो आदेश किया वह अच्छा है। ९१ आपका नाम जप-जपकर लोग भव-सागर पार करेंगे, यह तो ठीक ही है।" ९२ गुणवान् वानर लोग भी आज पूजनीय हो गये। भालू लोग भी परम भाग्यवान् हो गये। ९३ देवता लोग भक्ति की महिमा देख रहे हैं और कहते हैं— "राम कितने करुणामय हैं।" ९४

रामायण का माहात्म्य

जो मनुष्य अनजान में भी राम-नाम का उच्चारण करेगा वह जीवन के अन्त में उत्तम गति (मोक्ष) पाएगा और फिर लौटकर इस संसार में नहीं आयेगा। ९५-९६ करोड़ों कपि लोग सरयू नदी के जल का स्पर्श करते ही हृष्ट-पुष्ट हो गये। मन में कोई तकलीफ़ न रही। ९७ सभी अपने पूर्व शरीर को प्राप्त करते जय-जयकार करने लगे। ९८ सूरज के समान चमकीले